हव्वा की बेटियाँ
(Daughters of Eve)

लेखिका

लौती बेथ हॉब्स

अनुवादक

फ्रांसिस डेविड

Printed & Published by:

CHURCH OF CHRIST
P.O. Box-4398
New Delhi-110019

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी अनुवाद होना अपने आप में एक आशिष की बात है। बाइबल में अनेकों स्त्रियों तथा पुरूषों का वर्णन हुआ है। इनमें से कुछ तो बहुत अच्छे थे परन्तु कुछ बहुत बुरे भी थे। क्योंकि यह पुस्तक विशेष रूप से स्त्रियों के लिये लिखी गई है इसलिये इसमें अच्छी तथा बुरी दोनों ही प्रकार की स्त्रियों के विषय में हम पढ़ेगे।

मेरा पूर्ण विश्वास है कि मसीही स्त्रियों के लिये यह पुस्तक बहुत ही लाभदायक सिद्ध होगी। यदि इस पुस्तक को स्त्रियों की बाइबल सभाओं में इस्तेमाल किया जाये तो बहुत ही अच्छा होगा।

आज इस बात की बहुत आवश्यकता है कि प्रत्येक मसीही स्त्री बाइबल के सिद्धान्तों को अपने परिवार में इस्तेमाल करे क्योंकि ऐसा करने से हमारे परिवार अच्छे होंगे और साथ ही हम दूसरों के सामने एक अच्छा आदर्श रखने के योग्य होंगे।

एक मसीही स्त्री होने के नाते, मैं आप से यही आग्रह करना चाहूंगी कि आप प्रस्तुत पुस्तक का अध्ययन ध्यानपूर्वक कीजिये, और मेरी आशा है कि यह पुस्तक आपके लिये एक आशीष का कारण होगी। धन्यवाद।

ऐलसी एफ. डेविड
(Elsy F. David)

Second Printing	**2008**
Author	**LOTTIE BETH HOBBS**
Translated in hindi by	**Francis David**

परिचय

स्त्रियों के विषय में अक्सर चर्चा की जाती है। किसी भी समाचार पत्र को आप ज़रा उठाकर देखिये, उसमें आप को स्त्रियों के विषय में कुछ न कुछ अवश्य पढ़ने को मिलेगा।

किसी भी स्त्री के विषय में हमें यह नहीं समझ लेना चाहिये कि वह निर्बल है तथा कुछ नहीं कर सकती। एक स्त्री अच्छाई अथवा बुराई के लिये शक्तिशाली हो सकती है। कई देशों की राजनीतियों में भी स्त्रियों का एक बहुत बड़ा हाथ था और आज भी है। एक स्त्री के अच्छे आदर्शों से उसके परिवार की नींव दृढ़ होती है। आज अपने परिवारों के प्रति स्त्रियों की बहुत बड़ी जिम्मेदारी यह है कि वे देखें कि क्या उनके परिवार के सदस्यों की आत्मिक स्थिति सही है या नहीं। यह जिम्मेवारी एक बूढ़ी स्त्री तथा जवान स्त्री, दोनों की है।

आज हमें अनेकों प्रकार की स्त्रियां देखने को मिलती है अर्थात् कुछ ऐसी हैं जो अच्छी माताएं हैं, कुछ दफ्तरों में काम करती हैं, और अनेक ऐसी भी हैं जो खेतों में कार्य करती हैं। परमेश्वर हमें ऐसी स्त्री के विषय में बताता है जो धर्मी, पवित्र तथा दूसरों के लिये एक दृण शक्ति का कारण होती हैं और ऐसी स्त्री के विषय में भी परमेश्वर हमें बताता है जो दूसरों के लिये एक विनाश का कारण हो सकती है। कुछ स्त्रियों ने ऐसे पुरूषों से विवाह किया था जिनका चरित्र सही नहीं था। जैसे लिखा है कि ''वह स्त्री तो बुद्धिमान और रूपवती थी, परन्तु वो पुरूष कठोर और बुरे-बुरे काम करने वाला था'' (1 शमूएल 25:3)। दूसरे स्थान पर हम यह देखते हैं कि कुछ ऐसी स्त्रियां भी थीं जो अच्छी नहीं थी परन्तु उनके पति अच्छे थे। इन स्त्रियों के कारण उनके परिवार नाश हो गये थे। हम उनकी गलतियों से अपने लिये आज बहुत से पाठ सीख सकते हैं। इन पाठों को अध्ययन करने का हमारा विशेष उद्देश्य यह है कि हम अपने आपको आने वाले न्याय के दिन के लिये तैयार करें क्योंकि वो एक ऐसा दिन होगा, जिस दिन हमें परमेश्वर के न्याय आसन के सामने खड़ा होना होगा। और तब हम में से प्रत्येक जन को परमेश्वर को अपना-अपना लेखा देना होगा। (रोमियों 14:12)। लौती बेथ हॉब्स (Lottie Beth Hobbs)

विषय सूची

	भूमिका	2
	परिचय	3
1.	हव्वा	5
2.	सारा	12
3.	लूत की पत्नी	19
4.	रिबका	27
5.	राहेल तथा लिआ	35
6.	मरियम (मूसा की बहिन)	42
7.	दबोरा	50
8.	दलीला	58
9.	रूत	65
10.	नाओमी	72
11.	हन्ना	78
12.	अबीगैल	86
13.	शीबा की रानी	93
14.	यारोबाम की पत्नी	101
15.	ईज़ेबेल	110
16.	वशती	117
17.	ऐस्तेर	124
18.	श्रीमती अय्युब	131
19.	मरियम (यीशु की माता)	136
20.	मरियम और मारथा	142
21.	एक दरिद्र विधवा	150
22.	एक बुरी सामरी स्त्री	156
23.	दोरकास	162
24.	प्रिसकिल्ला और अक्विला	169
25.	यूओदिया और सुन्तुखे	176

हव्वा (Eve)

ज़रा एक ऐसे सुन्दर विवाह के विषय में सोचिए जो आपने कभी देखा हो। अब थोड़ी देर के लिए ज़रा अपने ध्यान को उस समय की ओर ले जाइये जब परमेश्वर ने अदन की बाटिका में पहला विवाह रचा कर आदम को एक सुन्दर सी दुल्हन दी थी। इस सुन्दर दुल्हन का नाम था हव्वा। यह विवाह प्रकृति की सारी सुन्दरता के बीच हुआ था। पृथ्वी पर सब वस्तुओं की रचना करने के पश्चात परमेश्वर ने पहला ऑपरेशन किया अर्थात उसने आदम की एक पसुली निकालकर स्त्री को बनाया।

यद्यपि हम नहीं जानते कि हव्वा शारीरिक रूप से कैसी लगती होगी, परन्तु हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि वह बहुत ही सुन्दर होगी क्योंकि उसे उसी परमेश्वर ने बनाया था जिसने प्रकृति में सुन्दरता कूट-कूट कर भर रखी है। हव्वा के चेहरे पर भोलेपन तथा पवित्रता के भाव थे। (उत्पत्ति 2:22-24)। यहां हम देखते हैं कि परमेश्वर ने पहिले जोड़े को ही नहीं लेकिन पहली दुल्हन को भी बनाया तथा उस पर अपनी ईश्वरीय छाप लगाकर संसार के पहिले परिवार की नीव रखी थी। उन दोनों को परमेश्वर ने पति-पत्नी बनाकर एक सुन्दर स्थान में रखा था। और यहां उनके चेहरे पर भोलेपन की झलक दिखाई दे रही थी। यहां हमें यह भी पता चलता है कि परमेश्वर के साथ उनकी कितनी अच्छी सहभागिता थी। इस प्रकार की सहभागिता परमेश्वर प्रत्येक मनुष्य के साथ चाहता है। कितना ही अच्छा होता यदि यह सहभागिता हमेशा तक बनी रहती।

I ''इसलिये परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप पर बनाया''

(1) ऐसे अनेकों प्रमाण मिलते हैं जिनसे हमें यह पता चलता है कि मनुष्य को परमेश्वर ने बनाया है। मनुष्य की यह अद्‌भुत देह अपने आप ही नहीं बनी है। ऐसा सोचना कतई अनुचित है। बाइबल में लिखा है ''मैं भयानक और अद्‌भुत रीति से रचा गया हूं'' (भजन 139:14)। यह कहना भी गलत है कि मनुष्य का विकास बन्दर के विकास के द्वारा हुआ है। केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके पास विवेक है अर्थात वह यह समझ सकता है कि कौन सा कार्य गलत है तथा कौन

सा कार्य सही है। वह जीवन तथा मृत्यु को समझ सकता है। वह अपनी शारीरिक तथा आत्मिक स्थिति के विषय में सोच सकता है। वह रो सकता है तथा हंस सकता है। मनुष्य तथा पशुओं में अन्तर दिखाने के लिये अनेकों कारण देखे जा सकते हैं। मनुष्य में विद्यमान यह सब विशेषताएं केवल एक महान आत्मा के द्वारा ही आ सकती है। पशुओं का स्वभाव आत्मिक नहीं है।

2. मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो अमर है

हमारे अन्दर एक ऐसा भाग है जो सदा जीवित रहेगा। जो लोग परमेश्वर के वचन पर सन्देह करते हैं उन्हें इस वास्तविकता पर विश्वास करना चाहिए। विज्ञान भी इस बात की पुष्टि करता है। वैज्ञानिकों के अनुसार कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो बिल्कुल से लुप्त हो जाये। छोटे से छोटा कण भी लुप्त नहीं होता। वह बदल जाता है परन्तु समाप्त नहीं हो जाता। आत्मा के विषय में भी यह बात सही है। शरीर से आत्मा अलग होकर समाप्त नहीं होती। इस बात को जानकर कि आत्मा सदा अमर है, हमारा विश्वास दिन प्रतिदिन दृढ़ होना चाहिए।

II प्रभु ने मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा किया है-

''और मेरा परमेश्वर भी अपने उस धन के अनुसार जो महिमा सहित मसीह यीशु में है तुम्हारी हर घटी को पूरी करेगा'' (फिलिप्पियों 4:19)। इस बात से हमें कितनी शांति मिलती है कि वह अपने बच्चों की सदा चिन्ता करता है। आदम और हव्वा की प्रत्येक आवश्यकता को पूरा किया गया था।

(1) **प्रभु ने उनके रहने के लिये एक स्थान दिया था-** ''और यहोवा परमेश्वर ने पूर्व की ओर अदन देश में एक बाटिका लगाई, और वहां आदम को जिसे उसने रचा था, रख दिया'' (उत्पत्ति 2:8)।

(2) **प्रत्येक के पास खुशियां बांटने के लिये एक साथी था-** आपस में एक दूसरे के साथ वे दुख-सुख बांट सकते थे। ''आदम का अकेला रहना अच्छा नहीं, मैं उसके लिये एक ऐसा सहायक बनाऊंगा जो उस से मेल खाए'' (उत्पत्ति 2:18)। ''और पुरूष स्त्री के लिये नहीं सिरजा गया परन्तु स्त्री पुरूष के लिये सिरजी गई है।'' (1 कुरिन्थियों 11:9)। ''पति-पत्नी का सिर है'' (इफिसियों 5:22-24), तथा स्त्री उसकी सहायता के लिये बनाई गई थी। तौभी हम देखते हैं कि आदम का व्यवहार अत्याचारपूर्ण नहीं था परन्तु उसका स्भाव कोमल या दूसरों की भावनाओं का आदर करने वाला था, क्योंकि वह कहता है कि ''अब यह मेरी हड्डियों में की हड्डी और मेरे मांस में का मांस है'' (उत्पत्ति 2:23), परमेश्वर के लोगों का व्यवहार हमेशा ऐसा ही होना चाहिए (इफिसियों 5:25-31)।

(3) परमेश्वर ने उनकी खाने-पीने की सारी आवश्यकताएं पूरी की थीं (उत्पत्ति 2:9)

(4) प्रत्येक मनुष्य की सबसे पहली आवश्यकता यह है कि प्रभु के साथ उसका मेल तथा सहभागिता बनी रहे और यही सुअवसर उन दोनों के पास भी था।

(5) परमेश्वर ने उन्हें कुछ कार्य करने के लिये दिया था। उनको कहा गया था कि वे अदन की बाटिका की देख-रेख करें तथा उसकी रक्षा करें (उत्पत्ति 2:15)। यह दिखाता है कि प्रेमी परमेश्वर ने मुनष्य की भलाई के लिये उसे काम करने को कहा है। सुस्ती या आलस पाप को जन्म देते हैं। (1 तीमुथियुस 5:13)। कार्य करना परमेश्वर द्वारा दी गई एक आशिष है। ''अपने-अपने हाथों से कमाने का प्रयत्न करो'' (1 थिस्सलुनीकियों 4:11)। "यदि कोई करना न चाहे, तो खाने भी न पाए।" (2 थिस्सलुनीकियों 3:10)।

(6) **परमेश्वर ने उन्हें मानने के लिये एक नियम दिया था-** यदि मनुष्य में अच्छाई-बुराई का ज्ञान नहीं होता, तो वह आत्मिक तथा परमेश्वर के स्वरूप पर नहीं होता। यदि उसे कोई नियम नहीं दिया गया होता, अर्थात यह देखने के लिये कि क्या वह आज्ञाकारी है या नहीं, तो वह अपने चरित्र को नहीं पहचान सकता था तथा वह पशुओं सरीखा होता। परमेश्वर ने मनुष्य को आज्ञा देकर कहा था, कि ''तू बाटिका के सब वृक्षों का फल बिना खटके खा सकता है: पर भले या बुरे के ज्ञान का जो वृक्ष है, उसका फल तू कभी न खाना क्योंकि जिस दिन तू उसका फल खाए उसी दिन अवश्य मर जाएगा।'' (उत्पत्ति 2:16,17)।

III परमेश्वर की आशिषों को सदा पाते रहने के लिये एक शर्त है-

आदम और हव्वा को प्रत्येक प्रकार की आशिषों से परमेश्वर ने आशीषित किया था और उनकी जिम्मेदारी यह थी कि वे इस सहभागिता में सदा बने रहें।

(1) **सारी शर्तों के विषय में उन्हें स्पष्ट रूप से बताया गया था।** परमेश्वर अपनी वर्षा को धर्मी तथा अर्धमी दोनों पर भेजता है, परन्तु उसकी आत्मिक सहभागिता में बने रहने के लिये एक शर्त है। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिये है क्योंकि परमेश्वर पवित्र है तरथा वह पाप को देख नहीं सकता, पाप मनुष्य को उसके बनाने वाले से अलग कर देता है। इसलिए मनुष्य को यह फैसला स्वयं करना चाहिए कि क्या वह इन शर्तो को मानकर पिता परमेश्वर के साथ अपने मेल का आनन्द उठायेगा या उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके अपने आपको उससे अलग कर लेगा। सब आशिषें उन्हें मिलती हैं जो मसीह यीशु में हैं (इफिसियों 1:7)।

(2) **परमेश्वर की बताई हुई शर्तों को मानना यह दिखाता है कि हम उसकी आज्ञा मानने के इच्छुक हैं।**

प्रत्येक युग में परमेश्वर ने मनुष्य को कुछ कार्य करने के लिए दिये थे, यह देखने के लिये कि क्या वे अपने आप को उसे सौंपने को तैयार हैं या नहीं। इब्राहिम से कहा गया था कि वह अपने पुत्र इसहाक को बलिदान करे। इस्त्राएलियों से कहा गया था कि पीतल के सांप को देखें। नामान से कहा गया था कि वह यरदन नदी में डुबकी लगाएं और हव्वा को बाटिका के बीच वाले वृक्ष का फल खाने को मन किया गया था।

IV हव्वा अपनी परीक्षा में असफल हो गई थी और उसने शैतान का अनुसरण किया

अनेक लोग शैतान के विषय में ऐसा सोचते हैं कि यह कोई काल्पनिक या मन-गढ़ंत बात है। ऐसा नहीं है, शैतान सचमुच में एक व्यक्तित्व है जो लोगों को अपने चंगुल में फंसाने के लिये पूरा प्रयत्न कर रहा है ताकि अधिक से अधिक लोगों को अपने चुंगल में फंसा कर अपने साथ विनाश में ले जाए। वह चालाक, होशियार तथा बुद्धिमान है तथा प्रत्येक मनुष्य की कमज़ोरियों को समझता है। वह सब जगह विद्यमान है। वह ''पृथ्वी पर इधर-उधर घूमता है'' (अय्यूब 1:7,1 पतरस 5:8)। हव्वा से शैतान ने दो विशेष बातें बोली थीं-

(1) **उसने हव्वा को यह विश्वास दिलाया था कि यदि वह प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करे तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा।** उसे निश्चय दिलाने के लिए उसका यह एक बहुत ही शक्तिशाली औज़ार था और उसने हव्वा से पूछा ''क्या यह सच है कि परमेश्वर ने कहा था कि तुम बाटिका के किसी वृक्ष का फल न खाना (उत्पत्ति 3:1)। इस विषय में उसने उससे कोई बहस नहीं की, बल्कि शैतान ने उससे कहा कि तुम्हें कोई हानि नहीं होगी, ''तुम निश्चय न मरोगे''। शैतान ने उसे इस बात का निश्चय दिला दिया था कि यदि वह पाप भी कर ले तौभी उसे कोई नुकसान नहीं होगा। आज शैतान करोड़ों लोगों को इस बात का विश्वास दिला रहा है कि परमेश्वर की दी गई चेतावनियों पर ध्यान देना कोई आवश्यक बात नहीं है।

(2) शैतान ने प्रत्येक प्रकार के लालच दिखाकर हव्वा को पाप करने के लिए प्रेरित किया था और हम देखते हैं कि किस प्रकार से पाप करने के लिए उसने एक के बाद एक कदम उठाये। उसने शैतान की बात को सुना (3:4) मना किये हुए फल को खाने की इच्छा की (3:6) तब पाप किया (3:6), अपने पति से पाप

करवाया (3:6) तथा अपने पाप के लिए दूसरे को दोषी ठहराया (3:13)। शैतान ने उसको बताया था कि ''शरीर की अभिलाषा, और आंखों की अभिलाषा और जीविका का घमण्ड (1 यूहन्ना 2:15-17), करना कोई गलत बात नहीं है। अपने पति से सलाह लिये बिना ही उसने अपने जीवन का यह फैसला स्वयं कर लिया था। यदि वे दोनों साथ मिलकर इसके विषय में सलाह करते तो शायद उन दोनों में इसका विरोध करने की शक्ति होती।

V आदम और हव्वा के पाप के परिणाम

परमेश्वर के अनुग्रह से गिर जाना सम्भव है। आदम-हव्वा के साथ ऐसा ही हुआ था जबकि शैतान ने उनसे कहा था कि ऐसा नहीं होगा। जो भी हम बोते हैं, वो ही हम काटेंगे। जैसा उन्होंने बोया वैसा ही उन्होंने काटा। इसका परिणाम यह हुआ कि-

(1) **वे अदन की बाटिका से निकाल दिये गये (उत्पत्ति 3:22-24)**

(2) ''तू पीड़ित होकर बालक (बच्चे) उत्पन्न करेगी (उत्पत्ति 3:16)। यद्यपि परमेश्वर ने उनसे कहा था कि वे फले-फूलें तथा सारी पृथ्वी पर फैल जाएं, परन्तु पाप के परिणाम के कारण अब इसमें दुख उठाना भी शामिल था।

(3) ''और भूमि तेरे लिये कांटे और उंटकटारे उगाएगी'' (उत्पत्ति 3:17-18)

(4) ''और तू अपने माथे के पसीने की रोटी खाया करेगा'' (उत्पत्ति 3:19)। परमेश्वर ने उन्हें यह आज्ञा दी थी कि वे बाटिका की देखभाल करें, परन्तु अब इसमें कष्ट तथा कड़ा परिश्रम भी शामिल थे।

(4) ''क्योंकि तू मिट्टी है और मिट्टी ही में फिर मिल जायेगा'' (उत्पत्ति 3:19)। यानि शारीरिक मृत्यु। आदम के पाप के कारण हम पापी नहीं ठहरते क्योंकि पाप करना प्रत्येक मनुष्य की एक व्यक्तिगत समस्या है जो मनुष्य के अपने व्यवहार से उत्पन्न होती है (यहेजकेल 18:20)। अपने पाप के फलस्वरूप, आदम तथा हव्वा को आत्मिक मृत्यु का सामना करना पड़ा था तथा वे परमेश्वर से अलग हो गये थे। ''मृत्यु'' का अर्थ है ''अलग होना''

VI जीवन तथा मृत्यु का सामना करना

''उत्पत्ति'' शब्द का अर्थ है ''आरम्भ होना'', तथा इस पुस्तक में सारी सृष्टि के आरम्भ होने का वर्णन है। आदम तथा हव्वा ऐसे इन्सान थे जिन्होंने सबसे पहिले जीवन में खुशी का स्वाद चखा था तथा अपने आप को जीवन तथा मृत्यु की समस्याओं में घिरा हुआ पाया था। उद्धाहरण के रूप में हम यह देखते हैं कि:

(1) **उनके परिवार में बच्चे का जन्म होना।** ज़रा सोचिये जब उन्होंने पहली बार एक नवजात शिशु को देखा होगा तो उन्हें कैसा लगा होगा। उन्हें ये देखकर बड़ा ही अचम्भा हुआ होगा। हव्वा ने इस बात को जान लिया था कि छोटा बच्चा कैन उसको परमेश्वर की ओर से दिया गया है, क्योंकि उसने कहा: ''कि मैंने यहोवा की सहायता से एक पुरूष पाया है।'' एक नई ज़िन्दगी को संसार में आते हुए देखकर कौन से ऐसे माता-पिता होंगे जो परमेश्वर में विश्वास न करें?

(2) **शारीरिक मृत्यु से उत्पन्न कष्ट का सामना सबसे पहिले आदम-हव्वा को करना पड़ा था।** उनके पुत्र कैन ने, ईर्ष्या करके अपने भाई की जान ले ली थी (उत्पत्ति 4:8)। जिस प्रकार से हमें अपने किसी प्रिय जन की मृत्यु पर कष्ट होता है उसी तरह वे भी सबसे पहिले ऐसे इन्सान थे जिन्होंने इस प्रकार के दुख का अनुभव किया था। अपने पुत्र के मृत-शरीर को देखकर उन्होंने अवश्य सोचा होगा कि उन्हीं के पाप के कारण यह शारीरिक मृत्यु इस संसार में आई है।

(3) **हव्वा और उसका पति पहिले ऐसे इन्सान थे जिन्होंने सबसे पहिले यह सीखा था कि पाप हमेशा दुख को ही लाता है।**

शैतान की बातों को सुनकर हव्वा ने सोचा होगा कि परमेश्वर हमें पूरा आनन्द लेने से वंचित कर रहा है। वह अपने जीवन में और अधिक खुशियों का आनन्द लेना चाहती थी। बहुत देर के बाद उसने यह जाना कि पाप का आनन्द थोड़े ही क्षणों के लिये होता है। वह और उसका पति बड़ी शीघ्र ही यह भूल गये थे कि पाप के द्वारा भय उत्पन्न होता है। आदम ने अपने को छिपा लिया था क्योंकि उसने कहा ''मैं डर गया''। पाप एक पापी मनुष्य के मन में डर को पैदा करता है। तथा उथल-पुथल मचा देता है। (भजन 51:3, भजन 38:3-8, भजन 73:19)। परमेश्वर के बताये हुए नियमों के अनुसार चलकर हमें एक खुशी मिलती है, परन्तु उसके नियमों को तोड़ने से केवल दुख ही मिलता है। '' विश्वासघातियों का मार्ग कड़ा होता है'' (नीतिवचन 13:15)। परमेश्वर के वचन में हम बार-बार इस बात को देखेंगे कि आज्ञाकारी होने से हमारी अपनी ही भलाई होती है।

VII

(1) **परमेश्वर ने एक उद्धारकर्ता भेजने की प्रतिज्ञा की थी**-हव्वा के द्वारा सारी मनुष्य जाति में पाप आया तथा स्त्री के द्वारा ही परमेश्वर ने अपने हठीले बच्चों को उद्धार देने की योजना बनाई। मनुष्य को उद्धार देने की प्रतिज्ञा के विषय में सबसे पहिले शैतान से बोला गया था: ''और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में, और तेरे वंश और इसके वंश के बीच में बैर उत्पन्न करूंगा, वह तेरे सिर को

कुचल डालेगा, और तू उसकी एड़ी को डसेगा" (उत्पत्ति 3:15)। यद्यपि यीशु मसीह जो स्त्री से जन्मा था, शैतान की शक्ति द्वारा शारीरिक रूप से मारा गया, परन्तु उसने मृत्यु के बन्धन को तोड़कर शैतान पर विजय प्राप्त की।

(2) **बाइबल की कहानी में सृष्टि की रचना, मनुष्य का परमेश्वर के अनुग्रह से गिरना तथा उद्धार की योजना शामिल है।** यह एक प्रेम से भरी कहानी है-एक ऐसे प्रेमी सृष्टिकत्ता की जिसने अपने हठीले बच्चों के लिये शानदार उद्धार की योजना बनाई है। जीवन का वृक्ष जो बाग-ए-अदन में खो गया था, केवल स्वर्ग में ही मिल सकता है, ''मैं उसे उस जीवन के पेड़ में से जो परमेश्वर के स्वर्गलोक में है, फल खाने को दूंगा ''(प्रकाशितवाक्य 2:7)। जीवन के पेड़ में से कौन फल खाएगा? केवल वो ही, ''जो उसकी आज्ञाओं को मानता है'' (प्रकाशितवाक्य 22:14)। यूहन्ना ने स्वर्ग का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा था ''और वह उनकी आंखों से सब आंसू पोंछ डालेगा, और इसके बाद मृत्यु न रहेगी, और न शोक, न विलाप, न पीड़ा रहेगी, पहिली बातें जाती रही'' (प्रकाशितवाक्य 21:4)।

संसार में पाप और मृत्यु होते हुए भी परमेश्वर ने इसे इतना सुन्दर बनाया है, तब ज़रा सोचिये कि स्वर्ग कितना सुन्दर होगा।

v v v

शैतान बड़े ही सुन्दर रुप धारण करके लोगों को बहकाता है, तब क्या यह उचित नहीं होगा कि हम अपने बच्चों तथा जवान लड़के-लड़कियों को इसके विषय में बतायें?

सारा (Sarah)

संसार में आज तक जितने भी मनुष्य हुए हैं उन सब में इब्राहिम को सबसे अधिक आदर व सम्मान दिया जाता है। यह इसलिए नहीं कि वह यीशु मसीह से बड़ा था किन्तु इसलिए क्योंकि आज वे करोड़ों लोग जो यीशु को अस्वीकार करते हैं, इब्राहिम का आदर करते हैं। मसीही लोग, यहुदी और मुसलमान उसको ''पिता इब्राहिम'' कह कर सम्बोधिक करते हैं। मसीही लोग उसका इसलिये आदर करते हैं क्योंकि वे उसकी आत्मिक सन्तान हैं (गलतियों 3:29)। यहुदी लोग उसको अपना मूल पिता मानते हैं तथा मुसलमान-इशमाएल के, द्वारा उसे अपना वंशज मानते हैं। सारा को उसकी पत्नी बनने का अवसर मिला।

इब्राहिम तथा सारा कसदियों के ऊर नामक नगर में रहते थे जो मूर्तिपूजकों का स्थान था परन्तु सभ्यता में बहुत आगे था। हम्मुराबी की पुरातत्व खुदाईयों से इसका सबूत हमें मिलता है। ऊर तथा उसके आस-पास की खुदाई से पता चलता है कि वहां बड़े-बड़े पुस्तकालय थे जिनमें अनेकों विषयों पर पुस्तकें मिली है। यह खुदाईयां इस बात को गलत साबित करती हैं कि इब्रहिम ऐसे समय में रहता था जब लोग असभ्य तथा अज्ञानी थे।

I सारा एक ऐसी पहिली स्त्री थी जिसके विश्वास को देखकर परमेश्वर बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने उसे बुलाया-

(1) **यद्यपि उसका पिता एक मूर्तिपूजक था, तौभी इब्राहिम का विश्वास अपने स्वर्गीय पिता में दृढ़ता से बना रहा।** इसलिये परमेश्वर ने उससे कहा था कि वह उर नगर को छोड़कर एक ऐसे स्थान पर चला जाये जो उसको दिखाया जाएगा (उत्पत्ति 12:1-3)। प्रभु ने इब्राहिम को चुना था ताकि वह एक ऐसे परिवार का मुखिया बने जो आगे चलकर एक बड़ी जाति बने और ऐसा इसलिये हुआ ताकि पृथ्वी पर परमेश्वर के ज्ञान, विश्वास, तथा यीशु के उद्धार के मार्ग को सुरक्षित रखा जा सके। परमेश्वर की अगुवाई में इब्राहिम और सारा ने कनान की यात्रा आरम्भ की।

(2) **अपने पति के साथ मिलकर सारा ने चुनौती को स्वीकार किया ताकि विश्वास के साथ अनजाने लोगों के बीच में परमेश्वर के पीछे चल सके।** उसे अपने मित्रों, सगे-सम्बन्धियों तथा सब कुछ छोड़कर एक ऐसे भविष्य की ओर चलना पड़ा जो चिन्ताओं तथा जोखिमों से भरा हुआ था। हव्वा की तरह वह भी अपने पति पर दबाव डाल सकती थी ताकि वह परमेश्वर की आज्ञा को न मानें, अथवा अय्युब की पत्नी की तरह उसके साहस को तोड़ने की कोशिश कर सकती थी। परमेश्वर उसकी आत्मिक शक्ति की प्रशंसा करता है '' विश्वास से सारा ने आप बूढ़ी होने पर भी गर्भ धारण करने की सामर्थ पाई, क्योंकि उसने प्रतिज्ञा करने वाले को सच्चा जाना था'' (इब्रानियों 11:11)।

(3) **विश्वास क्या है?** अच्छे जीवन को व्यतीत करने के लिए आज विश्वास के महत्व तथा इसकी आवश्यकता के विषय में बहुत कुछ कहा जाता है। परमेश्वर में विश्वास न करने वाले भी विश्वास के गुणों की तारीफ करते हैं, तौभी वे कभी भी नाश न होने वाले विश्वास के सच्चे आधार को नहीं समझते। विश्वास का आधार प्रमाणों पर होना चाहिए तथा आत्मिक बातों को जानने के लिये केवल एक ही सही नींव है अर्थात परमेश्वर का वचन (रोमियों 10:17)। तब विश्वास क्या है? इसका अर्थ है, परमेश्वर जो कहता है उस पर विश्वास करना। उसकी आज्ञाओं पर विश्वास करके उनको मानना। उसकी चेतावनियों पर पूर्ण रूप में विश्वास करके, उन पर ध्यान देना। उसके वादों पर ऐसा पक्का विश्वास करना, जिससे दिल को सच्ची शांति तथा सच्चा आश्वासन मिल सके। हमें केवल परमेश्वर पर ही नहीं परन्तु यीशु मसीह पर भी विश्वास करना चाहिए जो उसका पुत्र है (यूहन्ना 5:24)। आत्मा को नाश होने से बचाने के लिए केवल एक ही किश्ती है, और वह है यीशु मसीह।

(4) **इब्राहिम तथा सारा ने अपने आपको संसारिक तथा मूर्तिपूजक लोगों से अलग करने की चुनौती को स्वीकार कर लिया था-** आज ऐसी ही चुनौती हमें परमेश्वर के वचन से मिलती है: ''इसलिये प्रभु कहता है, कि उनके बीच में से निकलो और अलग रहो, और अशुद्ध वस्तु को मत छुओ, तो मैं तुम्हें ग्रहण करूंगा'' (2 कुरिन्थियों 6:17)

II सारा का अपने पति की आज्ञा मानना-

नये नियम में सारा की दो विशेषताओं की प्रशंसा की गई है जो प्रत्येक स्त्री में होनी चाहिए: (1) विश्वास और (2) अपने पति की आज्ञा मानना। ''हे पत्नियों, तुम भी अपने पति के आधीन रहो और पूर्वकाल में पवित्र स्त्रियां भी, जो

परमेश्वर पर आशा रखती थीं, अपने आप को इसी रीति से संवारती और अपने पति के आधीन रहती थीं। जैसे सारा इब्राहिम की आज्ञा में रहती और उसे स्वामी कहती थी: सो तुम भी यदि भलाई करो, और किसी प्रकार के भय से भयभीत न हो तो उसकी बेटियां ठहरोगी (1 पतरस 3:1-6)। स्त्री को अपने पति की सहायता करने के लिये बनाया गया है न कि उस पर आज्ञा चलाने के लिये। एक सुबह की बात है कि बाइबल क्लास में दो बच्चों की एक मां ने ये शब्द कहे थे कि ''जबसे मैंने सुसमाचार को माना है मेरे घर में एक बहुत बड़ा बदलाव आया है। अगरचि मेरे पति एक मसीही नहीं है, फिर भी हम आपस में बहुत अच्छी तरह से रहते हैं। और यह बात तब शुरू हुई जब मैंने परमेश्वर की आज्ञा को मानकर अपने पति को घर का मुखिया मानना शुरू किया, अब आपस में हम एक दूसरे को बहुत अच्छी तरह से समझते हैं और हमारे परिवार में बहुत ही खुशी है।''

III सारा परमेश्वर की भक्त तो थी, परन्तु सिद्ध नहीं थी-

परमेश्वर किसी के चरित्र पर पर्दा नहीं डालता। वह अच्छाई तथा बुराई दोनों को प्रकट करता है। ऐसा भी समय हुआ है कि अच्छे लोग अपने विश्वास से गिर गए थे, तथा बुरे लोग अपने गलत व्यवहार को छोड़कर अच्छे कार्य करने वाले बन गये थे।

(1) अपनी पहचान के विषय में सारा ने झूठ बोला तथा धोखा दिया-(उत्पत्ति 12:10-20)। उसकी सुन्दरता स्वयं उसके लिये तथा उसके पति के लिये एक फंदा बन गई थी। अकाल पड़ने के कारण उन्हें मिस्र में जाना पड़ा। ''फिर ऐसा हुआ कि मिस्र के निकट पहुंचकर, उसने अपनी पत्नी सारा से कहा, सुन, मुझे मालूम है, कि तू सुन्दर स्त्री है: इस कारण जब मिस्री तुझे देखेंगे, तब कहेंगे यह उसकी पत्नी है सो वे मुझको तो मार डालेंगे, पर तुझको जीती रख लेंगे। सो यह कहना, कि मैं उसकी बहिन हूं, जिससे तेरे कारण मेरा कल्याण हो, और मेरे प्राण तेरे कारण बचे।'' भय के कारण उनसे यह पाप हुआ था।

(2) **बच्चे को पाने की इच्छा में, उसका विश्वास बहुत कमज़ोर पड़ गया था।**

यद्यपि वह सुन्दर, धनवान और एक प्रमुख व्यक्ति की पत्नी थी तथा उसका पति भी उससे बहुत प्रेम करता था परन्तु फिर भी वह खुश नहीं थी क्योंकि वह बांझ थी। उसने यह योजना बनाई कि अपनी दासी हाजिरा के द्वारा वह पुत्र प्राप्त करने की इच्छा को पूरा करेगी। उसकी योजना का आधार अविश्वास था। इब्राहित से परमेश्वर ने उसके वंश को बढ़ाने की बहुत बड़ी प्रतिज्ञा की थी, किन्तु वह इस समस्या को अपने आप सुलझाना चाहती थी। अनेकों बार हम परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं में विश्वास, न करके अपना धीरज छोड़ देते हैं तथा हम चाहते हैं कि हमारी इच्छा अभी इसी समय पूरी होनी चाहिए। जब हाजिरा के पास एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तो सारा तथा उसके बीच में एक बड़ा क्लेश शुरू हो गया और जिसके फलस्वरूप हाजिरा घर छोड़कर इश्माएल के साथ जंगल की ओर चली गई (उत्पत्ति 16:1-6)।

(3) जब तीन स्वर्गदूतों ने इब्राहिम को आकर बताया कि उनके यहां एक पुत्र का जन्म होगा, तब सारा का विश्वास थोड़े समय के लिये फिर से डगमगाया (उत्पत्ति 18:9-15)। क्योंकि वह काफी बूढ़ी थी, इसलिए उसको यह बड़ा अस्वाभाविक सा लगा, और वह हंसने लगी। यह एक अविश्वास की हंसी थी, तथा यह बात दिखाती है कि उसने परमेश्वर की उस प्रतिज्ञा पर सन्देह किया जो उसने उसके वंश को बढ़ाने के लिए की थी। सारा की इस अविश्वास की हंसी के लिये स्वर्गदूत ने उसे डांटा और उससे कहा:, ''क्या यहोवा के लिये कोई काम कठिन है?''

IV क्या यहोवा के लिये कोई काम कठिन है?

सारा का संदेह शीघ्र ही दूर होने लगा तथा भविष्य में वह अपने विश्वास में दृढ़ बनी रही। आज भी हमारे संसार में अविश्वास की घंटियां बज रही हैं। लोग महान परमेश्वर का ठट्टा और मज़ाक उड़ा रहे हैं।

(1) **संसार में सब स्थानों पर अविश्वास के बीच बोये जा रहे हैं**- एक विश्वविद्यालय के विद्यार्थी ने एक प्रचारक के पास जाकर कहा ''मैं सोचता हूं कि मुझे अपने धर्म को छोड़ना पड़ेगा। मैंने देखा है कि समझ रखने वाले लोग भी परमेश्वर में विश्वास नहीं करते हैं।'' प्रचारक ने कहा: ''ऐसी बातें तुम्हारे दिमाग़ में आना अपने आप में एक सबूत है कि तुम्हें परमेश्वर ने बनाया है। पशु ऐसा नहीं सोच सकते, परन्तु तुम सोच सकते हो क्योंकि तुम एक जीवित आत्मा हो।''

(2) **अविश्वास के कारण उत्पन्न हुए अनेक ऐसे प्रश्न होते हैं जिनका उत्तर नहीं दिया जा सकता तथा इनके कारण** परमेश्वर में विश्वास नहीं परन्तु अविश्वास उत्पन्न होता है। आपके अन्दर एक ऐसी आत्मिक क्षमता है जो दूसरे जीवों में नहीं है: जैसे उपासना करना, सुन्दरता से प्रेम करना, अच्छे आदर्शों पर बने रहना, आविष्कारशील होना, तर्क करना, सोच-विचार करना और विवेकशील होना

इत्यादि। ये सब मानसिक प्रेरणाएं कहां से आती हैं? यदि परमेश्वर की ओर से नहीं तो कहां से? नास्तिक लोगों के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। दूसरी ओर यदि हम सर्वशक्तिमान सृष्टिकर्ता में विश्वास करते हैं, तब क्यों हम उसके द्वारा बनाई गई सृष्टि, यीशु का कुंवारी में पैदा होना, उसका जी उठना, उसका दोबारा आना जैसी शिक्षाओं पर सन्देह करते हैं या इन्हें मानने से क्यों हिचकिचाते हैं? ''क्या यहोवा के लिये कोई काम कठिन है?'' जो लोग अभी परमेश्वर का ठट्टा या मज़ाक उड़ाते हैं उन्हें यह जानना चाहिये कि एक ऐसा दिन आयेगा जब परमेश्वर उन पर हंसेगा, तथा अन्त में नाश होने के समय उनका घमण्ड चकनाचूर हो जायेगा (भजन संहिता 2:1-4)। किसी भी तरह से परमेश्वर का ठट्टा नहीं उड़ाया जा सकता (गलतियों 6:7)।

V ''पहुनाई करना न भूलना''

(1) इब्रानियों का लेखक इब्राहिम और सारा की ओर संकेत करते हुए कहता है: ''पहुनाई करना न भूलना, क्योंकि इसके द्वारा कितनों ने अनजाने में स्वर्गदूतों की पहुनाई की है'' (इब्रानियों 13:2)। सबसे पहिले हम देखते हैं कि वे ऐसे लोग नहीं थे जो सत्कार (पहुनाई) करने में हिचकिचाते थे, परन्तु उन्होंने शीघ्र ही खुश होकर अन्जान स्वर्गदूतों का स्वागत किया तथा उनकी सेवा टहल की। दूसरी बात यह है कि वे स्वार्थी नहीं थे, केवल अपनी वस्तुओं के लिये ही नहीं बल्कि अपने समय तथा परिश्रम के लिये भी खाना पकाना तथा आटा गूंधकर रोटी पकाना कोई सरल काम नहीं था। वे ऐसा भी सोच सकते थे कि: ''इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कि हम इन तीन व्यक्तियों के लिये कुछ करें, इन्हें अगले घर जाने दो, यह इतना आसान नहीं है कि अब इस समय हम इनके लिये खाना तैयार करें।''

(2) **''बिना कुड़कुड़ाए एक दूसरे की पहुनाई करो''** (1 पतरस 4:9)। ''पहुनाई करने में लगे रहो'' (रोमियों 12:13) ये आज्ञाएं हैं, और इनको मानने की जिम्मेवारी मुख्यत: स्त्रियों की हैं। चाहे कोई पुरूष कितना भी पहुनाई करनेवाला हो परन्तु जब तक उसे अपनी पत्नी का सहयोग नहीं मिलेगा वह कुछ भी करने में असमर्थ होगा। यद्यपि परमेश्वर ने यह आज्ञा दी है, कि हमारे में एक पहुनाई करने वाला मन होना चाहिए, तौ भी अधिकतर स्थानों पर इस अच्छे कार्य को भुला दिया जाता है। हम शायद आदर सत्कार बहुत करते हों, परन्तु क्या हमने आदर सम्मान करने में अजनबी को भुला दिया है? यद्यपि आज इस युग में इस बात की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी की सारा के दिनों में थी, तौभी आज हमारे बीच में ऐसे

बहुत से लोग हैं जो भूखे हैं, दुखी हैं, अकेले हैं, जो अपना साहस छोड़ चुके हैं, उन्हें सहारे की आवश्यकता है तथा ऐसी आत्माएं हैं जिन्हें उद्धार की आवश्यकता है। इनमें से प्रत्येक को आज मित्रता की आवश्यकता है, शायद आपको खाना पकाते समय या बर्तन धोते समय दोस्ती के हाथ को ज़बरदस्ती किसी के प्रति बढ़ाना पड़े। परन्तु आप जो भी करें उसे बिना कुढ़कुढ़ाएँ करें।

VI

''और तू आशीष का मूल होगा'' (उत्पत्ति 12:2)। सारा तथा उसके पति के विश्वास के कारण परमेश्वर ने उन्हें बहुत आशीषित किया था, लेकिन इसके बदले में उन्हें दूसरों को भी आशीष देनी थी।

(1) धार्मिक व्यक्ति सारे संसार को आशीष देता है। जो भी उसके सम्पर्क में आते हैं वह उनको, ऊपर उठाने के लिये प्रेरित करता है। वास्तव में सारा और इब्राहिम दूसरों के लिये एक आशीष का कारण थे। इस अन्धकारमय संसार में वे एक ज्योति की तरह थे।

(2) सारा ने अपना प्रमुख सहयोग इस संसार को अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में दिया था जब वह इसहाक की मां बनी थी। इसहाक के वंश से यीशु का जन्म हुआ था तथा इसके द्वारा सारे सांर को बहुत आशीष मिली। परमेश्वर को अपनी सेवा के लिये आज बूढ़ों की भी आवश्यकता है। ''पक्के बाल शौभायमान मुकुट ठहरते हैं, वे धर्म के मार्ग पर चलने से प्राप्त होते हैं (नीतिवचन 16:31)। इस बात को नोट कीजिए कि इसके लिए एक शर्त रखी गई है। अपने जीवन में यूं ही वर्षो को बढ़ाने में कोई विशेष बड़ी बात नहीं है, तथा सारे बूढ़े लोग बुद्धिमान नहीं होते, जिस प्रकार से एलीहू ने इस बात पर अपनी टिप्पणी दी थी (अय्यूब 32:9)। आयु के बढ़ने के साथ-साथ बुद्धि में विकास तथा उचित और अनुचित में फ़रक करना आता है। संसार की बहुत सी बड़ी-बड़ी सफलताएं बड़ी आयु वाले लोगों को ही प्राप्त हुई थीं। ज़रा कालेब के बारे में सोचिये, जिसने पचासी साल की आयु में एक ऐसे राष्ट्र को जीतने की बिनती की थी जो दानवों से भरा हुआ था। आज संसार को ऐसे ही स्त्री-पुरूषों की आवश्यकता है, जो कालेब की तरह दूरदर्शी होकर यह समझ सकें कि परमेश्वर के लिये तथा सारे समाज के लिये उन्हें क्या करना है। बूढ़ी स्त्रियां भी प्रभु की दाख की बारी में अनेक कार्यो को कर सकती हैं जो कि शायद वे अपनी जवानी के दिनों में इसलिये नहीं कर सकी थीं क्योंकि वे परिवार की बड़ी जिम्मेवारियों में सब तरफ़ से घिरी हुई थीं।

VII ''सारा तथा हाजिरा की प्रतीकात्मक कथा''

(1) बाइबल को समझने का मूल सिद्धांत है मूसा के नियम तथा मसीही नियम अर्थात नये नियम में अन्तर को समझना। इसे जाने बिना यह जानना असम्भव होगा कि आज परमेश्वर हमसे क्या चाहता है। बहुत ही साधारण परन्तु बड़ी ही दृढ़ता से इस बात को गलतियों 4:21-31 में सारा तथा हाजिरा की प्रतीक कथा में समझाया गया है। हाजिरा, मूसा के उस नियम को चित्रित करती है जो सीने पर्वत पर दिया गया था। सारा जिसने़ प्रतिज्ञा किये हुये बच्चे को जन्म दिया था, दूसरे नियम अर्थात मसीही नियम का प्रतीक है, जिसमें मनुष्यों को प्रतिज्ञा किये हुए बच्चों की नाई उद्धार का सुमाचार दिया गया है। दासी अथवा मूसा का नियम हटा दिया गया था। मसीही लोग आज मूसा के नियम अनुसार नहीं रहते, क्योंकि वे दासी के बच्चे नहीं है। बल्कि आज हम नये-नियम में रहते हैं, और इब्राहिम तथा सारा की प्रतिज्ञा के भागी हैं (गलतियों 4:30, 31:3:29)।

(2) यीशु मसीह एक नये-नियम को लेकर इस संसार में आया था ताकि वह पहिले को हटाकर दूसरे को स्थापित करे (इब्रानियों 10:9)। एक विशेष उद्देश्य के लिये मूसा का नियम दिया गया था। यह नियम एक शिक्षक की तरह था और इसका उद्देश्य यीशु मसीह के विषय में जानने तथा उसके जीवन और मृत्यु को समझने के लिए था। जब इसका उद्देश्य पूरा हो गया तो यीशु ने इसे क्रूस के ऊपर जड़ दिया। आज हमारी अगुवाई मसीह के नये-नियम द्वारा होती है।

''आयु में बड़े होना एक सुअवसर है, जोकि जवानी के सुअवसर से कम नहीं होती, यद्यपि ये दूसरे रुप में होती है। लेकिन जैसे जैसे शाम ढलती है, आसमान अनेकों सितारों से भर जाता है, और सुबह होते ही वे दिखाई नहीं देते''

लूत की पत्नी (Lot's Wife)

जब सदोम में दुष्टता तथा बुराई बुरी तरह से फैल गई थी तब परमेश्वर ने उसे नाश करने की ठान ली। उसने धार्मिक लूत से कहा कि अपनी पत्नी और बेटियों को लेकर सुरक्षित स्थान पर चला जा। यह सूचनाएं बिल्कुल साफ़ तथा स्पष्ट थीं: ''अपना प्राण लेकर भाग जा, पीछे की ओर न ताकना, और तराई भर में न ठहरना, उस पहाड़ पर भाग जाना, नहीं तो तू भी भस्म हो जाएगा'' (उत्पत्ति 19:17)। ''लूत की पत्नी ने जो उसके पीछे थी दृष्टि फेर के पीछे की ओर देखा, और वह नमक का खम्भा बन गई'' (उत्पत्ति 19:26)।

यह बाइबल की एक बहुत ही प्रसिद्ध घटना है, परन्तु अनेक लोग इसको पढ़कर उलझन में पड़ जाते हैं। अनेक इसे थोड़ा सा पढ़कर अविश्वास के साथ छोड़ देते हैं और कई लोग इसका खुला उपहास उड़ाते हैं। लेकिन मसीहीयों को इसकी वास्तविकता का प्रमाण यीशु ने दिया था। एक बार जब वह अपने चेलों को शिक्षा दे रहा था तब उसने उनसे कहा ''लूत की पत्नी को स्मरण रखो'' (लूका 17:32)। इस घटना से भविष्य में आनेवाली हर एक पीढ़ी को यह शिक्षा मिलती है कि प्रभु की आज्ञाएं तोड़ने के परिणाम कितने बुरे हो सकते हैं। परमेश्वर क्यों चाहता है कि हम उसकी आज्ञा को मानें? आज्ञा मानने और न मानने में क्या शामिल है? कुछ मूल सिद्धान्तों को समझकर प्रभु की इच्छा को पूर्ण करना ही आज्ञा मानना है।

I परमेश्वर क्यों चाहता है कि हम उसकी आज्ञा को मानें?

(1) वह हमसे आज्ञापालन हमारी अच्छाई के लिये चाहता है, क्योंकि हम नैतिक प्राणी हैं, परमेश्वर के स्वरूप पर बनाये गये हैं, और अच्छाई तथा बुराई में फ़रक जान सकते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो हम पशुओं सरीखे होते। जबकि यह बात सत्य है, तो सरकार तथा आत्मिक नियमों का होना भी आवश्यक है ताकि मनुष्य जाति अच्छी तरह से अनुशासन में रह सके। यदि हम अपने सृष्टिकर्त्ता द्वारा दिये गये आत्मिक नियमों को मानें, तो सब कुछ अच्छी प्रकार से चलेगा। परन्तु यदि मनुष्य परमेश्वर द्वारा बनाई हुई नैतिक तथा आत्मिक आज्ञाओं से अलग रहता है,

तो उसे दुख, मुसीबत तथा मृत्यु का सामना करना पड़ता है।

एक बार बाइबल अध्ययन की कक्षा में किसी ने यह कहा था कि "परमेश्वर ने पाप को क्यों बनाया है और फिर हमसे यह क्यों कहा कि यह न करो और वो न करो? परमेश्वर ने पाप को नहीं बनाया। आईये इसको इस तरह से देखें। हमारी सरकार नियमों को बनाती है पर नियमों को इसलिये नहीं बनाती कि वे तोड़े जाएं। प्रत्येक व्यक्ति की अच्छाई के लिये नियम बनाये जाते हैं ताकि इससे सारा समाज लाभ उठा सके। थोड़े क्षणों के लिये ज़रा सोचिये। यदि किसी देश में नियम नहीं हैं तो आपको वहां रहना कैसा लगेगा? आपका वहां रहना बड़ा ही कठिन हो जाएगा। किसी भी ऐसे समाज में, जहां आत्मिक या ईश्वरीय नियम न हो आपको कैसा लगेगा? ऐसे संसार में रहना बड़ा ही कठिन हो जायेगा। परमेश्वर चाहता है कि हम उसके आत्मिक नियमों को मानें तथा ये सब नियम प्रत्येक मनुष्य की भलाई के लिये हैं ताकि वह इस संसार में रहने के योग्य हो सकें। उसकी इच्छा किसी अत्याचारी शासक की तरह नहीं है परन्तु वह हमारा एक ऐसा मित्र है, जो हमारी भलाई चाहता है। वह जानता है कि इस जीवन में हमारे लिये क्या अच्छा है और क्या बुरा है। इस बात के लिये हमें उसका कितना धन्यवादी होना चाहिए कि वह हमें अपने वचन के द्वारा बताता और चिताता रहता है।

(2) स्वर्ग में जाने की तैयारी करने के लिये हममें प्रभु की आज्ञा मानने की इच्छा होनी चाहिए, क्योंकि जो स्वर्ग में होंगे वे उसकी सेवा करेंगे (प्रकाशितवाक्य 7:15; 22:3)। स्वर्ग में किसी के लिये भी यह कितनी दुख की बात होगी यदि वह परमेश्वर की इच्छा पालन करने के लिए आनन्द को अनुभव न कर सके। वास्तव में ऐसा नहीं होगा, क्योंकि स्वर्ग में आज्ञा न मानने वाले लोग प्रवेश ही नहीं कर सकेंगे।

(3) यदि हम परमेश्वर की आज्ञा को नहीं मानते तो हम शैतान की सेवा कर रहे हैं (रोमियों 6:16-18)। प्रभु हमसे बहुत प्रेम करता है और इसलिये नहीं चाहता कि हम शैतान के साथ अनन्त विनाश में डाले जायें। उसने स्वर्ग को तैयार किया है और अपने पुत्र को सारी मनुष्य जाति की अगुवाई करने के लिये इस संसार में भेजा था। नरक को मनुष्यों के लिये नहीं बल्कि शैतान और उसके दूतों के लिये बनाया गया है। परन्तु यदि मनुष्य शैतान के पीछे चलना चाहता है तो उसे शैतान के साथ उसके अनन्त घर में रहना पड़ेगा। यह बड़ा ही असम्भव है कि जीवन के इस पथ पर हम शैतान के पीछे चलकर अन्त में परमेश्वर के घर में प्रवेश करें, क्योंकि शैतान वहां नहीं जा रहा है।

(4) परमेश्वर का सबसे उत्तम न्याय यह है कि वह धार्मियों को अच्छा प्रतिफल देता है तथा बुराई करने वालों को दण्ड देता है। हमारे न्यायालयों में ऐसा ही होता है। एक न्यायाधीश, बेकसूर व्यक्ति को छोड़कर मुक्त कर देता है, लेकिन एक दुष्ट व अपराधी को वह दण्ड देता है। यदि वह न्यायी ऐसा करने में चूक जाता है तो वह एक अधर्मी न्यायी है। परमेश्वर के लोग इस बात को समझते थे कि उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने से उसका न्याय उनके प्रति क्या होगा (दानिय्येल 9:10-14; नहेमायाह 9:32,33) यदि परमेश्वर दुष्टों को भी स्वर्ग में जाने की आज्ञा दे दे तो स्वर्ग रहने के लिये एक अच्छा आरामदायक स्थान नहीं होगा। स्वर्ग एक ऐसा स्थान है "जहां दुष्ट अपनी दुष्टता से किसी को तंग नहीं कर सकते, और जो लोग परेशान हैं उनको वहां विश्राम मिलेगा।" अधर्मी लोग इस पृथ्वी पर दुष्टता के कार्यों से सदा लोगों को तंग करते रहते हैं। यह बिल्कुल अनुचित होगा कि उन्हें स्वर्ग में जाने की आज्ञा दे दी जाये ताकि वे वहां भी धर्मी लोगों को तंग करते देख सकते हैं कि सच्चा न्याय और उचित बात यही होगी कि अनन्त जीवन का घर केवल उनको ही मिले जो आज्ञा मानने वाले हैं तथा अनन्त विनाश का घर उनको जो आज्ञा न मानने वाले हैं।

II आज्ञा मानना सीखना चाहिए

(1) मनुष्य जब जन्म लेता है, तब से ही उसमें एक इच्छा होती है। इसमें उसकी अपनी ही भलाई होगी यदि वह अपनी इच्छाओं को अनुशासन में लाकर उन पर संयम रखे। एक बच्चा जब एक गर्म चूल्हे को छूता है तब उसका हाथ जलता है और वह परमेश्वर के नियम को सीखता है अर्थात वह प्रकृति के नियम को समझता है कि प्राकृतिक नियमों को मानना आवश्यक है नहीं तो उसे इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। उसकी इच्छा शायद उससे यह कहे कि वह खिड़की में से एक 'सुपरमैन' की तरह कूद पड़े, परन्तु वह इस बात को भी जानता है कि उसे परमेश्वर के नियम की ओर भी ध्यान देना है अर्थात परमेश्वर द्वारा बनाया गया गुरूत्वाकर्षण का नियम। सो हम देखते हैं कि परमेश्वर के नैतिक तथा आत्मिक नियम मानना आवश्यक हैं।

(2) मसीह ने भी आज्ञा माननी सीखी थी (फिलिप्पियों 2:8)। वह मनुष्य था ही परन्तु ईश्वरीय भी था, क्योंकि वह एक मनुष्य भी था इसलिये वह आज्ञा को तोड़ भी सकता था, परन्तु दुख उठाकर उसने अपनी इच्छा को परमेश्वर की इच्छा पर छोड़ दिया था। वह हमारे लिये आज एक आदर्श उदाहरण है।

(3) अपने बच्चों को आज्ञा मानने का पाठ सिखाने के लिये परमेश्वर ने कई

कठोर तरीकों का इस्तेमाल किया था क्योंकि हमारे लिये यह पाठ सीखना बहुत आवश्यक है इसलिये उसने आज्ञा मानने वालों के लिये बड़ा प्रतिफल रखा है तथा आज्ञा न मानने वालों के लिये कठोर दण्ड को रखा है। स्वर्ग में भी आज्ञा माननी सीखनी पड़ेगी क्योंकि परमेश्वर ने उन स्वर्गदूतों को भी नहीं छोड़ा जिन्होंने पाप किया था। उसने नूह के समय के लोगों को भी नहीं छोड़ा। सदोम और अमोराह को भी नहीं छोड़ा। यह उदाहरण हमें आज्ञा मानने की आवश्यकता को बताते हैं (2 पतरस 2:4-6)। जो बातें इस्राएलियों के साथ घटीं थी वे सब हमारी चेतावनी के लिये थीं(1 कुरन्थियों 10:11)।

III नैतिक नियमों को तोड़ना

नैतिक प्राणियों में अपनी जिम्मेवारियों को निभाने की समझ होती है। यद्यपि अधिकतर लोगों में नैतिक नियमों को पालन करने की समझ होती है, परन्तु तौ भी काफ़ी समय से इस विषय पर अनुचित धारणाएं उत्पन्न हो चुकी हैं।

(1) बहुत से लोग ऐसा सोचते हैं कि नैतिक नियमों को तोड़ना कोई बुरी बात नहीं है क्योंकि वे अक्सर इन नियमों को तोड़ते हैं तथा उनके लिये ज़माने के अनुसार यह एक रिवा़ज सा बन गया है। जब इस प्रकार का सोच-विचार पनपने लगता है तो व्यभिचार को एक साधारण-सी बात समझा जाता है, तथा नैतिकता को व्यर्थ सी बात माना जाता है और जो इसमें बने रहना चाहते हैं उन्हें बहुत ही आधुनिक समझा जाता है। तुर्की देश में एक शहर है जहां अधिकतर लोग अन्धे हैं। यह अन्धे लोग ऐसा मानते हैं कि अन्धापन एक सामान्य बात है तथा देखने वालों को वे अन्धे लोग बड़ा ही भिन्न समझते हैं और यह भी कहते है कि देख सकने वाले लोग सामान्य नहीं है परन्तु ऐसा मान लेने से यह बात उचित नहीं हो सकती। अन्धेपन को आज भी एक आसामान्य बात माना जाता है, चाहे अन्धे लोग इस बात को मानें या न मानें। परमेश्वर इस प्रकार के लोगों के लिये कहता है कि ''वे अच्छे को बुरा तथा बुरे को अच्छा कहते हैं।'' परन्तु केवल कहने से ही ऐसा नहीं हो सकता। आज यह खतरनाक बुराई बढ़ती ही जा रही है, विशेषकर हमारे युवाओं के बीच में, क्योंकि बुराई करने वाले चरित्रहीन लोगों को बड़े ही बढ़ा-चढ़ाकर हीरो तथा हीरोहिनों के रूप में दिखाया जाता है। इस बात से यह पता चलता है कि कुछ लोग पाप को बड़े ही अच्छे नज़रिये से देखते हैं। किसी भी जाति के लोगों के लिये यह बड़ी ही खतरनाक बात होगी यदि उनके बीच में पाप को बड़ी आसानी से नज़र-अन्दाज़ कर दिये जाये। यिर्मयाहं भविष्यदूक्ता ने ऐसे लोगों के लिये यूं कहा था कि वे घृणित कामों के कारण लज्जित नहीं होते ''वे लज्जित होना जानते ही नहीं'' इसलिये वे गिरेंगे (यिर्मयाह 6:15)। वे गिर गये तथा उस सारी जाति को गुलाम बना लिया गया।

(2) **छल-कपट की बातें करने वाले अनेक लोग हमें इस बात में विश्वास करने के लिये कहते हैं कि पाप प्रचारकों का एक आविष्कार है,** यदि प्रचारक इस बात को कहना बन्द कर दें कि क्या सही है क्या गलत है, तो पाप जैसी कोई भी चीज़ इस संसार में विद्यमान ही नहीं होगी। अनेक लोग पाप को बड़े ही मज़ाक के रूप में लेते हैं तथा वे पाप की गम्भीरता और उसके भयंकर परिणाम को नहीं समझते। परमेश्वर ऐसे लोगों के लिये कहता है: ''मूढ़ लोग दोषी होने को ठट्ठा जानते हैं'' (नीतिवचन 14:9)।

(3) कुछ लोग इस प्रकार की धारणा रखते हुए कहते हैं, कि कुछ भी करो यदि उसमें कोई बुराई दिखाई नहीं देती। परन्तु जो लोग बाइबल में विश्वास रखते हैं वे इस प्रकार की धारणा के विषय में सोच भी नहीं सकते। परमेश्वर ने हमें अच्छाई और बुराई का एक उचित मापदण्ड दे रखा है।

(4) **कई लोग ऐसा सोचते हैं कि यदि समाज में रहना है तो उन्हें उन बातों को मानना या करना पड़ेगा जो लोग उस समाज में रहकर करते हैं।** विज्ञापन देने वाली अनेक संस्थाएं भी इस बात के लिये लोगों को कायल करती हैं। अनेकों माता-पिता जो अपने बच्चों की बहुत लोकप्रियता देखना चाहते हैं, उन्हें इस बात के लिये उत्साहित करते हैं कि वे संसार के साथ हो लें ताकि सांसारिकता के कार्यों में भाग ले सकें। अमरीका में एक सूचना के अनुसार अधिकतर बच्चे हाई स्कूल पहुंचने तक तकरीबन सब अनुचित कार्य कर लेते हैं। तब वे यह भी सोचते हैं कि केवल एक ही ''फ़ैशन'' वाली बात करने के लिये रह गई है और वह है शराब पीना, नशीली वस्तुओं का सेवन करना तथा मार-पीट करना। परमेश्वर का वचन कहता हैं: ''बुराई करने के लिये न तो बहुतों के पीछे हो लेना'' (निर्गमन 23:2)।

(5) परमेश्वर क्यों चाहता है कि हमारा जीवन नैतिक रूप से साफ़-सुथरा तथा पवित्र हो? क्योंकि वह सब मनुष्य जाति की भलाई चाहता है। किसी भी पाप को करने के परिणाम के विषय में ज़रा सोचिये। आप इस बात से यह निष्कर्ष निकालेंगे कि पाप सदा दुख को ही लाता है। कोई भी व्यक्ति जब अपने नैतिक जीवन में लापरवाही बरतता है तो आत्मिक बातों के लिये उसकी भूख मर जाती है और तब उसकी आत्मा की हालत बिगड़ने लगती है।

IV आत्मिक पाप

क्या केवल अच्छा नैतिक जीवन ही होना काफ़ी है? अनेक लोग इसी प्रकार से सोचते हैं, परन्तु हम चाहेंगे कि परमेश्वर हमें इस बात का उत्तर दे। अपने आरम्भ के इतिहास में हम कुछ ऐसे पापों के विषय में देखते हैं जिनका नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं था, परन्तु वे फिर भी गलत थे, अर्थात प्रभु के नियमों को किसी भी रूप में तोड़ना पाप है। उदाहरण के रूप में:

(1) **अदल-बदल करने का पाप**-परमेश्वर ने कैन तथा हाबिल को पशु की भेंट चढ़ाने को कहा था। कैन ने इस बात को न मानकर उसके बदले में भूमि की उपज में भेंट चढ़ाई। परमेश्वर इस बात से इतना अप्रसन्न हुआ कि उसने उसकी भेंट को ग्रहण नहीं किया। भूमि की उपज की भेंट चढ़ाने में कोई बुराई नहीं थी, परन्तु यह उपासना में परमेश्वर का नियम तोड़ना था। यह कार्य धार्मिक रूप से किया गया था परन्तु तौभी यह पाप था।

(2) **नियम को तोड़ने का पाप**-मूसा के नियमानुसार, सब्त के दिन को तोड़ना एक पाप था (गिनती 15:33-36)। यह कोई नैतिक नियम नहीं था, परन्तु एक आत्मिक पाप था।

(3) **परमेश्वर के नियम में अपनी बातें जोड़ना** ''जो कोई आगे बढ़ जाता है, और मसीह की शिक्षा में बना नहीं रहता, उसके पास परमेश्वर नहीं'' (2 यूहन्ना 9-11)।

(4) **परमेश्वर के नियमों की उपेक्षा करना**- उसके नियमों की उपेक्षा करके उनका उल्लंघन करना भी पाप है। ''इसलिये जो कोई भलाई करना जानता है और नहीं करता उसके लिये पाप है। (याकूब 4:17)। प्रकाशितवाक्य की पुस्तक के 22 अध्याय तथा उसके 18,19 पदों में परमेश्वर हमें यह सिखाता है कि मनुष्य को परमेश्वर के वचन में न तो जोड़ना चाहिए और न ही उसमें से कुछ निकालना चाहिए।

(5) **अधूरी आज्ञा मानना भी पाप है**- क्योंकि यह एक तरह के प्रभु के अधिकार का तिरस्कार करना है। उदाहरण के लिये हम देखते हैं कि राजा शाऊल को आज्ञा दी गई थी कि सारे अमालेकियों को मार डालना (1 शमूएल 15:1-24)। शाऊल ने काफ़ी हद तक वो सब कुछ किया जो प्रभु ने उसे करने को कहा था। लेकिन उसने सबको मारकर अमालेकियों के राजा को जीवित रख छोड़ा तथा कुछ अच्छे पशुओं को भी चुनकर रख लिया यह कहकर कि मैं इन्हें प्रभु के लिये बलि चढ़ाने के लिये ले आया हूं। शमूएल भविष्यदाक्ता के द्वारा परमेश्वर ने उसे बहुत

डांटा क्योंकि उसने आज्ञा का उल्लंघन किया था: ''सुन, मानना तो बलि चढ़ाने से और कान लगाना मेढ़ों की चर्बी से उत्तम है। देख, बलवा करना और भावी कहलाने वालों से पूछना एक ही समान पाप हैं, और हट करना मूरतों और गृहदेवताओं की पूजा के तुल्य हैं।''

V आज्ञा उल्लंघन के कारण-

जबकि सारी मनुष्य जाति के लिये आज्ञा मानना एक बहुत ही आवश्यक बात है तो आईये कुछ ऐसे कारणों को देखें जिनके कारण लोग आज्ञा का उल्लंघन करते हैं।

(1) **मनुष्य शायद अनजाने में परमेश्वर की आज्ञाओं का उल्लंघन करे**-कुछ लोग यह नहीं जानते कि परमेश्वर उनसे क्या चाहता है। परन्तु यदि हम अपनी अदालतों और कचहरियों को देखें तो वहां अनजाने में नियम तोड़ने के बहाने को नहीं माना जाता। आज परमेश्वर का वचन सब देशों में उपलब्ध है। न्याय के दिन कोई भी अनजाने में हुई गल्ती की क्षमा नहीं मांग सकता।

(2) **एक विद्रोही मन आज्ञा उल्लंघन करने का कारण होता है**-यह बात एक नास्तिक से लेकर उस व्यक्ति तक लागू होती है जो प्रभु की कुछ आज्ञाओं को इसलिये नहीं मानता क्योंकि वे उसे पसन्द नहीं है।

(3) अनुभवों तथा विवेक पर भरोसा रखकर चलना भी आज्ञा उल्लंघन का कारण हो सकता है-हमारा विवेक एक भरोसे मन्द कुंजी नहीं है। प्रेरित पौलूस एक सही विवेक (मन) से मसीहियों को सता रहा था, परन्तु यह बात सही नहीं थी (प्रेरितों 23:1)। क्योंकि वह बाद में कहता है कि: ''मैंने भी समझा था कि यीशु नासरी के नाम के विरोध में मुझे बहुत कुछ करना चाहिए (प्रेरितों 26:9)।

(4) **संसार से प्रेम करना भी पाप का कारण हो सकता है।** लूत की पत्नी ने पीछे मुड़कर देखा क्योंकि उसका मन अभी भी सदोम की ओर लगा हुआ था। किसी भी व्यक्ति के लिये यह बड़ा ही असम्भव है कि वह प्रभु के पीछे चलते हुये अपने मन को संसार की ओर रखे। क्योंकि ''जहां तेरा धन है वहां तेरा मन भी लगा रहेगा।''

(5) **अन्धे अगुवों के पीछे चलना**- यह बात अनेक लोगों को परमेश्वर से दूर रखती हैं। ''वे अन्धे मार्ग दिखाने वाले हैं: और अन्धा यदि अन्धे को मार्ग दिखाए, तो दोनों गडडे में गिर पड़ेंगे'' (मत्ती 15:14)।

(6) **एक कठोर मन परमेश्वर के सत्य को अस्वीकार करता है** (मत्ती 13:15) एक व्यक्ति का मन शायद एक समय पर मोटा हो अथवा वह परमेश्वर की बातों को सुनना न चाहता हो लेकिन बाद में हो सकता है कि वह उसे ग्रहण

करना चाहे। पौलूस के विषय में यह बात सत्य है क्योंकि उसने स्तिफनुस के प्रवचन को सुना था। तथा उसको पत्थरावा करने में लोगों का साथ भी दिया था (प्रेरितों 7), परन्तु बाद में उसने प्रभु की आज्ञा को माना।

(7) **लोगों का डर भी कई बार आज्ञा न मानने का कारण होता है**- पिलातुस ने लोगों की बात सुनकर अथवा उनके डर से यीशु को क्रूस की मृत्यु का दण्ड दिया। उसके पास इतना साहस नहीं था कि वह लोगों की इच्छा के विरूद्ध अपने आप में एक पक्का निश्चय बनाकर यह कह सके कि यीशु निर्दोष है।

(8) **टाल-मटोल करना भी आज्ञा न मानने का एक कारण है**-कुछ लोग यह जानते हैं कि प्रभु उन्हें क्या करने को कहता है परन्तु वे करते नहीं हैं क्योंकि वे शैतान की अधिक सुनते हैं। जो कहता है: ''कल-कल'' परन्तु वे प्रभु की नहीं सुनते जो कहता है: ''आज कर'' (इब्रानियों 3:7,8)। कल पर भरोसा करना एक ऐसा भ्रम है जिसमें एक झूठी आशा है।

आज्ञा मानना

''मान लीजिये आप अपनी बेटी को कहकर जाती हैं कि फ़र्श पर अच्छी तरह से पोछा लगा देना और बरतन भी अच्छी तरह से धो देना। जब आप वापस आतीं हैं तो आप देखती हैं कि उसने पोछा तो लगा दिया है लेकिन बरतनों को हाथ तक भी नहीं लगाया तब क्या उसने वास्तव में आपकी आज्ञा को माना? इससे क्या हम यह नहीं सीखते कि परमेश्वर की आधी आज्ञा मानने का अर्थ है उसकी आज्ञा को न मानना?

रिबका (Rebekah)

सारे साहित्य में शायद ही कोई ऐसा चरित्र मिलेगा जो रिबका की तरह सुन्दर, सजीव तथा प्रशंसनीय हो। लेकिन बड़े ही दुख की बात यह है कि उसके जीवन का प्रत्येक पृष्ठ उस तरह से साफ़-सुथरा तथा सुन्दर नहीं रहा जैसे आरम्भ में था। आईये इस कहानी को देखें। इसहाक इस समय चालीस वर्ष का था और उसकी मां को मरे हुए लगभग तीन वर्ष हो चुके थे। इब्राहिम की बहुत इच्छा थी कि उसका पुत्र इसहाक अपने ही लोगों में से अपने लिये पत्नी देखे, न कि कनानियों की लड़कियों में से। इसलिये इब्राहिम ने अपने सबसे भरोसेमन्द दास एलीआज़र को आज्ञा दी कि मसोपोटामिया में जाकर इसहाक के लिये पत्नी चुने। (उत्पत्ति 24:1-9) बहुत दिनों की यात्रा के पश्चात एलीआज़र उस स्थान पर पहुंचा जो इब्राहिम के कुटुम्बियों का नगर था। वहां एक कुएं के पास उसको उसकी प्रार्थना का उत्तर मिला जब वह वहां रिबका से मिला।

I एक सुन्दर सी नवयुवती-

इस जवान स्त्री की कुछ प्रशंसनीय विशेषताओं के बारे में ज़रा विचार कीजिए।

(1) **''वह अति सुन्दर और कुमारी थी''** (उत्पत्ति 24:16)। उस समय जो युवक पत्नी की तलाश में थे उनके लिये तो उसकी सुन्दरता ही काफ़ी थी, परन्तु उसमें शारीरिक सुन्दरता से बढ़कर और भी अनेक विशेषताएं थीं।

(2) **वह पहुनाई करनेवाली, शालीन तथा दयालु थी**- तुरन्त ही उसने एलिआज़र के दासों को पानी पीने के लिये दिया। उसने उनसे कहा कि वह उनके ऊंठों के लिये भी कुएं से पानी भरेगी तथा उनको पिलाएगी। (उत्पत्ति 24:18-20)। एक बाइबल के सिखानेवाले ने एक बार एक लड़के से पूछा कि दया से भरा हुआ प्रेम क्या है? उस लड़के ने उत्तर दिया, ''कि यदि मैं अपनी माता से जाकर कहूं कि मुझे ब्रैड और मक्खन दे दो परन्तु मक्खन लगी हुई ब्रैड पर वह थोड़ा सा मीठा जैम भी लगा दे जबकि वो मैंने मांगा भी नहीं तो यह एक दया से भरा हुआ प्रेम होगा''।

(3) **वह परिश्रमी थी, आलसी नहीं थी**- हममें से अधिकतर लोग शायद उन पुरूषों से यह कहते कि ''कुएं से ऊंटों को पिलाने के लिये पानी अपने आप निकाल लो"। 'रिबका' फुर्ती से अपने घड़े का जल हौदे में डालकर फिर कुएं पर

भरने को दौड़ गई और उसने सब ऊंटों के लिये पानी भर दिया।'' (उत्पत्ति 24:20)। उन अजनबियों के लिए जो एक लंबी यात्रा करके थके हुए आये थे उसने जितना करना था उससे भी अधिक किया। एक कहावत है कि ''जो अपने कर्त्तव्य से अधिक नहीं करता वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता''। परमेश्वर के द्वारा सुस्ती की सदा ही निन्दा की गई है तथा अनेक लोग अपना काम इसलिये नहीं कर सके या नहीं करते क्योंकि उन्होंने कभी भी अपने कार्य को करने का अधिक प्रयत्न ही नहीं किया। ''किस्मत'' उनके लिये केवल एक सहारा देने वाली बैसाखी की तरह है जिसको लेकर वह अपनी सफ़लता तथा असफ़लता के बारे में दूसरों को समझाने की कोशिश करते हैं। वे बार-बार यही कहते हैं कि हमारी किस्मत हमारा साथ नहीं दे रही है। हमारी तो किस्मत ख़राब है।

(4) **उसके जीवन में एक नई उमगं तथा जोश था**- इस बात पर ध्यान करें कि उसके बारे में कितनी बार कहा गया है कि ''वह दौड़ी'' यानि वह प्यासे ऊंटों को पानी पिलाने के लिये दौड़ी, वह अपने परिवार के लोगों को यह बताने के लिए दौड़ी कि एलीआज़र आया है, तथा इसहाक को मिलने के लिये वह खुशी से दौड़ी चली गई, अर्थात उस व्यक्ति से जो उसका पति होने वाला था।

(5) **वह प्रयास करने में साहसी थी तथा कभी भी नये कार्य को करने से भयभीत नहीं होती थी**- एलिआज़र ने अपने कार्य के बारे में रिबका के परिवार को समझाया कि उसने परमेश्वर से सहायता मांगी है ताकि इसहाक के लिये पत्नी ढूंढे तथा उन्हें यह भी बताया कि रिबका को परमेश्वर ने चुना हैं। अब वो समय आ गया था जब कि रिबका को एक बहुत बड़ा फ़ैसला करना था, एक ऐसा फ़ैसला जो उसके पूरे जीवन से सम्बंध रखता था। यह प्रत्यक्ष ही है कि वह कोई भी फ़ैसला करने में बड़ी ही जल्दबाज़ी करती थी, जोकि अनेक बार तो बड़ी बुद्धिमानी की बात होती है परन्तु कई बार यह एक मूर्खता होती है। उसके भाई तथा माता ने उसे बुलाकर पूछा ''क्या तू इस पुरूष के साथ जायेगी?'' उसका सारा परिवार इस समय एक स्थान पर एकत्रित था, और इस तनावपूर्ण तथा नाटकीय क्षणों में एलिआज़र उसके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था। वह अब क्या फ़ैसला करेगी? आईये देखें-

(6) **''मैं जाऊंगी''**। इन शब्दों को कहकर उसने अपने जीवन की यात्रा शुरू कर दी। इन दो शब्दों को कहकर उसने यह निश्चय किया कि वह अपने परिवार, मित्रों तथा आस-पास की जानी-पहचानी सब वस्तुओं को छोड़कर एक अनजान स्थान पर आयेगी तथा एक ऐसे पुरूष की पत्नी बनेगी जिसे उसने कभी नहीं देखा था। उस दिन से आज तक अनगिनत सैकड़ों स्त्रियों से यह ही प्रश्न किया जा चुका

है कि ''क्या तू इस पुरूष के साथ जायेगी?'' और उनमे से प्रत्येक ने ये ही उत्तर दिया कि ''मैं जाऊंगी तथा अपनी इच्छा और दृढ़ निश्चय से उन्होंने एक ऐसे भविष्य का सामना किया जिसमें खुशियां और दुख दोनों शामिल थे। यह प्रत्यक्ष ही है कि रिबका ने जो फ़ैसला किया था वह एलिआज़र की उस बात पर भी आधारित था कि उसे प्रभु ने इसहाक की पत्नी होने के लिये चुना है। हम इतना जानते हैं कि इस शादी की योजना परमेश्वर के द्वारा बनाई गई थी। यह बात सत्य है कि एक सफ़ल शादी का यह एक बहुत ही अच्छा आदर्श है, परन्तु आज ऐसा नहीं है। क्यों? क्योंकि इसमें अब मनुष्य के अपने सोच-विचार शामिल हो गये हैं। यीशु ने स्पष्ट शब्दों में यह बताया था कि शादी की उत्पत्ति परमेश्वर के द्वारा हुई है ''इसलिये जिसे परमेश्वर ने जोड़ा है, उसे मनुष्य अलग न करे'' (मत्ती 19:6)। लेकिन मनुष्य के अपने सोच विचार हमेशा इसमें आ ही जाते हैं। यदि कोई शादी सफ़ल नहीं होती तो यह मनुष्य की अपनी त्रुटियों के कारण होता है और इसमें परमेश्वर का कोई दोष नहीं होता।

II परमेश्वर की प्रतिज्ञा-

रिबका कनान में एलिआज़र के साथ आ गई थी। जब वे वहां पहुंचे तो उन्होंने इसहाक को अकेले खेत में खड़ा हुआ देखा। बाइबल बताती है कि वह उस समय मनन कर रहा था। कौन उसकी दुल्हन होगी? वह देखने में कैसी होगी? बहुत सारी बातों के विषय में वह इस समय सोच रहा था। जब रिबका ने उसे खेत में देखा, तो वह खुशी से दौड़कर उससे मिलने गई। वह अब उसकी दुल्हन बन गई थी और उनकी शादी की शुरूआत एक बहुत ही रोचक और अच्छे ढंग से शुरू हुई थी। इस विवरण से हमें यह पता चलता है कि इसहाक रिबका से बहुत प्रेम करता था तथा वह उसके दुख-मुसीबत में उसको सदा दिलासा देती थी। प्रेम और दिलासा देना यह इन्सानियत की दो मूल आवश्यकताएं हैं। वह पत्नी बुद्धिमान होती है जो मुसीबत के समय अपने पति को सान्त्वना देती है, उसकी चिन्ता को दूर करने में सहायक होती है, तथा उसकी निराशा को दूर भगा देती है। उनकी शादी को हुए लगभग बीस साल हो चुके थे तथा उनके पास कोई बच्चा नहीं था। उनके यहां पहिला बच्चा होने से पूर्व प्रभू ने रिबका को बताया था कि उसके पास जुड़वां बच्चे होंगे, जिनके दो राज्य होंगे और बड़ा बेटा छोटे के आधीन होगा (उत्पत्ति 25:21-23)। एसाव पहिले उत्पन्न हुआ तथा उसके बाद याकूब। ''फिर वे लड़के बढ़ने लगे और एसाव तो बनवासी होकर चतुर शिकार खेलने वाला हो गया, पर याकूब सीधा मनुष्य था, और तम्बुओं में रहा करता था। और इसहाक तो एसाव के अहेर का मांस खाया करता था, इसलिये वह उससे प्रीति रखता था पर रिबका

याकूब से प्रीति रखती थी। (उत्पत्ति 25:27,28)।

प्रभु ने स्पष्ट रूप से यह प्रतिज्ञा की थी कि एक दिन याकूब का दर्जा अपने भाई एसाव से बड़ा होगा। लेकिन याकूब के प्रति पक्षपात दिखाकर रिबका ने परमेश्वर की प्रतिज्ञा में धीरज नहीं रखा तथा अपने प्यारे बेटे को लाभ पहुंचाने के लिये उसने अपनी एक युक्ति निकाली।

III एक अच्छी तथा सहयोगी माता के भिन्न-भिन्न रूप-

रिबका का बाद का जीवन बड़ा ही उलझन में डाल देने वाला तथा निराशाजनक था, एक ऐसा जीवन जो प्रतिज्ञा तथा सुअवसर के साथ आरम्भ हुआ था। हम किस प्रकार से यह जानते हैं कि उसका केवल अपना चरित्र ही नहीं परन्तु इसहाक के साथ एक सुन्दर मिलनसार जीवन भी बिगड़ने लगा था?

(1) उसका चरित्र यहां तक बिगड़ने लगा था कि वह झूठ बोलने तथा धोखा देने के लिये भी तैयार हो गई थी-यद्यपि उसके जीवन में बहुत सी अच्छी तथा सराहनीय बातें थी, तौभी झूठ के जाल में फंसने का कारण था उसका पक्षपात जो उसने अपने पुत्र याकूब के प्रति दिखाया था। यद्यपि एसाव ने जल्दबाज़ी में आकर थोड़ी सी दाल के लिये और अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिये अपना पहिलौठे का अधिकार बेच दिया था (उत्पत्ति 25:29-34), लेकिन इसहाक की आशिष के बिना पहिलौठे का अधिकार व्यर्थ था। इस बात की वास्तविकता को जानते हुए रिबका ने एक युक्ति बनाई ताकि छल से याकूब को इसहाक से आशिष दिला सके। उसने मांस का स्वादिष्ट भोजन बनाया, तब उसने बकरियों के बच्चों की खालों को उसके हाथों में और उसके चिकने गले में लपेट दिया यह इसलिये किया ताकि उसका पिता उसे रोंआर या बालों वाला एसाव समझे। यद्यपि याकूब को आरम्भ में हिचकिचाहट तो हुई होगी लेकिन अपनी मां के दबाव में आकर वह उस भोजन को अपने अंधे पिता के पास ले गया, और अपने आपको एसाव जताकर उसने अपने पिता से आशीष मांगी। एक बहुत ही बड़ा झूठ बोलकर तथा छल-कपट से उसने आशिष प्राप्त कर ली, परन्तु यह सारा अनुचित कार्य उसकी मां के द्वारा करवाया गया था (उत्पत्ति 27:6-29)।

(2) इसहाक के साथ उसका एक सहयोगी बनकर रहना केवल अब एकमात्र दिखावा था-हम यह किस प्रकार से जानते है? जहां प्रेम होता है वहां छल-कपट का कोई स्थान नहीं है, परन्तु अपने पुत्र की भलाई के लिये उसने अपने पति को धोखा देने की योजना बनाई। इस प्रकार के स्वभाव में आपस के प्रेम में रूकावटें पैदा होने लगती हैं। आपस में एक दूसरे का आदर करना, एक दूसरे के प्रति ईमानदार रहना, विश्वास करना, जब यह बातें समाप्त होने लगती हैं, तब आपस की

साझेदारी के टुकड़े होने लगते है। तथा उसमें दरारें पड़ने लगती है। समय के साथ-साथ प्रत्येक पति-पत्नी या तो आपस में एक दूसरे के बहुत नज़दीक आने लगते हैं या फिर एक दूसरे से दूर होते जाते हैं। क्योंकि प्रेम में जीवन है और इसलिये किसी भी जीवित वस्तु का पालन पोषण करके उसको इस योग्य किया जा सकता है ताकि वह बढ़ सके। एक समय था जब रिबका और इसहाक में आपस में बहुत प्रेम था परन्तु जब एक ही घर में रहते हुए वे बूढ़े होने लगे उनके मनों के बीच में एक दरार पड़ने लगी।

(3) यह एक पक्की वास्तविकता है कि समय के अनुसार हम सबमें परिवर्तन आता है। वह छोटा बच्चा जो अपनी मां के घुटनों पर खेलता था, अब कहां है? आप भी कभी एक जवान लड़की थी, वह अब कहां है? एक दिन एक अस्सी वर्ष की स्त्री मेरे दफ्तर में आई। उसकी आंखों में एक चमकती हुई खुशी थी। वह मुझसे कहने लगी ''मेरे पास कुछ है जो मैं आपको दिखाना चाहती हूं। यह मेरे बचपन की एक तस्वीर है, जब मैं सोलह वर्ष की थी।'' जब हम तस्वीर को देख ही रहे थे तब वह कहने लगी उसकी बात में थोड़ी खुशी थी और थोड़ा आश्चर्य भी: ''मुझे आश्चर्य होता है कि इस लड़की का क्या हुआ? वह कहां चली गई? क्योंकि मैं अब वैसी नहीं हूं जो आप इस तस्वीर में देख रही हैं।'' हां, वह बदल चुकी है-केवल शारीरिक रूप से ही नहीं, क्योंकि वह इस बात को भी मानती है कि समय के अनुसार वह बिल्कुल भिन्न हो गई है, और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका अभी का जीवन उसके आरम्भिक वर्षो से ही बना है। हम प्रतिदिन बदल रहे हैं, अच्छाई के लिये अथवा बुराई के लिये।

आयु के साथ-साथ हम या तो मधुर, मीठे, बुद्धिमान, अच्छी समझ रखने वाले होते जाते हैं या फिर कड़वे, झगड़ालू और ठीक तरह से न रहने वाले बन जाते हैं। किसी न किसी दिशा में प्रत्येक जन चल रहा है। जो लोग परमेश्वर के बताये हुए आदर्शो पर चलते हैं वे अच्छे तथा अधिक सफ़ल होते हैं। ये बात जीवन के हर एक पहलू पर उचित ठहरती है, चाहे ये आत्मिक रूप से बढ़ना हो या अपने आप को सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाना हो। रिबका में भी परिवर्तन आया। वह बदल गई थी। किस प्रकार से यह एक सुन्दर और जवान स्त्री एक धोखेबाज़ बूढ़ी स्त्री में बदल गई थी? जीवन के इस मार्ग पर परमेश्वर के साथ चलते-चलते वह भटक कर कुछ कार्यो को अपने तरीकों से करने लगी थी। अपने जीवन को अच्छी तरह से चलाने के लिये बहुत अच्छा होगा यदि हम परमेश्वर के साथ चलते हुये आयु में बढ़े। क्योंकि ''पक्के बाल शोभायमान मुकुट ठहरते हैं, वे धर्म के मार्ग पर चलने से प्राप्त होते हैं (नीतिवचन 16:31)।

IV रिबका के पाप के द्वारा उनके लिये केवल दुख ही आया

माता-पिता अपने बच्चों के लिये बड़े-बड़े उद्देश्य रखते हैं और यह उनके लिये एक बहुत ही गर्व की बात होती है तथा इतना ही नहीं वे अपने बच्चों को उन उद्देश्यों को प्राप्त कराने में हर तरह से उनकी सहायता करते हैं। परन्तु रिबका की इच्छा बिल्कुल नियन्त्रण से बाहर हो गई थी। अपने पुत्र के लिये बेईमानी से योजना बनाने का परिणाम उसके लिये बहुत ही कष्टपूर्ण निकला।

(1) उसके इस अनुचित कार्य के कारण इसहाक को बहुत दुख हुआ, और इस छल-कपट को जब उसने जाना तो वह थर-थर कांपने लगा (उत्पत्ति 27:33)।

(2) अपनी मां के इस क्रूर और कठोर व्यवहार तथा चलाकी को देखकर एसाव उसको बहुत ही अनादर की दृष्टि से देखने लगा तथा जलन में आकर उसने दूसरी जाति की लड़कियों से शादी कर ली और ऐसी जाति का पिता बन गया जो इस्राएल जाति के लिये एक कांटे के समान थी। (उत्पत्ति 28:8,9)।

(3) उसकी इस तरफ़दारी के प्रेम तथा अनुचित उद्देश्य के कारण इसहाक को भयंकर परिणाम का सामना करना पड़ा तथा जब एसाव ने यह जान लिया कि उसका अधिकार उससे छीन लिया गया है तो वह याकूब से बहुत घृणा करने लगा तथा उसने उसकी जान लेने की ठान ली (उत्पत्ति 27:41)। परन्तु जब रिबका को उसकी योजना के बारे में पता चला तो उसने याकूब को बुलाकर उससे कहा: "सुन, तेरा भाई एसाव तुझे घात करने के लिये अपने मन को धीरज दे रहा है। सो अब हे मेरे पुत्र, मेरी सुन और हरान को मेरे भाई लबान के पास भाग जा; और थोड़े दिन तक, अर्थात जब तक तेरे भाई का क्रोध न उतरे तब तक उसी के पास रहना फिर जब तेरे भाई का क्रोध तुझ पर से उतरे, और जो काम तूने उससे किया है उसको वह भूल जाए, तब मैं तुझे वहां से बुलवा भेजूंगी: ऐसा क्यों हो कि एक ही दिन में मुझे तुम दोनों से रहित होना पड़े (उत्पत्ति 27:42-45)। इसलिये उसके भाई के क्रोध से उसे बचाने के लिये उसने याकूब को दूर भेज दिया।

(4) **अपने इस पाप के कारण उसे अपने पुत्र से अलग होना पड़ा।** वह शायद यह जानती भी नहीं थी कि अपने पुत्र को जिसे वह अकेला दूर हारान में भेज रही है अब कभी भी देख न पाएगी। अब उसको केवल अपने विवेक के अनुसार रहना था, इस बात को जानते हुए कि उसी के कारण उसके सारे परिवार की खुशियों का विनाश हुआ है। केवल वही लोग जो इस प्रकार के अनुभव से होकर गुज़रे हों, उसके इस दुख को समझ सकते हैं। हां, अवश्य ही, "आज्ञा उल्लंघन करने वालों का मार्ग कठिन होता है।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसको इस बात से बहुत ही अफ़सोस हुआ होगा-परन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी। इस जीवन में कई बार हमारे कदम इतने आगे बढ़ चुके होते हैं कि जिन्हें वापस नहीं लाया जा सकता तथा बहुत से ऐसे कार्य होते हैं जिन्हें अधूरा नहीं छोड़ा जा सकता।

V रिबका का अपने मनपसन्द पुत्र के प्रति अन्याय-

(1) उसके इस भयंकर उद्देश्य के कारण ही याकूब ने पाप किया, क्योंकि अपनी माँ की बुद्धिमानी पर विश्वास करके याकूब ने सलाह के लिये उसका सहारा लिया था। जीवन के एक ऐसे मोड़ पर उसने अनुचित मार्ग अपनाया था और यह सब उसकी मां के कारण ही हुआ था। इसके बुरे परिणामों का उन दोनों ने कई वर्षों तक सामना किया। रिबका की ही तरह अनेक-माता-पिता अपने बच्चों को कई अनुचित कदम उठाने की सलाह देते हैं। कुछ लोग ऐसा इसलिये करते हैं ताकि उनके बच्चे खूब प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हो जायें। आज अनेक माताएं बहुत दुखी हैं क्योंकि उन्होंने अपने बेटे-तथा बेटियों को सांसारिक कामों में भाग लेने के लिये बढ़ावा दिया था। कई बार जवान लोग अपने माता-पिता के बड़े-बड़े सपनों को पूरा करने के लिये अनेक ऐसे फ़ैसले कर बैठते हैं जो बदले नहीं जा सकते। जब रिबका ने छल कपट करने की योजना बना ली थी, तब वह किसी भी तरह से उसको बदल नहीं सकी। अनेक बार एक कार्य के द्वारा अनेकों ऐसी घटनाओं की जंजीर सी बन जाती है जिसमें मनुष्य बंधकर जकड़ जाता है तथा तब उसमें से वापस आना उसके लिये बहुत कठिन हो जाता है।

(2) रिबका ने अपने पुत्र को अकेला दूर भेज दिया ताकि वह अपने जीवन को एक झूठ का सहारा लेकर आगे बढ़ा सके- उसने उसे कोई ऐसी स्थिरता प्रदान करने वाली शिक्षा नहीं दी जिस पर वह निर्भर कर सके तथा जीवन में आने वाले तूफ़ान का सामना कर सके। इसके विपरीत उसने उसे यह विश्वास दिलाया कि वह यदि बुराई भी करे तो उससे अच्छाई ही उत्पन्न होगी। पर उसका यह कार्य सफ़ल नहीं हुआ, अपने अन्दर एक खालीपन को लिये हुये वह अपने पिता के घर से दूर चला गया, यह जानते हुये कि उसकी माता के द्वारा दी गई शिक्षा अनुचित थी। उसे अपने पुत्र को यह चेतावनी देनी थी कि जो लोग अनुचित बातों को बोते हैं वे अनुचित बातों की ही कटनी काटेंगे।

प्रत्येक नौजवान समय के अनुसार समाज में अपना एक स्थान बना लेता है। उसके जीवन की नींव का आधार उसके माता-पिता होते हैं। कुछ माता-पिता रिबका की तरह अपने शब्दों के द्वारा या फिर अपने जीवन के उदाहरण के द्वारा अपने बच्चों को भविष्य का सामना करने के लिये इस प्रकार की कमज़ोर नीवों के साथ भेज देते हैं जैसे- "इससे कोई फ़रक नहीं पड़ता चाहे तुम परमेश्वर की सेवा करो या न करो।" "तुम शरीर के लिये बो सकते हो, इससे कोई हानि नहीं

होगी'' ''परमेश्वर का भक्त होने से तो अच्छा है कि तुम इस संसार में एक प्रसिद्ध व्यक्ति बनो।'' ''किसी भी तरह से चाहे बेईमानी से क्यों न हो, दूसरे व्यक्ति से तुम जो कुछ भी ले सकते हो ले लो– यदि तुम ईमानदार होना चाहते हो तो यह तुम्हारी अपनी इच्छा है'' । ''काम करने की कोई आवश्यकता नहीं है, दूसरे की कमाई से यदि काम चल सकता है तो बहुत बढ़िया बात है।'' एक बच्चे के साथ यह कितना बड़ा अन्याय होगा यदि उसको इस प्रकार के सिद्धांतों पर चलने के लिये प्रोत्साहित किया जाये, क्योंकि समय आने पर, उसको भी याकूब की तरह ही ऐसी झूठी शिक्षा की मूर्खतापूर्ण कटनी काटनी पड़ेगी।

संसार में अकेले भेज दिये जाने के बाद, अब याकूब पत्थर पर सिर रखकर सो रहा है। इस बात को जानते हुये कि प्रभु उसके साथ है उसने परमेश्वर की सेवा करने की इच्छा फिर से ठानी (उत्पत्ति 28:20,21) तथा यह जानते हुये भी कि यह गलती उसकी माता की थी, उसने अपने जीवन को अच्छा तथा उपयोगी बनाया। यदि आपके जीवन में भी कोई बुराई है, तो उसे आप आज ही सुधार सकते हैं।

यद्यपि रिबका अपनी गलती पर क़ाफी पछताई होगी क्योंकि उसी के कहने पर उसके बेटे ने पाप किया था, परन्तु अपने इस फ़ैसले तथा उससे उत्पन्न होने वाले परिणामों को वह बदल न सकी। अपने जीवन में भी कुछ ऐसे फैसलों के बारे में विचार कीजिये जो आपने बिना सोचे समझें तथा जल्दबाज़ी में लिये थे और आज तक आप उनके लिये पछता रही हैं, बाद में पछतावा करने से क्या फ़ायदा?

राहेल तथा लिआ
(Rachel and Leah)

जब एसाव के क्रोध से भयभीत होकर याकूब चला गया तो मार्ग में रात्रि के समय वह विश्राम करने के लिये रूका। पत्थरों के तकिये पर जब वह सो गया तब प्रभु उसको स्वप्न में प्रकट हुआ तथा उसने उसी प्रतिज्ञा को जो उसने वास्तव में इब्राहिम तथा इसहाक से की थी दोबारा दोहराया: ''और तेरा वंश भूमि की धूल के किनकों के समान बहुत होगा और तेरे और तेरे वंश के द्वारा पृथ्वी के सारे कुल आशिष पांएगे'' (उत्पत्ति 28:14)। अपनी यात्रा को पूरा करके याकूब मिसुपुतामिया के हारान शहर में पहुंचा। शहर के बाहर एक कुएं पर पहुंचकर उसने लाबान के विषय में पूछा जो उसकी माता का भाई था। उसको बताया गया कि लाबान की बेटी राहेल कुएं के पास आ रही है। याकूब जब उससे मिला तो उसे चूमा और बहुत रोया। अपनी माता के लोगों को देखकर अवश्य ही उसे बहुत खुशी तथा राहत मिली होगी, विशेषकर इसलिये कि अपने घर को उसने दुख भरी परिस्थिति में छोड़ा था।

राहेल का हाथ मांगने के लिये उसने अपने मामू से एक समझौता किया कि वह सात वर्ष तक उनके लिये कार्य करेगा।

यानि अब प्रेम की एक बहुत ही सुन्दर कहानी आरम्भ होती है। याकूब ने खुशी तथा परिश्रम के साथ सात वर्ष तक कार्य किया ''जिस प्रकार का प्रेम उसके मन में राहेल के प्रति था, उसको देखते हुए वे सात वर्ष उसे कुछ दिनों के सामान लगने लगे'' क्या यह सम्भव है कि किसी को 2,555 दिन थोड़े से दिनों के समान लगे? हां, क्योंकि प्रेम समय की दूरी को कम कर देता है, तथा प्रत्येक दिन को प्रसन्नता के गीतों से भर देता है। बहुत समय की प्रतीक्षा के पश्चात जब विवाह का दिन आया, तो लाबान ने धोखा करके कम सुन्दर दिखने वाली बेटी लिआ को याकूब की पत्नी बनने के लिये दे दिया (उत्पत्ति 29:21-30)। याकूब, जिसने अपने पिता इसहाक के साथ धोखा किया था, इस समय अपने मामू द्वारा दिये गये धोखे के स्वाद को चखता है। लाबान ने याकूब को राहेल से विवाह करने की आज्ञा दे दी परन्तु इसके लिये एक और शर्त यह थी कि वह सात वर्ष तक उसके लिये और कार्य करे।

लिआ तथा राहेल ने अब अपने को ऐसी परिस्थिति में फंसे हुए पाया जिसे वह न तो बदल सकती थीं और न ही उस पर नियन्त्रण पा सकती थीं। यह एक बहन तथा पत्नी का बहुत दुख-भरा रिश्ता था जो आपस में इस प्रकार से बुना हुआ था कि एक के बिना दूसरे के विषय में अध्ययन करना बड़ा कठिन होगा।

I राहेल तथा लिआ अब एक दूसरे से ईर्ष्या करने के दोषी थे-

लिआ याकूब से इसलिये ईर्ष्या करने लगी थी क्योंकि वह राहेल से प्रेम करता था। राहेल जो बांझ थी, लिआ से इसलिये ईर्ष्या करने लगी क्योंकि प्रभु ने उसे बच्चों से आशीषित किया था। ईर्ष्या सब पापों में से बहुत कष्टदायक पाप है, तथा बहुत प्रचालित भी हैं।

(1) ईर्ष्या क्या है? इसकी परिभाषा इस प्रकार से दी जा सकती है: "किसी की खुशहाली को देखकर खुश न होकर दुखी होना।" परन्तु मन के जलने से हड्डियां भी जल जाती हैं (नीतिवचन 14:30)।" यह एक ऐसी बिमारी है जो रोगी के आत्मिक मन को धीरे-धीरे खाने लगती है।

(2) ईर्ष्या की जड़ें स्वार्थपन में जमी हुई होती है, यदि इसका नाश नहीं किया जाए तो यह फलने फूलने लगती हैं और इसके द्वारा मनमुटाव, बैरभाव, तथा दुर्भावनाशील बातें उत्पन्न होने लगती हैं।

(3) ईर्ष्या बुराई करने से कभी तृप्त नहीं होती। एक जीत प्राप्त करने के बाद वह चाहती है कि उसकी दूसरी जीत हो। यद्यपि याकूब राहेल से बहुत प्रेम करता था परन्तु तौभी राहेल उससे संतुष्ट नहीं थी। वह लिआ को हर सम्भव प्रत्येक वस्तु से वंचित कराना चाहती थी। "गेहूं की कटनी के दिनों में रूबेन को मैदान में दूदाफल मिले, और वह उनको अपनी माता लिआ के पास ले गया, तब राहेल ने लिआ से कहा, अपने पुत्र के दूदाफलों में से कुछ मुझे दे। उसने उससे कहा, तू ने जो मेरे पति को ले लिया है सो क्या यह छोटी बात है? अब क्या तू मेरे पुत्र के दूदाफल भी लेना चाहती है? राहेल ने कहा, अच्छा, तेरे पुत्र के दूदाफलों के बदले वह आज रात को तेरे संग सोएगा। (उत्पत्ति 30:14,15)। वहां एक अंधविश्वास यह था कि दूदाफल से बांझपन का इलाज किया जा सकता है। इस कारण से राहेल तथा लिआ एक घिनौने अथवा नीच विचारों वाले समझौते में सांझीदार बन गये थे।

(4) ईर्ष्या के द्वारा हम अपने आप में हीन भावना का अनुभव करते हैं। किसी की सफलता या उन्नति को देखकर यदि कोई व्यक्ति अपने मन में दुख तथा अशांति का अनुभव करता है तो ऐसा इस बात के होने का प्रमाण है कि उस

व्यक्ति में जो ईर्ष्या करता है वे योग्यताएं नहीं हैं जो उस दूसरे व्यक्ति में है जिससे वह ईर्ष्या करता है।

(5) ईर्ष्या का इलाज किस प्रकार से किया जा सकता है? सबसे पहले यह समझना अति आवश्यक है कि ईर्ष्या करना पाप है तथा यह आत्मा को नाश करने वाली है। (गलतियों 5:21) और तब हमें अपने मन को दूसरे के प्रति प्रेम से इतना भरना चाहिए ताकि हम खुशी करने वालों के साथ खुश हो सकें, चाहे खुशी का कोई भी कारण हो। "प्रेम डाह नहीं करता" (1 कुरिन्थियों 13:4)। प्रेम तथा ईर्ष्या मन में एक साथ वास नहीं कर सकते। जब हमारे मन में परमेश्वर तथा अपने साथी के प्रति प्रेम बढ़ता है, तो ईर्ष्या अपने आप ही भाग जाती है। हमें इस बात को जानना चाहिए कि किसी भी कार्य में सफ़लता उन्हीं को मिलती है जिनमें उसका दाम चुकाने की इच्छा होती है। सफ़लता अक्समात ही नहीं मिल जाती। इसलिये सफ़लता पाने वालों में ईर्ष्या करने के विपरीत, हमें ईमानदारी से उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए और अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये कढ़ा परिश्रम करना चाहिए।

II राहेल और लिआ इस समय ऐसी परिस्थितियों में फंसे हुये थे जिन पर नियन्त्रण पाना उनके लिए बड़ा कठिन था।

उनकी समस्या वास्तविक थी। माता-पिता ने उनका विवाह कराया था, और यद्यपि उस समय में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी, परन्तु मन में सारी स्त्रियां ऐसा ही अनुभव करती थीं जैसे आज कोई भी स्त्री अपने पति के विषय में अनुभव करती है। कुछ बुरी परिस्थितयां जिनसे बचा नहीं जा सकता हमारे अन्दर तुच्छता तथा निराशा जैसे अनुभवों को बढ़ावा देने लगती हैं, जिस प्रकार से ऐडना विन्सेन्ट ने स्पष्ट रूप से यह बताया था कि "जीवन को चलते रहना चाहिए", परन्तु मैं भूल जाती हूं कि क्यों?" अब राहेल तथा लिआ के सम्मुख दो बातें थीं। या तो वे दोनों इस बात में सहमत हो लें कि वे इन परिस्थितियों में खुश रहेंगी या फिर हमेशा एक दु:खद तथा असन्तुष्टता की स्थिति में रहेंगी। कुछ ही लोग ऐसे होते हैं जो आदर्शपूर्ण स्थिति में रहना चाहते हैं। प्रत्येक जन कभी न कभी किसी ऐसी स्थिति में फंस जाता है जिस पर नियंत्रण पाना उसके लिये कठिन हो जाता है, उसे अपने आप को उस परिस्थिति के अनुसार ढालने का प्रयत्न करना चाहिये। वे कौन सी ध्यान देने योग्य बातें हैं जो इस बात में हमारी सहायता कर सकती हैं?

(1) हमें यह सीखने की आवश्यकता है कि हमारे से एक बड़ी महान शक्ति भी है जिस पर हमें पूर्ण भरोसा रखना चाहिए। यही एक तरीका है जिससे हम

जीवन में आने वाले तूफ़ानों का सामना कर सकते हैं।

(2) हमें अपनी समस्याओं में अन्तर समझना चाहिए। एक आशावादी तथा हंसमुख व्यक्ति जो काफ़ी आयु का था अपनी लम्बी आयु तथा प्रसन्नता के रहस्य को इस प्रकार से बताता है–"मैंने असंभावितओं के साथ चलकर जीना सीखा है। प्रत्येक सुबह मैं उठकर अपनी खिड़की से बाहर देखता हूं। चाहे दिन कैसा भी हो, मैं अपने आपसे कहता हूं: "इसी प्रकार का दिन मैं चाहता था।" जीवन में यदि इस प्रकार की बात को लेकर चला जाये तो बहुत सी व्यर्थ चिन्ताएं हमसे दूर हो जायेंगी। यदि वर्षा हो रही है तो वर्षा को शाप न दें। बहुत ही अच्छा होगा यदि शाप देने के विपरीत एक छाते का इस्तेमाल किया जाये। क्या हमारे प्रभु ने ऐसा नहीं कहा था कि "तुम में कौन है, जो चिन्ता करके अपनी अवस्था (आयु) में एक घड़ी भी बढ़ा सकता है?" (मत्ती 6:27)। अपने आप को हम अनेकों दुखों से बचा सकते हैं यदि हम असम्भाविताओं के साथ चलना सीख लें।

(3) हमें यह सीखना चाहिए कि जीने के लिये हमें आज का दिन दिया गया है। अनेक लोग भविष्य में खुश होने के लिये अपना सारा जीवन योजनाऐं बनाने में बिता देते हैं। मान लीजिये कि आपसे इस समय कोई पूछे: "क्या आप प्रसन्न हैं?" आप शायद एक आम व्यक्ति की तरह कहें कि "हां मैं प्रसन्न तो हूं, परन्तु तब आप एक के बाद एक बातों को कहना चाहेंगे कि यदि ऐसा हो जाये तो मैं वास्तव में प्रसन्न होऊंगी।" इसलिये बहुत से लोग आज का दिन येही सोचते हुये बिता देते हैं कि हमारे साथ कल बहुत ही आवश्यक या हमें सन्तुष्ट करने वाली घटना घटेगी। आगे की सोचना तथा कल के लिये योजनाएं बनाना हमें हमारे जीवन में आगे बढ़ने में सहायता तो करता है, परन्तु हमें ऐसा नहीं करना चाहिए कि कल के विषय में सोचते-सोचते हम अपनी आज के दिन की आशिषों को ही भूल जायें।

(4) हमें अपने ध्यान को इस बात पर लगाना चाहिए कि हमारे पास क्या-क्या है और इस बात पर नहीं कि हमारे पास क्या-क्या नहीं है। प्रेरित पौलूस को ऐसा ही करना पड़ा था। उसके शरीर में एक कांटा चुभाया गया। प्रभु ने उसे दूर करने से इन्कार कर दिया था तथा पौलुस को यह सीखना पड़ा कि उसे इसी हालत में सदा रहना पड़ेगा। और इसके साथ ही उसे सब कलीसियाओं की चिन्ता का दबाव भी था (2 कुरिन्थियों 11:24-28)। तौ भी इसी पौलूस ने कहा था "क्योंकि मैंने यह सीखा है कि जिस दशा में हूं, उसी में सन्तोष करूं"। (फिलिप्पियों 4:11)। सही रूप में धन्यवादी होने का अर्थ है कि जो हमारे पास है उसी में हम सन्तुष्ट रहें, चाहे हमारे सम्मुख कितनी भी समस्याएं क्यों न हो, और यह सन्तुष्टि तब ही मिलती है जब हम आत्मिक रूप से आगे बढ़ते हैं।

III राहेल, जिससे याकूब ने प्रेम किया था–

अब ऐसी स्त्री की विशेषताएं देखें जिसके लिये याकूब ने 5,110 दिनों तक अपनी इच्छा से कार्य किया था।

(1) वह सुन्दर थी–उसे जीवन में ऐसी स्थिति से होकर नहीं गुजरना था जिसमें शारीरिक सुन्दरता की कोई कमी हो, परन्तु लिआ सुन्दर नहीं थी और राहेल उसके इस दुख को नहीं समझ सकती थी।

(2) एक विशेष व्यक्ति उससे प्रेम करता था। यह उसके लिये एक बहुत बड़ी आशिष थी। राहेल के प्रति उसका प्रेम इतना अधिक था कि उसके मरने के पश्चात भी उसकी याद कई वर्षो तक उसके लिये शक्ति का एक स्रोत, बनी रही। याकूब परमेश्वर का एक जन था और इसी कारण लाबान को आशिष भी मिली थी (उत्पत्ति 30:27)। याकूब नम्र स्वभाव का था और परमेश्वर के प्रति धन्यवादी था (उत्पत्ति 32:10)।

(3) राहेल को परमेश्वर का धन्यवाद करना चाहिये था, क्योंकि उसके पास बहुत कुछ था। परन्तु वह खुश नहीं थी क्योंकि वह बच्चे को जन्म नहीं दे सकती थी। इस बारे में वह सोच-सोचकर बड़ी परेशान रहती थी। इसी कारण उसके पति याकूब तथा उसके बीच में मतभेद था। एक बार क्रोधित होकर वह याकूब से कहती है: "मुझे बच्चे दे नहीं तो मैं मर जाऊंगी" शायद इस बात के लिये वह केवल याकूब को ही जिम्मेदार समझती थी। इस अनुचित बात से याकूब बड़ा क्रोधित होता है तथा उसे उत्तर देता है "क्या मैं परमेश्वर हूं?" वह यह जानता था कि वे पूरी तरह से परमेश्वर पर निर्भर हैं।

(4) राहेल की अपनी एक कमज़ोरी थी। वह अपनी बहिन से केवल ईर्ष्या ही नहीं करती थी, बल्कि अपनी अप्रसन्नता का दोषी याकूब को ठहराती थी, तथा उसने अपने पिता को धोखा देकर उससे झूठ भी बोला था (उत्पत्ति 31:30-34)। यह उनकी शायद एक पारिवारिक विशेषता थी परन्तु इससे हमेशा उनको दुख का ही सामना करना पड़ा था। (उत्पत्ति 35:16-20)।

(5) आखिरकार प्रभु ने राहेल को बच्चों से आशिषित किया। उसके पहिले बच्चे यूसुफ का चरित्र यीशु के समान था। अब राहेल की मृत्यु हो गई थी, जिसे वह बहुत पाने की इच्छा रखती थी वो उसे मिल गया था, परन्तु दूसरे पुत्र बिन्यामीन के जन्म के कारण उसे अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। (उत्पत्ति 35:16-20)।

IV लिआ, एक अनचाही पत्नी थी–

लिहा का जीवन एक दु:खपूर्ण जीवन था। ऐसा लगता है कि कुछ लोगों के

पास इतनी अधिक परेशानियां होती हैं जिन्हें सहन करना उनके लिये बहुत कठिन हो जाता है, परन्तु लिआ के जीवन से बहुत से पाठ सीखे जा सकते हैं।

(1) प्राकृतिक रूप से उसकी कुछ अपनी सीमायें थीं, क्योंकि वह सुन्दर नहीं थी। कितना ही अधिक कष्टपूर्ण समय उसने यह सोचने में बिताया होगा कि वह कितनी बदसूरत है और उसकी बहन कितनी सुन्दर हैं। चाहे कुछ भी हो प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई कमी अवश्य होती है, हो सकता है कि वह शायद किसी शारीरिक रूप से न हो परन्तु किसी भी मनुष्य में सारी विशेषताएं नहीं होती। बड़ा ही अच्छा होगा यदि हममें से प्रत्येक को जीवन में आरम्भ से ही यह सिखाया जाये कि हमारे जीवन में अच्छी और सुन्दर बातें कौन-कौन सी हैं ताकि हममें आत्मविश्वास उत्पन्न हो सके तथा हम अपने जीवन की सीमाओं को जानकर बहुत सी निराशाजनक बातों को अपने से दूर कर सकें।

(2) लिआ ने अपने जीवन को एक ऐसा लक्ष्य प्राप्त करने में बिता दिया था, जो उसे प्राप्त नहीं हो सका। उसकी सबसे बड़ी इच्छा यह थी कि उसका पति याकूब उसे प्रेम करे। उसका ध्यान बार-बार इस बात पर जाता था कि उसका पति राहेल से बहुत अधिक प्रेम करता है। वह ऐसा सोचने लगी थी कि यदि उनके पास बच्चे हो जायें तो उनके मन एक दूसरे से मिल जाएंगे, तथा प्रत्येक बच्चे के घर में आने से वह खुशी के साथ कह सकेगी: ''अवश्य ही मेरा पति अब मुझ से प्रेम करेगा।'' वह यह जानती थी कि कितनी ही स्त्रियों को इस बात का अनुभव हो चुका है, कि जहां प्रेम पहिले से ही विद्यमान होता है वहां बच्चों के आने में आपस के प्रेम में और दृढ़ता आ जाती है।, परन्तु यदि प्रेम नहीं होता तो बच्चे के आने से परिवार में कलह का एक और कारण बन जाता है।

यदि हमारे सामने ऐसे लक्ष्य हैं जिन्हें प्राप्त किया जा सकता है तो उन्हें पाने के लिये कड़ा परिश्रम करना बहुत अच्छी बात है।

यद्यपि यह सत्य है कि निरन्तर परिश्रम करने और दृढ़ निश्चय के द्वारा कुछ लोगों ने ऐसे लक्ष्यों को भी प्राप्त कर लिया था जो बिल्कुल असम्भव से दिखाई पड़ते थे, परन्तु तो भी यह सत्य नहीं है कि एक व्यक्ति जिस किसी भी वस्तु की इच्छा करे वह उसे मिल जाये। किसी ऐसे लक्ष्य को प्राप्त करने की इच्छा करना जो बिल्कुल असम्भव है व्यर्थ होता है तथा उसका परिणाम केवल अशांति और परेशानी ही होती है।

(3) शायद लिआ को अपने आप पर दया आती होगी-अनेक लोगों के सामने ऐसी ही समस्या कई बार आती है, तथा उसके सामने भी एक ऐसी हो समस्या थी जिसका समाधान करना बड़ा ही असम्भव था। इस प्रकार की स्थिति से कई बार हमारी खुशियां उजड़ जाती हैं।

(4) हमें यह सीखने की आवश्यकता है कि जो हमारे पास है उसके लिये हम धन्यवादी हों। बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जिनके पास वो सब कुछ होता है जिसकी वे इच्छा करते हैं। कई बार लोग उस वस्तु के विषय में अधिक सोचते हैं जो उनके पास नहीं है। कितना ही अच्छा होगा यदि हम यह सोचने की बजाये कि हमारे पास यह नहीं है वो नहीं है परमेश्वर को उसके लिये धन्यवाद दें जो हमारे पास है। लिआ को वो प्राप्त नहीं हो सका जिसकी वह बहुत इच्छा रखती थी। अब उसको एक फ़ैसला करना था। वो यह कि या तो वह अपने जीवन को कष्टों के साथ बिताये या फिर दूसरों के हित को देखते हुये अपने जीवन को और मजबूत बनाये। प्रभु उसके दुख से अपरिचित नहीं था और उसने उसकी घटी को पूरा करने के लिये उसे विशेष रूप से आशीषित भी किया था अर्थात उसे छः पुत्र तथा एक पुत्री भी दी थी। अनेकों ऐसे अच्छे कार्य थे जिन्हें वह अपनी योग्यता से कर सकती थी। उसके पास यह चुनौती तथा ख़ुशी थी कि वह अपने बच्चों का पालन पोषण कर सके। वह अपने मित्रों तथा पड़ोसियों की सहायकता कर सकती थी, और बेसहारा लोगों, रोगियों तथा दुखी लोगों के प्रति सहानुभूति दिखा सकती थी।

(5) यदि लिआ भविष्य को देख सकती, तो शायद उसे इससे सांत्वना व शांति मिल सकती थी कि उसके पास यह विशेषाधिकार था कि वह यीशु मसीह की वंशावली से सम्बन्ध रखती थी, क्योंकि उसके पुत्र यहूदा का सम्बन्ध मसीह के जन्म से था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज बहुत से लोग एक नये उत्साह को उसके अन्दर लेकर आगे बढ़े सकते हैं यदि वह यह सोचकर चलें कि जीवन में अनेक प्रकार के उतार चढ़ाव तो आते ही रहते हैं।

क्या आप प्रतिदिन प्रसन्न रहने का प्रयत्न कर रहीं हैं? चाहे हालात कैसे भी हों? या फिर आप शायद इस बात का इन्तज़ार कर रही हैं कि मैं कल प्रसन्नता का अनुभव करूगी?

मरियम (Miriam)

मरियम को स्मरण करो। परमेश्वर ने अपने लोगों को यह चेतावनी दी थी: ''स्मरण रख कि तेरे परमेश्वर यहोवा ने, जब तुम मिस्र से निकलकर आ रहे थे, तब मार्ग में मरियम से क्या किया'' (व्यवस्थाविवरण 24:9)। इस स्त्री को स्मरण करने के अवश्य ही कुछ अच्छे कारण होंगे। सबसे पहिले हम उसके पिछले जीवन को देखेंगे। जिस समय में वह रहती थी उस समय के इतिहास में कई परिवर्तन आये थे, तथा इस समय उसका विशेष कार्य यह था कि इस्राएल जाति को जो अभी बच्चे की तरह थी संगठित करके उसे दृढ़ बनाये। जिन स्त्रियों के विषय में हमने अभी तक अध्ययन किया है वे पूर्वजों के काल में रहती थीं, और तब परमेश्वर प्रत्येक परिवार के मुखिया से सीधे बात किया करता था। इस प्रकार के धर्म को मरियम ने अपने समय में एक राष्ट्रीय धर्म में परिवर्तित होते हुये देखा था अर्थात मूसा की व्यवस्था को। याकूब तथा उसके वंशज मिस्र जाति के एक मध्य भाग की तरह थे। यह लोग मिस्र में रहते थे। यूसुफ जिसे गुलाम बनाकर मिस्री लोगों के हाथ बेच दिया गया था, उस देश में फ़िरौन के बाद दूसरे नम्बर का एक बड़ा अधिकारी बना। यूसुफ को अकाल के दिनों में वहां इसलिये होना था ताकि वह अपने लोगों को भूख से मरने से बचा सके। बाद में कुछ वर्षों में उन पर अत्याचार होने लगे तथा लगभग चार सौ वर्षों तक वे मिस्री राजाओं के दासत्व में रहे, जिस प्रकार से उत्पत्ति 15:13,14 में भविष्यवाणी की गई थी। अपने लोगों को मिस्र देश के दासत्व से निकालने के लिये परमेश्वर ने मूसा को उनका अगुवा बनाया। उसका कार्य था, कि इस्राएली लोगों को मिस्र से निकालकर कनान देश तक ले जाने में उनकी अगुवाई करे। इस बड़े कार्य को करने के लिये प्रभु ने हारून तथा मरियम को भी चुना था अर्थात मूसा का भाई और उसकी बहन, ताकि वे दोनों उसकी सहायता कर सकें।

I मरियम में अगुवाई करने की विशेषताएं थी-

सबसे पहिले हम मरियम को एक चौदह वर्ष की लड़की के रूप में देखते हैं, जिसे केवल यही चिन्ता थी कि अपने छोटे भाई मूसा की सुरक्षा किस प्रकार से

कर सके। जब फ़िरौन ने देखा कि इब्री (इस्राएली लोग आबादी में बहुत बढ़ते जा रहें हैं तो वह भयभीत होने लगा तथा उसने यह आज्ञा निकाली कि इब्री लोगों के तमाम छोटे बच्चों को मरवा दिया जाये (निर्गमन 1:22)। अपने पुत्र को बचाने के लिये, मूसा के माता-पिता ने उसे टोकरी में छिपाकर नदी में छोड़ दिया तथा मरियम को वहीं ठहरा दिया (निर्गमन 2:3-10)। इतनी छोटी सी लड़की में हम यह कितनी सुन्दर विशेषता देखते हैं।

(1) वह एक ऐसी लड़की थी जिस पर निर्भर किया जा सकता था, क्योंकि उसकी माता को उसे यह जिम्मेवारी देने में कि वह बच्चे की सही देखभाल करेगी कोई भी हिचकिचाहट नहीं हुई। जो लोग अपने आरम्भ के जीवन में यह सीख लेते हैं कि विश्वास योग्य होना तथा अपनी जिम्मेवारियों को समझना आवश्यक है ऐसे लोग वास्तव में बड़े ही आशीषित होते हैं। किसी भी क्षेत्र में इस प्रकार की विशेषता के बिना सफ़लता मिलना बड़ा ही असम्भव है, तथा मरियम कितनी सौभाग्यशाली थी कि उसके माता-पिता ने उसे जीवन का यह एक दृढ़ सिद्धांत सिखाया था।

(2) प्रत्येक स्थिति में वह शीघ्रता से उचित कार्यवाही करने में होशियार थी- इस प्रकार की विशेषता बहुत कम देखने को मिलती है तथा वास्तव में यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण विशेषता है। यद्यपि उसकी माता ने उसे कुछ विशेष हिदायतें दी होंगी तौ भी उसे इस विषय में कुछ भी नहीं पता था कि छोटा बच्चा मूसा, फ़िरौन की पुत्री को मिलेगा। जब उसने ऐसा होते हुए देखा, तो ज़रा सोचिये कि उसने किस प्रकार से उस समय यह निर्णय लिया होगा कि वह अब फ़िरौन की पुत्री से क्या कहेगी। अपने आपको अच्छी तरह से संभालते हुये तथा समझ के साथ उसने कुछ ही शब्द फ़िरौन की पुत्री से कहे: '' क्या मैं जाकर इब्री स्त्रियों में से किसी धाई को तेरे पास बुला ले आऊं जो तेरे लिये बालक को दूध पिलाया करे? उसकी इस समझ तथा परमेश्वर की सहायता के द्वारा, मूसा का पालन-पोषण उसकी अपनी ही माता द्वारा हुआ तथा उसे सच्चे परमेश्वर के विषय में भी सिखाया गया।

II बाईबल में एक पहली ऐसी स्त्री जिसका जावन बहुत उन्नतिशील था-

उसके जीवन का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि उसने कभी विवाह नहीं किया। ऐसा लगता है कि उसने अपना सम्पूर्ण जीवन परमेश्वर की सेवा में लगा दिया था। अवश्य ही प्रभु उसकी योग्यता को समझता था और इसलिये उसने यह विशेष तथा आवश्यक कार्य उसे करने को दिया था: ''मैं तो तुझे मिस्र देश से निकाल ले आया, और दासत्व के घर में से तुझे छुड़ा लाया, और तेरी अगुवाई

करने को मूसा, हारून और मरियम को भेज दिया (मीका 6:4)" इसमें कोई सन्देह नहीं कि पारिवारिक जिम्मेदारियां न होने के कारण वह प्रभु के कार्य में और अधिक समय दे सकती थी, जिस प्रकार से पौलूस ने 1 कुरिन्थियों 7:34 में बताया है।

मरियम को धार्मिक इतिहास में एक बहुत ही प्रभावशाली अगुवाई करने वाली के रूप में में चित्रित किया गया है। जब इस्राएली लोग आश्चर्यक्रम द्वारा लाल समुन्द्र को पार कर चुके थे, तब मरियम ने विजय के गीत गाते हुए इस्रायली स्त्रियों की अगुवाई की थी (निर्गमन 15:20,21)। जब 600,000 पुरूष तथा उनके परिवार और स्त्रियां बुलन्द आवाजों से गीत गाते हुए चल रहे होंगे तो वास्तव में यह एक शानदार दृश्य होगा। उन्होंने कितने दुख तथा यातनाओं का सामना मिस्र में किया था। किस प्रकार से परमेश्वर ने उनके पहिलौठों को मृत्यु के दूत से बचाया था, लाल समुद्र के बीच में उनकी रक्षा की थी और उनके शत्रुओं से उन्हें बचाया था और इन सब घटनाओं से उन्हें बहुत खुशी मिली थी तथा अब अचानक ही वे प्रभु की स्तुति तथा उसका धन्यवाद करने के लिए उमड़ पड़े थे। मुक्ति पाने की पहली धड़कन होती है प्रसन्नता से झूम उठना। सृजनहार तथा उनके लोगों के बीच में बातचीत करने के यह शानदार क्षण होते हैं। क्योंकि परमेश्वर ने उन्हें विजय दिलाई थी इसलिए स्त्रियों ने उसकी स्मृति में गीत गाये: ''यहोवा का गीत गाओ, क्योंकि वह महाप्रतापी ठहरा है, घोड़ों समेत सवारों को उसने समुंद्र में डाल दिया है।'' रथ तथा घोड़े मिस्र के लोगों की शान थी, परन्तु मिस्र की शक्ति स्वर्ग के परमेश्वर के सम्मुख केवल एक मूर्खता थी। बड़ी ही प्रसन्नता के साथ उन्होंने गीत गाया कि परमेश्वर उनकी शक्ति तथा उद्धार है। बाइबल में परेमश्वर की स्तुति में गाये जाने वाले अनेक गीतों के विषय में हम पढ़ते हैं। कई राष्ट्रों का इतिहास उनके गीतों के द्वारा जाना जा सकता है, क्योंकि गीतों के द्वारा खुशी या दुख को प्रकट किया जाता है।

(2) आज की उन्नतिशील नारी, चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित, प्रभु का कार्य करने में अनेक सुअवसरों का इस्तेमाल कर सकती है। लुदिया नाम की एक स्त्री जिसके विषय में हम बाइबल के नये नियम में पढ़ते हैं, एक बहुत ही अच्छी और कुशल मसीही व्यापारी थी। उसके लिए यह कहना बड़ा ही सरल होता कि ''प्रभु का कार्य करने के लिए मेरे पास समय नहीं है"।-- परन्तु उसने कभी भी ऐसा नहीं कहा। वह तथा उसका परिवार एक ऐसे बीज के समान थे जिसके द्वारा फिलिप्पी में एक मजबूत कलीसिया की शुरूआत हुई थी, तथा उसका घर दूसरों की पहुनाई करने तथा पौलूस और उसके साथ प्रभु का कार्य करने वालों के लिए

एक मुख्य केन्द्र बन गया था।

(3) आज हमें कलीसिया में ऐसे पुरूषों और स्त्रियों की खोज करनी है जो अपने में योग्यताऐं रखते हैं तथा जो अगुवाई करने के योग्य है, उन्हें सिखाएं, और उन्हें उत्साहित करें ताकि वे अपनी योग्यताओं को प्रभु के लिए इस्तेमाल कर सकें। आज संसार को ऐसे अगुवों की आवश्यकता है जो लोगों की अगुवाई सही दिशा की ओर कर सकें तथा उनका उचित मार्गदर्शन भी कर सकें।

III हम मरियम के पाप को हमेशा याद रखें–

मरियम के विषय में सबसे महत्वपूर्ण याद रखने योग्य बात है उसका पाप जो उसने ईर्ष्या के कारण किया था। गिनती के 12 अध्याय को आप पूरा पढ़िये। जब इस्त्राएली लोग जंगल में भटक रहे थे तब, ''मूसा ने एक कूशी स्त्री के साथ ब्याह कर लिया था। सो मरियम और हारून उसकी उस ब्याहिता कूशी स्त्री के कारण उसकी निन्दा करने लगे, उन्होंने कहा, क्या यहोवा ने केवल मूसा ही के साथ ही बाते की है? क्या उसने हमसे भी बातें नहीं की? उनकी यह बात यहोवा ने सुनी'' (गिनती 12:1,2)।

(1) मूसा का विरोध करने का उसने कोई कारण नहीं दिया बल्कि उसने एक बहाना बनाया था–बाहरी रूप से वह मुसा का विरोध इसलिए कर रही थी क्योंकि उसने एक कुशी स्त्री से शादी की थी, परन्तु वास्तव में गहराई से देखने से हमें पता चलता है कि विरोध करने का उचित कारण कुछ और था। उसका भाई मूसा एक बहुत बड़ा अगुवा था और येही उसकी अप्रसन्नता का कारण था। उसने ऐसा कारण इसलिए दिया था ताकि लोगों में मूसा के प्रति विरोध तथा अंसतुष्टता की भावना उत्पन्न हो जाये तथा इसके द्वारा उसकी शक्ति कमजोर पड़ जाये और मरियम को लोग मूसा से अधिक महत्व देने लगें।

(2) आज अनेक लोग मरियम की ही तरह बहाना बनाते हैं। किसी के ऊपर भी दोष लगाते हुए असली कारण प्राय: नहीं बताया जाता। अपने व्यक्तिगत बहानों में भी लोग सही कारण नहीं बताते। उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि यदि कोई कलीसिया की सभाओं में आना बन्द कर देता है तो वह इस प्रकार से अपनी सफ़ाई पेश करते हुए कहता है कि: ''कलीसिया के सदस्यों में प्रेम नहीं है'' ''किसी ने मुझे अपनी बातों से चोट पहुंचाई है।'' ''मुझे प्रचारक बिल्कुल पसन्द नहीं है।'' यदि ऐसा व्यक्ति वास्तव में ईमानदारी से बोले तो असली कारण यह होगा ''कि मैं रविवार की सुबह जल्दी नहीं उठ सकता, और इसलिए कलीसिया में नहीं आ

सकता।'' अथवा ''मैं संसार में वापस चला गया हूं और कलीसिया में नहीं आ सकता।'' अथवा ''मैं संसार में वापस चला गया हूं और कलीसिया की सभाओं में आना मुझे अच्छा नहीं लगता।'' या फिर "प्रभु और आत्मिक बातों के प्रति मेरा प्रेम अब समाप्त हो चुका है, इसलिए मैं कलीसिया में आना नहीं चाहता।"

अनेक लोग सत्य को जानते हुए भी मसीही बनने से इन्कार कर देते हैं, और बहाना बनाते हुये कहते हैं: कि ''कलीसिया में बहुत से लोग ढोंगी है'' या ''मैं उनसे अच्छा हूं जो अपने को मसीही अपने है।'' सही बात तो यह है कि ये सब बहाने हैं और असली कारण नहीं हैं। यह बात केवल मरियम में ही नहीं थी बल्कि आज साधारणत: सब स्थानों पर देखने को मिलती है।

(3) उसका पाप यह था कि वह परमेश्वर द्वारा ठहराये गये अधिकार का विरोध कर रही थी। परमेश्वर ने उन्हें डांटते हुये यह बता दिया था कि मूसा उसका चुना हुआ प्रथम दास है और मरियम और हारून ने उसके अधिकार के विरोध में बोलकर पाप किया है। परमेश्वर जानता था कि इस बात के पीछे उनका क्या उद्देश्य है। इससे प्रमाणित होता है कि विरोध करने वालों की अगुवा मरियम ही थी क्योंकि उसी को इस पाप की सजा मिली थी। ''और मरियम कोढ़ से हिम के समान श्वेत हो गई।'' (गिनती 12:8-10)।

(4) उसका विरोध करना ईर्ष्या के कारण था। जैसे अपने पिछले पाठ में हमने देखा था कि ईर्ष्या की परिभाषा यह है: ''दूसरों की उन्नति या खुशी को देखकर दुखी होना'' उसने मूसा से क्यों ईर्ष्या की थी? क्या मूसा इसका जिम्मेवार था। क्या उसने कोई अनुचित कार्य किया था? नहीं। ''जो अच्छाई करते है तथा अपने जीवन में उन्नति करते हैं, उनसे अकसर लोग ईर्ष्या करते हैं।''

अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए मरियम ने मूसा का विरोध किया था अर्थात् पाप मरियम के मन में था। यह एक बहुत ही पुरानी बुराई है कि लोग अपने को ऊपर उठाने के प्रयत्न में दूसरों को नीचा दिखाने की कोशिश करते हैं।

आखिरकर ईर्ष्या काफी बढ़ गई और यह स्त्री जिसने अपना अधिक से अधिक जीवन परमेश्वर की सेवा में लगाया था, एक बहुत घोर पाप करके अपने एक ऊंचे स्तर से नीचे गिर गई थी। ''शान्त मन, तन का जीवन है, परन्तु मन के जलने से हड्डियां भी जल जाती है'' (नीतिवचन 14:30)। ईर्ष्या कैंसर के रोग के समान है। जो अपने अन्दर इसे रखता है उसे यह नष्ट करती जाती है। ईर्ष्या ने मरियम को नष्ट किया था, मूसा को नहीं।

ईर्ष्या सबसे अधिक प्रचलित पाप है। यदि इसके विषय में कोई सन्देह है तो

बाइबल को पढ़िये, आप देखेंगे कि कितने लोग यह पाप करने के अपराधी थे-जैसे कैन, युसुफ के भाई, राहेल, लिआ, शाऊल, इज़्रेबेल, तथा वे धार्मिक अगुवे जिन्होंने यीशु को क्रूस पर चढ़ाया था। आज तक भी यह देखा जा सकता है कि इस सूची की कोई सीमा नहीं है।

IV परमेश्वर का कार्य करने वाले का विरोध करना, परमेश्वर का विरोध करना है–

(1) जिस प्रकार का दण्ड मरियम को दिया गया था, उससे उसके पाप की गंभीरता का पता चलता है। परमेश्वर ने उससे तथा हारून से व्यक्तिगत रूप से बात की थी: ''सो तुम मेरे दास मूसा की निन्दा करते हुए क्यों नहीं डरे'' तब यहोवा का कोप उन पर भड़का और मरियम कोढ़ से हिम के समान श्वेत हो गई'' (गिनती 12:8-10)। ऐसा कड़ा दण्ड उसे क्यों मिला? जो परमेश्वर का भविष्यवक्ता था और जब इस्राएलियों ने उसकी बात सुनने से इन्कार कर दिया, तब यहोवा ने शमूएल ने कहा ''क्योंकि उन्होंने तुझको नहीं परन्तु मुझी को निकम्मा जाना है'' (1 शमूएल 8:7)।

(2) सारा अधिकार परमेश्वर का है, परन्तु शान्ति बनाये रखने के लिए उसने अलग-अलग लोगों को अधिकार दिया है, जैसे नागरिकों के ऊपर प्रधान अधिकारी (रोमियो 13:1-5)। (कलीसिया) झुण्ड के लिए अध्यक्ष तथा अगुवे (इब्रानियो 13:17); पत्नियों के लिए पति का अधिकार (1 पतरस 3:1), बच्चों के ऊपर माता-पिता का अधिकार (इफिसियों 6:1-3) दासों के लिये मालिकों का अधिकार (इफ़ि. 6:5)। इन अधिकारों को तुच्छ जानना परमेश्वर के अधिकार को तुच्छ जानना है। तौ भी, यह सब अधिकार जैसे प्रधान अधिकारी, अध्यक्ष, पति, माता-पिता और स्वामी स्वयं परमेश्वर के आधीन हैं तथा ये सब अपने अधिकार को अपनी इच्छा से या मनमानी करके केवल इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। यह सब अधिकार एक बड़ी शक्ति के आधीन हैं तथा यह सब केवल उसके दास हैं, और अपने अधिकार का उन्हें दुरूपयोग नहीं करना चाहिए ''हमें मनुष्य की नहीं बल्कि परमेश्वर की आज्ञा माननी चाहिए''।

V हमारे पाप का प्रभाव दूसरों के ऊपर पड़ता है-

(1) मरियम के पाप के कारण लगभग 600,000 इस्राएली परिवार प्रभावित हुए थे और तमाम इस्रायली जाति को इसका परिणाम भुगतना पड़ था अर्थात सात

दिन तक वे लोग बिना किसी काम काज के रूके रहे।

(2) पापी मनुष्य केवल अपने को ही हानि नहीं पहुंचाता। ''क्योंकि हममें से न तो कोई अपने लिए जीता है और न कोई अपने लिए मरता है-सो हममें से हर एक परमेश्वर को अपना-अपना लेखा देगा पर तुम यही ठान लो कि कोई अपने भाई के समाने ठेस या ठोकर खाने का कारण न रखे'' (रोमियों 14:7-13)। अक्सर यह बात कहते हुए सुना जाता है: ''मैं चाहे कुछ भी करूं इससे किसी को कोई मतलब नहीं है। हमारे ही कारण बहुत से लोग स्वर्ग या नरक में जायेंगे, इसलिए यह कहना अनुचित होगा कि चाहे कुछ भी कोई करे इससे किसी को कोई मतलब नहीं है। यह प्रत्येक जन के लिए एक बहुत ही गंभीर बात है, और विशेषकर उन माता-पिता के लिए जिनके बच्चे अभी छोटे हैं।

दो छोटे लड़के चिड़ियाघर में जंगली बिल्लियों को देखकर आपस में बात कर रहे थे। एक ने कहा: ''मुझे आश्चर्य होता है कि यह जंगली बिल्लियां कैसे जंगली बन जाती हैं।'' इस बात का उत्तर देते हुए दूसरे ने कहा कि ''इस प्रश्न का उत्तर तो बिल्कुल सरल है। वे इसलिए जंगली है क्योंकि उनके माता-पिता जंगली है। ''माता-पिता का प्रभाव सदा बच्चों पर पड़ता है और यह एक ऐसी वास्तविकता है जिससे बचा नहीं जा सकता तथा इस बात को मध्यनज़र रखते हुए माता-पिता की जिम्मेवारी बहुत बड़ी होती है। क्या कोई पिता ऐसा कह सकता है ''यदि मैं सांसारिक जीवन व्यतीत करना चाहता हूं तो इससे किसी को कोई मतलब नहीं होना चाहिए।'' उसको यह देखना चाहिए कि उसके पीछे-छोटे-छोटे जीवन हैं जो उसको देखकर चल रहे हैं। क्या कोई माता ऐसे कह सकती है ''यदि मैं रविवार (ऐतवार) के दिन देर से ऊठूं तो इससे किसी को कोई मतलब नहीं होना चाहिए'' ऐसा करने से क्या वे अपने बच्चों की आत्मिक बातों में अगुवाई कर सकती है? पाप से हम केवल अपनी ही हानि नहीं, बल्कि दूसरों की भी हानि करते हैं।

VI पापी व्यक्ति के प्रति हमारा व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए–

(1) मूसा, जो परेमश्वर का जन था, और जिस पर झूठा दोष लगाया गया था- एक ऐसा व्यक्ति था जिसमें बदला लेने की भावना बिल्कुल नहीं थी। जब मरियम को दण्ड मिला तो वह इस बात से प्रसन्न नहीं हुआ। बल्कि उसने उसके लिए प्रार्थना की। आधे मन से नहीं, परन्तु ईमानदारी से, बिननी करते हुए उसने यह कहकर यहोवा की दोहाई दी, ''कि हे परमेश्वर कृपा कर, और उसको चंगा कर''

(गिनती 12:13)। क्योंकि वह आत्मिक रूप से बलवान था, इसीलिए वह इस योग्य हो सका कि अपने सताने वालों के लिए प्रार्थना करे (मत्ती 5:44, 46)।

(2) सात दिन के पश्चात, परमेश्वर ने मरियम को चंगा किया तथा उसे फिर से छावनी के भीतर आने की आज्ञा दे दी। बाइबल के कुछ ऐसे सुन्दर पद हैं जो यह बताते हैं कि जिन्होंने पाप किया है तथा परेमश्वर से अलग हो गये हैं वह उन्हें अपने पास बुलाता है ताकि वह उन्हें चंगा करे- आज उसकी केवल यह इच्छा हीं नहीं बल्कि बिनती भी है कि पापी लोग मन फिराकर उसके पास आयें। परमेश्वर ''तुम्हारे विषय में धीरज धरता है, और नहीं चाहता कि कोई नाश हो, बरन यह है कि सब को मन फिराव का अवसर मिले'' (2 पतरस 3:9)। पाप से छुटकारा पाने के लिए कई शर्ते हैं, और उनमें से एक है पश्चाताप करना (मन फिराना)। मनुष्य को सबसे पहिले इन शर्तो को मानना है तब परमेश्वर उन्हें क्षमा करेगा। ''हे भटकने वाले लड़कों, लौट आओ, मैं तुम्हारा भटकना सुधार दूंगा'' (यिर्मयाह 3. 20-23)। बाइबल में एक बहुत ही सुन्दर कहानी है ''उड़ाऊ पुत्र'' की (लूका 15)। इस कहानी से हम यह सीखते हैं कि पिता परमेश्वर अपने उन बच्चों से बहुत प्रसन्न होता है जिन्होंने अपना मन फिराया है तथा उसके पास वापस आ गये हैं। जब भी कोई पापी मन फिराकर वापस आता है तो स्वर्गदूत भी स्वर्ग में आनन्द मनाते हैं। आज लोग प्रभु के सच्चे मार्ग से भटक गये हैं, उन्हें वापस आने की आवश्यकता है।

"इससे पहिले कि आज का दिन समाप्त हो, मैं अपने जीवन से कई लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ोगी, और शाम ढलने तक मैं अच्छाई के लिये या बुराई के लिये अपना प्रभाव छोडूंगी। मेरी यही इच्छा है और सदा यही प्रार्थना है कि हे प्रभु अपने जीवन के द्वारा मैं लोगों पर अच्छा प्रभाव छोड़ सकु"

दबोरा (Deborah)

दबोरा एक बहुत साहसी तथा योग्य स्त्री थी। वह एक अच्छी पत्नी, माता,न्यायी, नबिया, गानेवाली तथा युद्ध में अगुवाई करनेवाली स्त्री थी। उसने अपना सारा जीवन परमेश्वर की सेवा में लगा दिया था। कनानी लोगों के राजा याबीन के पास ''लोहे के नौ सौ रथ थे, और वह इस्राएलियों पर बीस वर्ष तक बड़ा अन्धेर करता रहा'' (न्यायियों 4:3)। इसी समय में परमेश्वर ने दबोरा को अपने लोगों का न्याय करने के लिये चुना था। वह एप्रैम के पहाड़ी देश में रामा और बेतेल के बीच खजूर के पेड़ तले बैठा करती थी, और इस्राएली उसके पास न्याय के लिये जाया करते थे। उस समय की परिस्थितियों को आज के समय की परिस्थितियों से मिलाकर परमेश्वर के लोग अपने लिये कई शक्तिशाली पाठ सीख सकते हैं।

I दबोरा के समय की परिस्थितियां-

(1) इस्राएलियों के गिरने का कारण था उनकी सड़ी हुई आत्मिक स्थिति क्योंकि ''इस्राएलियों ने फिर यहोवा की दृष्टि में बुरा किया इसलिये यहोवा ने उनको हासोर में बिराजनेवाले कनान के राजा याबीन के आधीन कर दिया'' (न्यायियों 4:1,2)। दबोरा के काल में पहिले दो बार इस्राएलियों पर बुरी तरह से अत्याचार हो चुका था, तथा तीन बार फिर से ऐसा हुआ जिसका वर्णन हमें न्यायियों के अगले अध्यायों में मिलता है। यह सब तब आरम्भ हुआ था जब इस्राएली लोगों ने प्रभु को छोड़ दिया था। ''क्या ही धन्य है वह जाति जिसका परमेश्वर यहोवा है'' (भजन 33:12), परन्तु जब कोई जाति परमेश्वर के विरूद्ध चलती है तो वह आत्मिक रूप से गिरने लगती है। उनकी आत्मिक स्थिति बिगड़ने का क्या कारण था?

(2) उन्होंने अपने को बुरे लोगों की संगति से अलग नहीं किया था। परमेश्वर ने अपने लोगों को यह आज्ञा दी थी कि तुम बुरे लोगों को अपने बीच में से भगा दो, परन्तु उन्होंने प्रभु की आज्ञा को नहीं माना। बुरी संगति अच्छे चरित्र को बिगाड़ देती है (1 कुरिन्थियों 15:33)। इसी कारण से परमेश्वर ने उन्हें यह आज्ञा दी थी ताकि वे उसके अलग किये हुये विशेष लोग हों। यह आज्ञा उनकी अपनी भलाई

के लिये थी। प्रभु के प्रति उन्होंने आनाकानी करके अपने पड़ोसियों के गन्दे कार्यों में भाग लिया तथा ''परमेश्वर की दृष्टि में बुरा किया''।

(3) उनकी आत्मिक स्थिति बिगड़ने का एक मुख्य कारण यह भी था कि-''जिसको जो ठीक सूझ पड़ता था वो वही ही करता था'' (न्यायियों 17:6,21:25)। प्रत्येक व्यक्ति अपने ही तरीके के अनुसार यह फैसला करता था कि क्या उचित है तथा क्या अनुचित है। इस प्रकार के सिद्धान्त पर चलने से सदा गड़बड़ ही होती है तथा इसका परिणाम अक्सर विनाश होता है। जो व्यक्ति अपनी मनमानी से चलना पसंद करता है उसकी नैतिक तथा आत्मिक स्थिति बिगड़ने लगती है, परन्तु शांति और ख़ुशी उन्हें ही मिलती है जो परमेश्वर की आज्ञा अनुसार चलते हैं।

(4) इस्राएली लोग यह जान गये थे कि किन-किन कारणों से किसी जाति का विनाश होता है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि ये जीवन जानते हुये भी उन्होंने कभी इन पाठों से अपने लिये लाभ नहीं उठाया। शायद ही किसी जाति के साथ ऐसा हुआ होगा जैसा इस्राएलियों के साथ हुआ था कि बार-बार परमेश्वर की आज्ञा मानने से वे चूक जाते थे। (बुद्धिमानी का एक चिन्ह यह होता है कि अपनी पिछली की गई गलतियों से सीखा जाये तथा दूसरों की गलतियों को देखकर अपने आप को सही किया जाये। आज बुद्धि हमें चेतावनी देते हुए कहती है कि इस्राएलियों की गलतियों से सीखो ताकि तुम परमेश्वर की सहायता से सब प्रकार की बुराईयों से बच सको।

(5) इस्राएलियों के ऊपर ऐसे शत्रुओं ने अत्याचार किया था जो अधर्मी क्रूर तथा परमेश्वर में विश्वास न करने वाले लोग थे। परमेश्वर के लोग याबीन राजा के नौ सौ रथ देखकर बहुत भयभीत हो गये थे क्योंकि वे जानते थे कि उनके पास ऐसा एक भी रथ नहीं है। कनानी शत्रुओं के पास बहुत सारे हथियार तथा बहुत बड़ी सेना थी।

II अब इसके लिये उनको कुछ करना था-

इस्राएली लोग ऐसे बर्तनों के समान थे जिनके भीतर परमेश्वर का ज्ञान मूर्तीपूजक संसार में सुरक्षित रखा हुआ था। यदि इस्राएली लोग अधर्मी जाति द्वारा बिल्कुल समाप्त कर दिये जाते तो शायद यहोवा का नाम इस पृथ्वी पर से मिट जाता। तौ भी जब उन्होंने पाप किया तो, परमेश्वर ने उन्हें पश्चाताप करने के लिये और उन्हें वापस लाने के लिये अधर्मी जाति को इस्तेमाल किया। ऐसे अत्याचार उन पर इस लिये हुये ताकि उन्हें दण्ड देकर सुधारा जा सके।

(1) वे लोग परमेश्वर की तरफ फिरे- ''तब इस्राएलियों ने यहोवा की दोहाई दी'' (न्यायियों 4:3)। जिस उद्देश्य के लिए परमेश्वर ने उन पर अत्याचार होने दिया था वो पूरा हो चुका था।

(2) दबोरा उनको अत्याचार से बचाने वाली थी, परमेश्वर ने लोगों की प्रार्थना का उत्तर तब दिया जब उसने दबोरा को उनके पास भेजा। दबोरा में ऐसी कौनसी योग्यताएं थीं जिन्हें देखकर उसे यह बहुत ही आवश्यक तथा कठिन कार्य दिया गया था, आईये ज़रा देखें।

(1) क्योंकि वह एक बुद्धिमान स्त्री थी, इसलिए दूर और पास से लोग उसके पास आया करते थे। दबोरा अपने अन्दर अच्छे आदर्श तथा अच्छे ज्ञान जैसी विशेषताएं रखती थी। वह आदर्शवादी होते हुए यह जानती थी कि उसके लोग भविष्य में किस प्रकार से खुश रह सकते हैं तथा अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उसके पास ज्ञान भी था।

(2) इस्त्राएली लोगों की स्थिति को वह बहुत अच्छी तरह से जानती थी तथा इस बात की गम्भीरता को समझते हुये उसने यह सोचा कि अब अपने लोगों के लिए मुझे कुछ करना चाहिए। बीस वर्षों तक खजूर के पेड़ तले बैठकर लोगों का न्याय करते हुए उसने सारी स्थिति को बड़े ही अच्छी तरह से देख लिया था। वह एक माता तथा गृहिणी भी थी, इसलिये इस समस्या के महत्व को समझते हुये वह अपने कर्त्तव्य से पीछे नहीं हठीं। उसे अपने लोगों के लिए कुछ करना था।

(3) वह उस स्वर्गीय परमेश्वर में अपना विश्वास रखती थी जिसने फिरौन को हराया था, जिसने अपने लोगों को जंगल में मन्ना खिलाया था तथा जिसने यरीहो की दीवारों को गिराकर समतल कर दिया था। उसका विश्वास उस पिता परमेश्वर पर था जिसने अकसर यहोशु से कहा था कि ''हियाव बान्धकर दृढ़ हो जा।" हां, उसका मन प्रभु के ऊपर लगा हुआ था, तथा अपने इस दृढ़ विश्वास के कारण ही उसमें हियाव तथा साहस उत्पन्न हुआ था।

(4) **प्रभु ने दबोरा के लिए जो योजनाएं** बनाई थीं उन पर चलने के लिए उसमें काफ़ी साहस था।'' क्या इस्राएल के परमेश्वर यहोवा ने यह आज्ञा नहीं दी, कि तू जाकर ताबोर पहाड़ पर चढ़ और नप्तालियों और जबूलूनियों में के दस हजार पुरूषों को संग ले जा? तब मैं याबीन के सेनापति सीसरा के रथों और भीड़भाड़ समेत कीशोन नदी तक तेरी ओर खींच ले आऊंगा, और उसको तेरे हाथ में कर दूंगा। बाराक ने उससे कहा, "यदि तू मेरे संग चलेगी तो मैं जाऊंगा, नहीं तो न जाऊंगा'' (न्यायियों 4:6-8)। दबोरा के साहस, विश्वास तथा शक्ति को देखकर बाराक ने यह निश्चय कर लिया कि वह भी उसके साथ जायेगा। दबोरा ने क्या

फ़ैसला किया था? उसने कहा कि ''मैं तेरे साथ अवश्य जाऊंगी''। साहस छूत की बीमारी की तरह फैलने लगता है इसलिये यह रोग दबोरा से बाराक को तथा बाराक से उन दस हज़ार सिपाहियों को लग गया था जिन्हें उसके साथ युद्ध में जाना था। दबोरा ने बाराक के साथ मिलकर परमेश्वर की सेना की अगुवाई की। कनानी लोगों की शक्तिशाली सेना, अपने लोहे के नौ सौ रथों को लेकर लज्जा से भरी हुई हारकर वापस चली गई। इस महिमा से भरी हुई विजय की प्रशंसा दबोरा ने अपने एक गीत को लिखकर की थी (न्यायियों 5)।

III यह विजय उन्हें कैसे मिली?

(1) इस प्रकार परमेश्वर ने उस दिन कनान के राजा याबीन को इस्राएलियों के सामने नीचा दिखाया (न्यायियों 4:23)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परमेश्वर के बिना उन्हें अवश्य ही हार का सामना करना पड़ता। अपने गीत में दबोरा ने स्पष्ट रूप से तथा दृढ़ता से कहा है कि यह विजय परमेश्वर ने उन्हें दी है। एक नारी के रूप में अगुवाई करने वाली स्त्री को देखकर परमेश्वर ने अपनी शक्ति को और अधिक इस्राएलियों तथा कनानी लोगों पर प्रकट किया।

(2) ''इस्राएल के अगुवों ने जो अगुवाई की और प्रजा जो अपनी ही इच्छा से भरती हुई थी, इसके लिये यहोवा को धन्य कहा (न्यायियों 5:2)। जबकि परमेश्वर लोगों के द्वारा कार्य करता है, इसलिये विजय प्राप्त करने के लिये ईश्वरीय शक्ति तथा मनुष्य की शक्ति दोनों का होना आवश्यक है। जब तक लोग परमेश्वर के साथ मिलकर कार्य करने की इच्छा नहीं रखते तब उनके लिये विजय प्राप्त करना असंभव होता है।

सबसे पहिले हम दबोरा को यह कहते हुऐ देखते हैं।''जब तक मैं दबोरा न उठी, जब तक मैं इस्राएल में माता होकर न उठी'' (न्यायियों 5:7)। वह इस बात को मानती थी कि विजय प्राप्त करने में उसका भी भाग है। परन्तु इससे यह प्रकट नहीं होता कि ईश्वरियता को त्यागकर उसने अभिमानी होकर ऐसी बात कही हो। उसने परमेश्वर की महिमा की तथा उसी समय उसने अपनी खुशी ज़ाहिर की यह कहकर कि उसे परमेश्वर का यह कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। नम्र होने का अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी योग्यताओं के विषय में बिल्कुल न सोचें, परन्तु नम्र होना यह दिखाता है कि हमारा जीवन परमेश्वर के ऊपर पूर्ण रूप से निर्भर है।

इसके पश्चात हम देखते हैं कि वहां ऐसे पुरूष भी थे जो अपने जीवनों को किसी विशेष कार्य के लिये देने के इच्छुक थे। ''जबलून अपने प्राण पर खेलने वाले लोग ठहरे, नप्ताली भी देश के ऊंचे-ऊंचे स्थानों पर वैसा ही ठहरा''

(न्यायियों 5:18)। बहुत सी ऐसी वस्तुएं है, जो शारीरिक जीवन से भी अधिक महत्वपूर्ण है। परमेश्वर के लोग उसकी आज्ञा अनुसार चलते हैं।

दबोरा, बाराक तथा इस्राएल के सारे लोगों ने वही किया जैसा परमेश्वर ने उन्हें करने को कहा था। उन्होंने ऐसा नहीं सोचा कि सब कुछ परमेश्वर के ऊपर छोड़ दो और आराम से बैठकर उस पर अपना भरोसा रखो और वह हमें सारी समस्याओं और कठिनाईयों से बचायेगा। उन्हें आवश्यकता थी कि वे सचेत होकर अपनी सुस्ती को दूर करें, अपने आप को अपनी इच्छा तथा प्रेम से अर्पित करें और अपनी शक्ति को परमेश्वर का कार्य करने के लिये इस्तेमाल करें।

IV एक अकेले व्यक्ति की शक्ति-

(1) ज़रा सोचिये की एक अकेले व्यक्ति की शक्ति कितनी अधिक हो सकती है, या तो भलाई के लिये या बुराई के लिये। अकान के पाप के कारण इस्राएली लोग एक नगर को नहीं जीत सके, उसके ही कारण उनकी हार हुई थी। मरियम के पाप का प्रभाव हज़ारों लोगों पर पड़ा था। रहूबियाम की मूर्खता के कारण राष्ट्र का विभाजन हुआ था। अवश्य ही ''थोड़ा सा खमीर पूरे गूंधे हुए आटे को खमीर कर देता है।'' (1 कुरि. 5:6)

(2) दबोरा ने अपने जीवन के द्वारा यह बड़ी ही सफ़ाई से दिखाया था कि जो जीवन परमेश्वर की सेवा में लगा दिया जाता है उसमें कितनी शक्ति होती है। उसके जीवन के द्वारा कितनी ही अच्छाईयां हुई थीं तथा बहुत सी बातों में परिवर्तन भी आया था। उसने अपने आपको परमेश्वर की इच्छा पर छोड़ दिया था ताकि वह उसके द्वारा अपना कार्य करे। उनकी दासत्व की स्थिति को उसने स्वतन्त्रता में बदल दिया था'' फिर देश में चालीस वर्ष शान्ति रही।''(न्यायियों 5:31) कनानी लोगों के सामने इस्राएली सेना की शक्ति कमज़ोर थी, उनकी केवल एक ही आशा थी कि वे अपना पूरा भरोसा परमेश्वर पर रखें, और जो लोग थोड़े होते हुये भी परमेश्वर पर अपना पूरा भरोसा रखते हैं वे दुनियावी शक्ति से अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं।

V मेरोज़ का पाप

यहोवा का दूत कहता है कि मेरोज़ को शाप दो, उसके निवासियों को भारी शाप दो, क्योंकि वे यहोवा की सहायता करने को, शूरवीरों के विरूद्ध यहोवा की सहायता करने को न आए (न्यायियों 5:23)।

(1) कुछ भी न करने का पाप मेरोज़ के लोगों ने किया था। उन्होंने कोई

घृणित अपराध या व्यभिचार जैसा पाप नहीं किया था। वे संतुष्ट होकर अपने प्रतिदिन के कामों में लगे रहे तथा परमेश्वर के शत्रुओं का सामना करने के लिये सामने नहीं आये। जबकि भयानक युद्ध छिड़ा हुआ था और शत्रु परमेश्वर के लोगों से लड़ रहा था लेकिन वे अपने कार्यों में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने इस बात पर कोई भी ध्यान नहीं दिया।

(2) यह कितनी ही भयानक बात है कि यहोवा का कार्य न करने पर उन्हें शाप मिला। इस प्रकार से सोचना कि हमारी आत्माओं के साथ सब कुछ ठीक है कितना आसान है। जिस व्यक्ति को एक तोड़ा मिला था, उसका पाप यह था कि उसने अपने आपको कुछ भी न करने के योग्य बताया था। (मत्ती 24:14-30)। परमेश्वर का वचन बड़ी ही स्पष्टता से कहता है: "इसलिये जो कोई भलाई करना जानता है और नहीं करता, उसके लिये यह पाप है" (याकूब 4:17)।

VI एक भयानक स्थिति-इस कहानी को देखने से हमें कलीसिया तथा एक राष्ट्र में सामानांतर स्थिति दिखाई देती है।

(1) शत्रु का बीच में स्थित होना-इतिहास के अनुसार संसार में इक्कीस मुख्य सभ्यताएं ऐसी थीं जिन्होंने बहुत उन्नति की परन्तु अपने आपसी मतभेद और फूट के कारण वे बाद में गिर गई थीं तथा इनमें से उन्नीस इसलिये टुकड़े-टुकड़े हो गई थीं क्योंकि उनके बीच में सड़ाहट पनप रही थी।

किसी भी राष्ट्र का नाश उसके अपने लोगों के अनुचित नैतिक ज़ीवन के कारण होता है। इसी प्रकार की आंतिरक बुराईयां जिनसे इस्राएल जाति की स्थिति बिगड़ गई थी आज हमारे राष्ट्र और यहां तक कि कलीसिया में भी प्रवेश कर गई है। नैतिक बुराईयां बहुत ही प्रचलित हो रही हैं। बुरी संगतियों में रहना आज एक आम बात हो गई है। लोगों के बीच में रहकर दुनियादारी निभाने के लिये ''परमेश्वर की दृष्टि में बुराई करना' आवश्यक समझा जाता है।

''प्रत्येक मनुष्य को जो ठीक सूझ पड़ता था वही वह करता था।'' अच्छाई-बुराई को अपने तरीके से नापने-तौलने की शिक्षा आज अधिकतर स्थानों पर दी जाती है। हमारा प्रत्येक व्यवहार परमेश्वर के वचन पर आधारित होना चाहिये ''प्रभु ऐसे कहता है'' कही जाने वाली जैसी बात अब लगभग समाप्त होती जा रही है। नैतिक जीवन तथा धर्म में उचित अधिकार न होने के कारण बहुत ही गड़बड़ी उत्पन्न होती है तथा अन्त में इससे विनाश ही होता है। हम अपने प्रतिदिन के जीवन में माप-दण्ड का अर्थ समझते है।। उदाहरण के रूप में मान लीजिये यदि हम माप-दण्ड का ध्यान न रखते हुये अपनी-अपनी घड़ियों में अपनी इच्छा अनुसार

समय को मिला लें अर्थात ''जिस मनुष्य को जैसा सूझ पड़े।'' तो क्या आप इसका अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि ऐसा करने से कितनी गड़बड़ हो जायेगी? मान लीजिये सारे गणित के विद्वान अपने अपने तरीके से हिसाब करने का तरीका निकाल लें तो कैसा होगा? यही सिद्धांत नैतिक तथा आत्मिक बातों पर भी लागू होता है। सबसे उत्तम तथा उच्च कोटि का मानक या माप-दण्ड है परमेश्वर का वचन। ''मनुष्य का मार्ग उसके वश में नहीं है, मनुष्य चलता तो है परन्तु उसके डग उसके आधीन नहीं हैं'' (यिर्मयाह 10:23)। जब कोई व्यक्ति ''जैसा उसकी अच्छा लगे'' इस प्रकार का निश्चय बनाकर चलना चाहता है तो इसका परिणाम नैतिक तथा आत्मिक रूप से बुरा होता है।

(2) बाहर से शत्रु का आक्रमण-आज हम एक ऐसे शत्रु का सामना कर रहे हैं जो बहुत शक्तिशाली, क्रूर, निर्दयी तथा परमेश्वर में विश्वास न करने वाला है अर्थात वह मूर्तिपूजक कनानी लोगों से भी अधिक खराब है। ऐसे नास्तिक लोग जो भौतिकवाद में विश्वास करते हैं, आज संसार की आबादी में सबसे अधिक पाये जाते हैं। और इसको बढ़ावा देने वाले यह भी दावा करते हुये घमण्ड से कहते हैं कि शीघ्र ही वे पूरी पृथ्वी को अपने में समेट लेंगे। यदि ऐसा होगा तो हमारा केवल राष्ट्र ही नाश नहीं होगा बल्कि मसीहीयत पर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। जिस धर्म तथा जिन राष्ट्रों में भौतिकवाद प्रचलित है उनके बारे में जानने से पता चलेगा कि उनके साथ क्या हुआ, और तब हम इस बात को भली-भांति समझ सकेंगे कि इस प्रकार का शत्रु किस तरह से संसार के ऊपर प्रत्येक दिशा में आक्रमण करता है।

VII हम कैसे विजयी हो सकते हैं ?

(1) ''जाग, जाग हे दबोरा! जाग, जाग, गीत सुना" (न्यायियों 5:12)। जीत की शुरूआत जागकर ही होती है, अर्थात उन्हें सचेत होकर इस्राएल को नाश होने से बचाने के लिये कुछ करना था। ऐ मसीही अब जाग, क्योंकि तुझे यह समझना चाहिए कि प्रभु को तेरी अब आवश्यकता है ताकि तू नाश करने वाले बीजों को उखाड़कर फेंक दे।

(2) हमें परमेश्वर की ओर वापस आना चाहिए। केवल यहोवा के द्वारा ही विजय प्राप्त होती है।

(3) हमें अपनी इच्छा से सही लोगों के साथ मिलकर प्रत्येक प्रकार की बुराई का विरोध करना चाहिए। परमेश्वर मनुष्यों के द्वारा अपना कार्य करता है।

(4) हमारे पास ज्ञान होना चाहिए। बाहरी तथा आंतरिक बुराई के कारणों को जाने बगैर हम अच्छे योद्धाओं की तरह लड़ नहीं सकते अत: ज्ञान का होना बहुत ही आवश्यक है। एक ऐसे शत्रु से लड़ना-असम्भव होगा जिसके विषय में हम जानते तक नहीं। नास्तिक भौतिकवादियों के विषय में जानें तथा यह भी कि परमेश्वर के विरूद्ध कार्य करने की उनकी क्या-क्या शिक्षाएं और चलाकियां हैं। शत्रु को पराजित करने के लिये अपने अन्दर परमेश्वर के ज्ञान को अधिक से अधिक बसने दें।

(5) हममें साहस होना चाहिए और साहस इतना होना चाहिए ताकि हम परमेश्वर के वचन के साथ दृढ़ता से खड़े रह सकें और शत्रु का मुकाबला कर सकें। अब यह समय नहीं है कि हम कमज़ोर होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें। परमेश्वर को आज शेर-दिल जैसे लोगों की आवश्यकता है। ''दबोरा जैसी स्त्रियां और माताएं'' आज सामने आएं ताकि वे सत्य और सही बात के लिए शैतान का मुकाबला कर सकें।

“जबकि परमेश्वर अपने लोगों के द्वारा कार्य करता है, यदि उसके लोग कार्य करने में भाग नहीं लेते तो क्या उसका कार्य भलि-भाति हो पायेगा?”

“जबकि दबोरा एक मां भी थी, इसका अर्थ यह हुआ कि मां होते हुए, उसके पास बहुत सा कार्य भी था तौभी उसने परमेश्वर का कार्य करने के लिये समय निकाला तथा प्रभु की सेवा अपने तन-मन से की। यदि वह ऐसा करने में सफ़ल हो सकि, तो क्या आप ऐसा नहीं सोचतीं कि जो माताएं घर के कार्यों में व्यस्थ है तो क्या वे परमेश्वर के लिये समय नहीं निकाल सकती?”

दलीला (Delilah)

दलीला के जीवन का वर्णन बाइबल में इसलिये हुआ है क्योंकि उसका सम्बन्ध शिमशोन से था, जो इस्राएलियों का एक न्यायी था। धार्मिक इतिहास का यह एक बहुत ही अशांत तथा अस्तव्यस्त समय था। बहुत से न्यायी सिद्ध व्यक्ति नहीं थे परन्तु फिर भी उन्होंने अपने विश्वास को एक दुष्ट और मूर्तिपूजक संसार में दृढ़तापूर्वक बनाये रखा। ''और इस्राएलियों ने फिर यहोवा की दृष्टि में बुरा किया, इसलिये यहोवा ने उनको पालिश्तियों के वश में चालीस वर्ष के लिये रखा'' (न्यायियों 13:1)

I शिमशोन-शक्ति तथा निर्बलता का एक उदाहरण है-

शिमशोन के बारे में जाने बगैर, दलीला के विषय में अध्ययन करना असम्भव होगा। उसका जन्म दानियों कुल में हुआ था तथा जन्म से ही वह परमेश्वर का नाज़ीर था। यानि उसके विषय में पहिले से ही यह कहा गया था कि उसका सम्पूर्ण जीवन परमेश्वर के लिये होगा, वह दाख मधु और किसी भांति की मंदिरा न पिए तथा उसके सिर पर कभी उस्तरा न फिरे। वह शारीरिक रूप से बहुत ही लम्बा-चौड़ा था, और जब तक वह परमेश्वर की आज्ञा को मानकर उसका नाज़ीर बना रहा तब तक प्रभु ने उसे एक अलौकिक ईश्वरीय शक्ति से आशीषित किया हुआ था।

(1) **उसके कार्य के विषय में उसके जन्म से पूर्व ही बता दिया गया था**-''और इस्राएलियों को पलिश्तियों के हाथ से छुड़ाने में वहीं हाथ लगायेगा'' (न्यायियों 13:5)। बीस वर्षों तक उसने इस्राएली लोगों का न्याय किया। उसके जीवन का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि उसका जीवन दुखों से भरा हुआ था, एक ऐसा जीवन जो हमें उसके प्रति सहानुभूति दिखाने के लिये प्रेरित करता है। वह एक बलवान युवा था, तथा परमेश्वर का जन था, परन्तु उसका जीवन एक दुख से भरी हुई स्थिति से गुज़रते हुये एक दर्दनाक स्थिति में समाप्त होता है।

(2) जो स्त्रियाँ शिमशोन के जीवन में आई उसके आधार पर हम उसकी जीवनी को अलग-अलग भाग करके देख सकते हैं-इन सब स्त्रियों में सबसे अधिक

योजनाएं गड़नेवाली, शैतानी हरकतें करने वाली, तथा उसका बुरा करने वाली स्त्री थीं दलीला। उसके जीवन में जितनी भी स्त्रियां आईं वे सब अन्य जातियों की थीं तथा मूर्तिपूजक राष्ट्रों की नागरिक थीं। यदि वह इस्राएली लोगों की किसी स्त्री से ब्याह कर लेता तो शायद उसका जीवन अच्छा तथा भिन्न होता। शिमशोन शक्ति तथा निर्बलता का एक अद्‌भुत उदाहरण था। उसमें शारीरिक शक्ति थी परन्तु नैतिक निर्बलता भी थी और उसकी निर्बलता उसकी शक्ति से अधिक आश्चर्यजनक थी।

(3) **शिमशोन को बाइबल में हम एक जोकर के रूप में भी देखते हैं।** वह अजीब तरह के षड़यंत्रों को रचता था तथा उनसे उत्पन्न होने वाले परिणामों से बड़ा आनन्द लेता था। क्या कभी कोई ऐसा करने के लिये सोचेगा कि बहुत सारी लोमड़ियों को पकड़कर उनकी दुमों को एक साथ बांधकर तथा मशालों में आग लगाकर उनकी दुमों के साथ बांध दे या फिर आधी रात को उठकर, किसी नगर के फाटक के दोनों पल्लों और दोनों बाजुओं को पकड़कर बेड़ों समेत उखाड़ डाले?

II संसार की एक बहुत ही प्रसिद्ध लुभाने वाली स्त्री-

पलिश्ती लोग परमेश्वर के लोगों के शत्रु थे, तथा इस्राएलियों का एक अगुवा होने के नाते, शिमशोन की यह जिम्मेदारी थी कि वह पलिश्तियों को पराजित करके उन्हें विजय दिलाये। यद्यपि वह पापरहित नहीं था-और परमेश्वर पाप की उपेक्षा नहीं करता चाहे वो पाप उसके अपने लोगों का ही क्यों न हो-तौभी शिमशोन मूर्तिपूजक लोगों के बीच में रहकर परमेश्वर के कार्य को कर रहा था; और जब तक वह परमेश्वर के प्रति सच्चा विश्वासी बना रहा तब तक वह पलिश्तियों की सारी सेना से भी अधिक शक्तिशाली था। तब दलीला उसके सम्पर्क में आई तथा पलिश्तियों की एक जासूस होने के नाते, उसका उद्देश्य यह था कि वह शिमशोन की ताकत के स्रोत के बारे में जानकारी प्राप्त करके उसे बिल्कुल शक्तिहीन कर दे ताकि अपने लोगों को जीत दिला सके।

(1) उसका उद्देश्य- तब पलिश्तियों के सरदारों ने उसे इनाम देने को कहा ''**तू उसको फुसलाकर बुझ ले** कि उसके महाबल का भेद क्या है, और कौन उपाय करके हम उस पर ऐसे प्रबल हो, कि उसे बांधकर दबा रखें, तब हम तुझे ग्यारह-ग्यारह सौ टुकड़े चांदी देंगे।'' (न्यायियों 16:5)। उसका उद्देश्य था पैसा प्राप्त करना। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इतने सारे चांदी के टुकड़ों के बारे में सुनकर उसकी आंखें खुशी के मारे चकाचौंध हो गई होंगी।

(2) **अपने षड़यंत्र तथा अपनी योजना को उसने इस प्रकार से कार्यरूप** दिया ताकि तीव्रता से शिमशोन को बर्बाद कर दे। अपने उद्देश्य पर उसने पहले से ही सूक्ष्मता से विचार किया था। शिमशोन को प्रेम करने का उसने एक ढोंग रचा था परन्तु शिमशोन उससे सचमुच में प्रेम करता था। उसके लिये यह कितनी बुरी बात थी कि वह अपने शरीर को जो पवित्र है किस प्रकार से अपवित्र कर रही थी, परन्तु इससे बढ़कर और भी खराब बात यह थी कि वह अपने अनुचित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये प्रेम को भी अपवित्र कर रही थी जो परमेश्वर द्वारा दी गई मनुष्य के लिये एक आशिष है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि दोहरा रूप धारण करने तथा छल-कपट करने में वह काफी निपुण थी। बड़ी ही चतुराई से उसने शिमशोन को यह विश्वास दिला दिया था कि वह जीवन भर उसका साथ देगी। इस बात में भी कोई शक नहीं कि वह बहुत सुन्दर थी, बहकाने तथा फुसलाने में वह बहुत कुशल थी तथा परमेश्वर के इस जन के विरूद्ध शैतान के द्वारा बड़ी ही कुशलता से इस्तेमाल किये जाने वाली वह एक बहुत ही शक्तिशाली हथियार थी। स्त्रियां शिमशोन की सबसे बड़ी कमज़ोरी थी और शैतान इस बात को भली-भांति जानता था। दलीला नाम एक ऐसा समानार्थक नाम है जो प्रत्येक युग की उन स्त्रियों के साथ जुड़ा हुआ है जो परमेश्वर द्वारा दी गई सुन्दरता का दुरूपयोग करके पुरूषों को अपना शिकार बनाती हैं। इस प्रकार की स्त्रियां हमेशा इस संसार में रही हैं और रहेंगी तथा जिस प्रकार से वे विनाश का जाल बिछाती हैं उसका वर्णन हमें नीतिवचन 5:1-13 में मिलता हैं। यशायाह ने इस्राएल की कुछ ऐसी पुत्रियों के विषय में बोला था जिनकी आत्मिक स्थिति बहुत बुरी तरह से बिगड़ चुकी थी 'क्योंकि सिय्योन की स्त्रियां घमण्ड करतीं और सिर ऊंचे किये आंखें मटकातीं और घुंघरूओं को छमछमाती हुई ठुमक-ठुमक चलती हैं'' (यशायाह 3:16)।

(3) **उसकी सफ़लता**- जो कार्य बहुत सारे पलिश्ती लोग एक साथ मिलकर नहीं कर सके वो कार्य एक अकेली स्त्री ने कर दिखाया। एक शक्तिशाली सेना के सामने तो शिमशोन बहुत बलवान था, परन्तु एक स्त्री की शक्ति के सामने वह बिल्कुल कमज़ोर था।

III शैतान द्वारा बार-बार प्रयत्न करने का यह एक प्रतीक है-

(1) शैतान ने दलीला की केवल चालाकी का ही प्रयोग नहीं किया बल्कि उसने एक और प्रभावशाली तरीका इस्तेमाल किया और वो यह था कि वह प्रतिदिन शिमशोन को बहुत तंग करने लगी तथा उसने उसे तब तक तंग किया जब तक उसने अपना साहस नहीं छोड़ दिया। ऐसा करने में उसे काफ़ी दिन लगे थे। दलीला ने अपना निशाना एक उद्देश्य के ऊपर रखा था, ताकि शिमशोन अपनी शक्ति का रहस्य उसे बता दे। तीन बार प्रयास करने पर भी वह असफल रही। शिमशोन जब भिन्न-भिन्न उत्तर देकर उसे चिढ़ा रहा था, तो उसने पहले उसे सात नईं तांतों से बान्धने का प्रयत्न किया (न्यायियों 16:7-9), तब उसने उसे नई नई रस्सियों से बांधा (न्यायियों 16:11,12), इसके प्रश्चात उसने उसके सिर की लटें ताने में बुन दीं (न्यायियों 16:13,14)। यद्यपि यह सब करने पर भी वह असफल रही तो भी उसने अपनी हार नहीं मानी और बार-बार प्रयत्न करती रही। "सो जब उसने हर दिन बातें करते-करते उसको तंग किया, और यहां तक हट किया, कि उसके नाकों में दम आ गया''(न्यायियों 16:16)। बार-बार उसे तंग करके उसने उसके नाकों में दम कर दिया था। बार-बार वह ये ही करती रही और दिन-प्रतिदिन उसके पीछे पड़ी रही और अन्त में उसने अपनी बात को मनवा ही लिया। तब शिमशोन ने अपना भेद उसे बता दिया, और अब उसके लिये सब कुछ करना बड़ा ही सरल था, ''तब उसने उसको अपने घुटनों पर सुला रखा, और एक मनुष्य बुलवा कर उसके सिर की सातों लटें मुण्डवा डालीं।'' (न्यायियों 16:19)। तब उसका सारा बल चला गया और वह निर्बल हो गया।

(2) बार-बार बुराई करने का पाप आज दलीला जैसी अनेकों स्त्रियों में देखा जा सकता है। नीतिवचन की पुस्तक ऐसी स्त्रियों के विषय में यह बताती है कि जब तक वे अपनी बात को मनवा न लें उन्हें चैन नहीं मिलता। ''झंड़ी के दिन पानी का लगातार गिरना (टपकना), और झगड़ालू पत्नी दोनों एक से हैं'' (नीतिवचन 27:15)। - ''और पत्नी के झगड़े-रगड़े सदा टपकने के समान हैं'' (नीतिवचन 19:13)।

IV उसके लिये यह एक खोखली जीत थी-

दलीला ने बार-बार प्रश्न किया और इससे उसे लाभ भी हुआ, हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उसने अपने मन में भी यही सोचा होगा। आखिरकार उसने अपने उद्देश्य को पा लिया था। उसका कार्य अब पूरा हो गया था। परन्तु क्या इससे उसको वास्तविक खुशी मिली थी? आखिरकार इसका परिणाम क्या हुआ? हम देख सकते हैं कि यह बात शिमशोन के नाश होने का कारण बनी, और इससे दलीला के अपने लोग भी नाश हुये। इस बात का वर्णन हमें नहीं मिलता कि क्या वह भी दूसरे पलिश्तियों के साथ मारी गई थी। शायद वह भी उन्हीं के साथ मारी गई होगी परन्तु यदि नहीं, तो शिमशोन का मारा जाना, तथा पलिश्तियों के सरदारों की मृत्यु और उसकी अपनी जाति की हार उसके लिये एक खोखली तथा व्यर्थ जीत थी। यदि उसे इसका इनाम अर्थात चांदी के टुकड़े भी मिले होंगे, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि यह अब उसके लिये कीड़े और राख के समान थे। यहूदा इस्करियोती ने भी

लालच में आकर प्राप्त किये हुये चांदी के सिक्कों को ज़मीन पर फेंक दिया था तथा अपने आपको फांसी लगा ली थी। क्या दलीला की जीत उस कीमत के योग्य थी जो उसे चुकानी पड़ी? यदि आज वह हमसे बोल सकती, तो आप समझ सकते हैं कि उसका उत्तर क्या होता?

तौभी, अक्सर यह देखा जाता है कि बार-बार अपनी ही बात मनवाने की इच्छा को रखते हुये आज अनेक स्त्रियों ने अपने घर की शांति को भंग कर दिया है, अपने पति की इज्ज़त को मिट्टी में मिला दिया है, उनके बच्चे अब उनसे दूर हो गये हैं, उनका विवाहित जीवन बर्बाद हो चुका है, तथा उनका आत्मिक जीवन भी समाप्त हो चुका है और यह सब इसलिये हुआ क्योंकि उन्होंने कभी भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि उन्हें इसका क्या दाम चुकाना पड़ेगा। ये ही बात आज अनेक पुरूषों पर भी लागू होती है।

V परीक्षा के साथ खि़लवाड़ करना खतरनाक होता है-

(1) शिमशोन का ऐसा कोई इरादा नहीं था कि वह अपनी शक्ति का रहस्य दलीला को बताये परन्तु, वह उसे चिड़ाकर एक तरह का आनन्द ले रहा था। उसके लिये ऐसा करना बहुत ही खतरनाक था क्योंकि बाइबल कहती है, ''क्या हो सकता है कि कोई अपनी छाती पर आग रख लें, और उसके कपड़े न जलें'' (नीति. 6:27)? इसका उत्तर बिल्कुल स्प्ष्ट है- शिमशोन धीरे-धीरे अब प्रभु से दूर होने लगा था, दलीला के घुटनों पर सिर रख कर वह गहरी नींद में सो रहा था जबकि उसके सिर के बाल काटे जा रहे थे। ''वह तो न जानता था, कि यहोवा उसके पास से चला गया है।'' वह परमेश्वर का नाज़ीर था और इसलिये परमेश्वर की बातों को मानते हुये उसे कुछ नियमों का पालन करना था, शायद उसे यह बातें मामूली या तुच्छ लगती होंगी, परन्तु उनको मानना उसकी एक परीक्षा थी। परमेश्वर की आज्ञा न मानना सब पापों का मूल तत्त्व है तथा ईश्वरीय अधिकार के प्रति अनादर दिखाने का यह एक लक्षण है। इसी प्रकार का पाप मूसा, लूत की पत्नी, मरियम तथा बाइबल के अन्य चरित्रों में भी था। आज्ञा का उल्लंघन करना शायद छोटी सी बात लगे, परन्तु ईश्वरीय अधिकार के प्रति अनादर दिखाना बिल्कुल भी एक छोटी बात नहीं है। परमेश्वर शिमशोन के साथ तब तक रहा जब तक शिमशोन उसे साथ रहा। दो जन एक साथ एक ही मार्ग पर तब तक नहीं चल सकते जब तक वे आपस में सहमत न हों, यदि उनमें से कोई दूसरे मार्ग पर चलने की इच्छा करता है तो उन दोनों का एक साथ चलना असम्भव है।

(2) एक मसीही व्यक्ति संसार से अलग किया हुआ व्यक्ति है तथा उसने अपने आपको परमेश्वर की सेवा के लिये सौंप दिया है। उसे अपने आप को

सांसारिक प्रभाव से दूर रखना है, परन्तु अनेक लोग ऐसे है जो संसार की खुशियों के साथ खेलने लगते हैं। परमेश्वर को छोड़ने का उनका कोई इरादा नहीं होता, परन्तु शिमशोन की तरह वे थोड़े समय के लिये संसार का आनन्द भी उठाना चाहते हैं। धीरे-धीरे वे परमेश्वर से दूर होने लगते हैं तथा ऐसा समय आता है कि अचानक उन्हें पता चलता है कि वे वास्तव में अब प्रभु से अलग हो चुके हैं तथा बहुत दूर जा चुके हैं। उनकी आत्मिक ज्ञानेन्द्रियां ऐसी सुन पड़ जाती हैं जैसे किसी व्यक्ति का शरीर ठंड से बिल्कुल सुन पड़ जाता है और उसे कुछ भी महसूस नहीं होता। ऐसी परीक्षाएं लोगों के सामने अनेक प्रकार से आती हैं, जैसे-संसारिक कार्य, प्रभु से अधिक अपने व्यापार या परिवार को महत्व देना, और कोई दुख-मुसीबत आने पर प्रभु से हमेशा के लिये दूर हो जाना इत्यादि।

आज प्रभु की इस चेतावनी की हमें कितनी आवश्यकता है- **''चौकस रहो, कहीं गिर न पड़ो''**।

(3) जिसके साथ उसके गहरे सम्बन्ध थे उसी के कारण उसकी बरबादी हुई। जिसे उसने अपना मित्र समझा था उसी के द्वारा उसके साथ विश्वासघात हुआ। यीशु तथा दाऊद के साथ भी ऐसा ही हुआ था (भजन 55:12,13)। बहुत कम बार ऐसा होता है कि कोई अजनबी प्रभु के पास से किसी विश्वासी को भटका कर ले जाये। प्रभु ने चेतावनी दी थी कि ''बुरी संगति अच्छे चरित्र को बिगाड़ देती है।'' (1 कुरिन्थियों 15:33)। किसी के साथ हमारे गहरे सम्बंध या तो हमें प्रभु के बहुत निकट ले जाते हैं या फिर हमें उससे बहुत दूर ले जाते हैं।

VI अन्धे, शिमशोन को अब वास्तविकता दिखाई पड़ती है-

''तब पलिश्तियों ने उसको पकड़कर उसकी आंखें फोड़ डाली, और उसे अज्जा को ले जाके पीतल की बेड़ियों से जकड़ दिया, और वह बन्दीगृह में चक्की पीसने लगा।'' (न्यायियों 16:21)। परमेश्वर के जन की यह कैसी दयनीय दशा थी। तब उन्होंने अपने दागोन नाम देवता के लिये बड़ा यज्ञ किया, और आनन्द करने को यह कहकर इकटठे हुए, कि हमारे देवता ने हमारे शत्रु शिमशोन को हमारे हाथ में कर दिया है। तब उन्होंने शिमशोन को बुलवा लिया ताकि वह उनके लिये तमाशा करे। ऐसा लगता है कि प्रभु के शत्रुओं को अब पूर्ण सफलता मिल चुकी थी। अपने आरंभ के जीवन में शिमशोन की शारीरिक दृष्टि तो अच्छी थी परन्तु आत्मिक दृष्टि बहुत ही खराब थी। अन्त में यह हंसी-मज़ाक करने वाला नटखट अपने जीवन की वास्तविकता को समझता है। जब उसे असलियत दिखाई पड़ी तब उसकी शारीरिक दृष्टि समाप्त हो चुकी थी।

उसका अपमानित होना, तथा शर्मिन्दा होना और कष्ट उठाना व्यर्थ नहीं था। ऐसा होने से वह प्रभु के सामने नम्र बना तथा उसके पास वापस आ सका और उसके विश्वास की भी हम प्रशंसा करते है, कि किस प्रकार की दर्दनाक स्थिति में से गुज़रते हुये वह परमेश्वर के पास वापस आया। उसने सच्चे मन से परमेश्वर से बिनती की कि वह उसे इस बार फिर से शक्ति दे ताकि वह प्रभु के शत्रुओं को नाश कर सके। उसने इस प्रकार से प्रार्थना की और यहोवा की दोहाई देकर कहा "हे प्रभु यहोवा, मेरी सुधी ले, हे परमेश्वर अब की बार मुझे बल दे, कि मैं पलिश्तियों से अपनी दोनों आंखों का एक ही पलटा लूं-तब शिमशोन ने उन दोनों बीच वाले खम्भों को जिन से वो घर सम्भला हुआ था पकड़कर एक पर तो दाहिने हाथ से और दूसरे पर अपना बल लगाकर झुका, तब वह घर सब सरदारों और उसके सारे लोगों पर गिर पड़ा।" अपने इस बहुत घोर पाप के पश्चात शिमशोन को यह एक बहुत बड़ी विजय प्राप्त हुई थी।

VII परमेश्वर द्वारा दी गई जिम्मेदारियों को अपवित्र करना-

बाइबल में स्त्रियों की विशेष शक्ति को अनेकों स्थानों पर दर्शाया गया है और खास बात यह है कि बुराई की शक्ति तथा भलाई की शक्ति दोनों का ही वर्णन किया गया है। जिस प्रकार से दबोरा जैसी स्त्री एक पुरूष में विश्वास तथा साहस लगाकर उसे जीत दिला सकती है वैसे ही दलीला जैसे स्त्री एक पुरूष का जीवन पूरी तरह से नाश कर सकती है और वह उसे इतना नीचे गिरा सकती है कि वह अन्त जीवन से भी उसे वंचित कर सकती है तथा ऐसी स्त्री हमेशा नाश का ही कारण होती है। स्त्री को इसलिये बनाया गया था ताकि वह पुरूष की सहायक हो, न कि उसको नाश करने वाली अथवा उसका जीवन बरबाद करने वाली।

कई स्त्रियों ने अनेकों पुरूषों का जीवन बरबाद कर दिया है, जिस प्रकार से दलील ने शिमशोन के साथ किया था लेकिन क्या ऐसा करके उन्होंने अपने जीवन को भी तो बरबाद कर लिया हैं?

रूत (Ruth)

संसार के अधिकतर लोग प्रेम की कहानियां पसन्द करते हैं। येही एक कारण है कि बाइबल में जिन विशेष स्त्रियों का वर्णन है, उनमें पहला दर्जा रूत को दिया जाता है। एक और कारण यह है कि जो सुन्दरता, अच्छाई तथा नम्रता उसके अन्दर थी वह बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है, और इसीलिये उसका आदर व सम्मान पुरूषों तथा स्त्रियों दोनों के द्वारा किया जाता है। रूत के जीवन के साथ एक विशेष बात यह जुड़ी हुई है कि वह एक बहुत ही प्रभावशाली तथा पवित्र स्त्री थी। रूत की पुस्तक के चारों अध्याय पढ़िए। आपके मन को इससे बहुत ही साहस मिलेगा, तथा परमेश्वर में आपका विश्वास बहुत दृढ़ होगा। यह पवित्र रत्न जिस काल में प्रकट हुआ वह न्यायियों का काल था, तथा यह एक ऐसा समय था जब युद्ध होना, खून बहाना तथा अकाल पड़ना जैसी घटनाएं आम बात थी। इस कहानी में कोई ऐसा चरित्र नहीं हैं जो अपने पापमय जीवन से इसकी सुन्दरता को बिगाड़ सके। और न ही कोई ऐसा नीच अथवा दुष्ट व्यक्ति है जिसने इस कहानी में प्रवेश किया हो। इस बात को मध्य-नज़र रखते हुये हम यह कह सकते हैं कि रूत की पुस्तक बाइबल में एक ऐसी पुस्तक है जो बिल्कुल अलग तथा भिन्न है।

बेतलेहम को जो यीशु का जन्म स्थान तथा दाऊद का शहर था अपने दिमाग़ में ज़रा चित्रित कीजिये, और उन चार वंशावलियों के विषय में भी सोचिये जो दाऊद के जन्म से पहले थीं। वहां एलीमेलेक और उसकी पत्नी तथा उनके दो बेटे रहते थे। अकाल पड़ने के कारण मोआब के देश में उन्हें जाना पड़ा था" और नाओमी का पति एलीमेलेक मर गया, तथा नाओमी और उसके दोनों पुत्र रह गए। और इन्होंने एक मोआबिन स्त्री ब्याह ली, एक स्त्री का नाम तो ओर्पा और दूसरी का नाम रूथ था। फिर वे वहां कोई दस वर्ष रहे। महलोन और किल्योन भी दोनों मर गए" अब तीन बेवाएं अपने पतियों की मृत्यु के पश्चात दुखों से भरी हुई इस संसार में अकेली थीं तथा वे अब यह सोच रही थी कि किस प्रकार से अपनी रक्षा की जाये। जिस प्रकार का साहस तथा निष्ठा उनमें थी अर्थात एक जवान बेवा रूत में और एक बूढ़ी बेवा नाओमी में उससे हमें बहुत ही प्रेरणा मिलती है।

I रूत को अपने जीवन का एक विशेष फ़ैसला करना था–

अपने पति तथा बेटों को खो देने के बाद, अब दुखी नाओमी अपने घर को वापस लौटने का निश्चय करती है। रूत तथा ओर्पा भी उसके साथ जाना चाहती हैं परन्तु वह उनसे बिनती करती है कि वे अपने घरों पर यानि मोआब को वापस लौट जायें। ओर्पा ने उसे चूमा और चली गई। अब रूत की बारी थी यह निश्चय करने की क्या वह जायेगी या नहीं? वह जीवन के एक ऐसे मोड़ पर खड़ी थी जहां उसे एक बहुत बड़ा फ़ैसला करना था। सचमुच में यह निश्चय करना बहुत कठिन था। उन बातों के विषय में सोचिये जिनके कारण उसका मन मोआब वापस लौट जाने को कर सकता था, जैसे ओर्पा का उदाहरण, नाओमी का बिनती करना, अपने घर और संबंधियों के विषय में सोचना, उन खुशी के दिनों के विषय में सोचना जो उसने महलोन के साथ मोआब में बिताये थे तथा उसकी कब्र भी वहीं थी, और इस बात का भय भी कि क्या परदेश में उसे स्वीकार किया जायेगा, तथा भविष्य का अनिश्चित होना आदि। यह सब बातें उसके मन को मोआब वापस लौट जाने के लिये बाध्य कर सकती थीं। तब उसने भक्तिपूर्ण व्यवहार से और अपने मन की गहराईयों से अपने फ़ैसले को इस प्रकार से बताया– और अपनी सास से कहा ''तु मुझ से यह बिनती न कर कि मुझे त्याग छोड़कर लौट जा, क्योंकि जिधर तू जाए उधर मैं भी जाऊंगी, जहां तू टिके वहां मैं भी टिकूंगी, तेरे लोग मेरे लोग होंगे, और तेरा परमेश्वर मेरा परमेश्वर होगा, जहां तू मरेगी वहां मैं भी मरूंगी, और वहीं मुझे मिट्टी दी जाएगी। यदि मृत्यु छोड़ और किसी कारण मैं तुझ से अलग होऊं, तो यहोवा मुझ से वैसा ही वरन उससे भी अधिक करे।'' विश्वास, प्रेम तथा ईमानदारी को कितने छोटे तथा सरल रूप में यहां व्यक्त किया गया है तथा एक सच्ची भक्ति का जिसमें कोई स्वार्थ नहीं था यह एक बहुत ही अच्छा उदाहरण हैं। हज़ारों लोग अपने विवाह के समय इन्हीं प्रतिज्ञाओं को करते हैं परन्तु ये ही शब्द सबसे पहले मोआब की इस स्त्री ने अपनी सास के सामने बोले थे।

(1) ऐसे अवसर भी आते हैं जब प्रत्येक स्त्री को जीवन के मोड़ पर खड़े हुये एक ऐसा फैसला करना पड़ता है जिसका सम्बंध उसके पूरे जीवन से होता है। ज़रा मुड़कर अपने स्वयं के जीवन पर नज़र डालिये और आप जानेंगी कि यह बात कितनी सत्य है। आपके जीवन का शायद यह एक ऐसा फैसला हो कि आप को एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाना पड़े (जैसे लूत ने किया था, उत्पत्ति 13:11-13), शायद आपके लिये यह शादी करने का फ़ैसला हो (जैसे सुलेमान ने किया था, 1 राजा 11:4-10), या फिर सुसमाचार को न मानने का फ़ैसला (जैसे फैलिक्स ने फ़ैसला किया था (प्रेरितों 24:25), परन्तु यदि उनका फ़ैसला भिन्न होता तो शायद उनका भविष्य कुछ और होता। जब रूत ने अपने आप को मूर्तियों की तरफ से मोड़ लिया तथा जीवते परमेश्वर के पीछे चलने का निश्चय किया, तो ऐसे निश्चय से उसका शारीरिक जीवन ही नहीं बदला बल्कि अपने आत्मिक जीवन में भी इससे उसे लाभ हुआ। यदि उसका निश्चय दूसरा होता तो शायद वह भी ओर्पा की तरह वापस अपने मूर्तिपूजक लोगों के पास चली जाती।

(2) जबकि यह ज़िन्दगी अनेक प्रकार के फैसलों से भरी हुई हैं, तो हमें बड़े ही ध्यानपूर्वक अपने प्रत्येक फ़ैसले को पहले तौलना चाहिए यह जानते हुये कि इस फैसले का परिणाम क्या होगा। ये ही एक ऐसी बात है जो युवाओं को अपने जीवन के विषय में सोचने के लिये बाध्य करती है। कई ऐसे फ़ैसले होते हैं जिनको करने में शायद समय लगता है, जैसे कि मुझे किस व्यक्ति से मित्रता करनी चाहिये, कैसी शिक्षा प्राप्त की जाये, शादी किससे की जाये इत्यादि। अक्लमंद व्यक्ति वही है जो किसी भी मार्ग पर चलने से पहले अच्छी तरह से यह सोच लेता है कि अन्त में इसका परिणाम क्या होगा।

(3) परमेश्वर की आज्ञा मानने के कारण शायद हमें उन चीज़ों को छोड़ना पड़े जो हमें बहुत प्रिय लगती हैं जैसे हमारा परिवार, मित्रगण और जीवन की कुछ मनपसन्द बातें। रूत ने भी ऐसा ही किया था तथा मुड़कर कभी भी उसने अपनी मूर्तियों की तरफ़ वापस जाने की इच्छा नहीं की। ऐसा ही उन्हें भी करना चाहिए जो मसीही बन जाते हैं। प्रभु के लिये सब कुछ त्याग देने की इच्छा रखना एक बहुत बहुमूल्य बात है। (मत्ती 13:45-46)। जो व्यक्ति इस प्रकार का दृढ़ निश्चय करता है, उसे शांति तथा शक्ति मिलती है, परन्तु दुचिता व्यक्ति सदा दुखी रहता है तथा उसका जीवन हमेशा डगमगाता रहता है।

II एक सुन्दर जीवन की विशेषताएं–

वास्तविक सुन्दरता मन से आती है। रूत की नम्रता तथा अच्छाई उसके मन से निकलती हुई दूसरों पर अपना प्रभाव डालती थी और इसीलिये सब उसकी प्रशंसा करते थे। आईये इस सुन्दर जीवन की कुछ विशेषताएं देखें।

(1) **वह परिश्रमी थी**– जब वह और नाओमी बेतलेहम पहुंचे तब रूत ने कहा कि– ''मुझे किसी खेते में जाने दे, कि जो मुझ पर अनुग्रह की दृष्टि करे उसके पीछे-पीछे मैं सिला बीनती जाऊं।'' वह सुस्त नहीं थी। अपनी इच्छा से उसने कार्य करना चाहा ताकि अपना ही नहीं बल्कि अपनी सास का भी पोषण कर सके। कार्य करना परमेश्वर ने ठहराया है। सुस्ती को सदा परमेश्वर द्वारा निकम्मा ठहराया गया है। (सभोपदेशक 9:10;2 थिस्सलुनीकियो 3:10),तौभी अनेक लोग कार्य को महत्त्व नहीं देते तथा वे ऐसा सोचते हैं कि यदि उनके पास कोई कार्य करने के

लिये नहीं है तो यह बहुत अच्छी बात है अर्थात वे कार्य करने से बचना चाहते हैं आज लोग आराम का जीवन पसन्द करते हैं तथा अपना अधिक समय आनन्द भोगने में ही व्यतीत करते हैं। यदि किसी परिवार में स्त्री सुस्त है तो उस परिवार का कार्य सुचारू रूप से चलना सम्भव नहीं है। परमेश्वर के वचन में विशेषकर नीतिवचन की पुस्तक में सुस्ती तथा इससे उत्पन्न होने वाले परिणामों के विषय में बोला गया है। यदि सब अपनी इच्छा से कार्य करें तो परिवार तथा राष्ट्र की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सकता है।

(2) **वह धन्यवादी थी**– जब वह भोजन की खोज में बोअज़ के खेत में गई तो उसने उसे ज़ोर देकर कहा कि वह उसके खेत में ही काम करेगी ''तब वह भूमि तक झुककर मुंह के बल गिरी, और उससे कहने लगी, क्या कारण है कि तूने मुझ परदेशिन पर अनुग्रह की दृष्टि करके मेरी सुधि ली है'' (रूत 2:10)। रूत की आत्मा इतनी महान थी कि वह बोअज़ का धन्यवाद किये बगैर नहीं रह सकी। यह बात उसकी नम्रता को भी प्रकट करती है। प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसकी प्रशंसा की जाये। इस बात के महत्त्व को समझते हुये हमें दूसरों का धन्यवाद करने की आवश्यकता को समझना चाहिए। जब हम दूसरों का धन्यवाद करते हैं तो इसके द्वारा हम उनकी सराहना करके उनके अच्छे कार्य को बढ़ावा देते हैं। कई बार हम धन्यवाद करने में चूक जाते हैं और यह एक ऐसा पाप है जो लोगों में अक्सर देखने को मिलता है तथा इसका कारण होता है हमारा अपना घमण्ड! अक्सर जो लोग अधिक धनी होते हैं अथवा जिनको अधिक आशिषें मिलती हैं, वे धन्यवाद करने में बहुत पीछे होते हैं। यद्यपि बहुत से लोग इस बात को समझते नहीं है, परन्तु यह बात सत्य है कि मनुष्य जो घृणित पाप करता है उन सब में धन्यवादी न होना भी एक बहुत घृणित पाप है (2 तीमुथियुस 3:2)।

(3) **सबके प्रति उसका व्यवहार दयापूर्ण था**– रूत के दयापूर्ण व्यवहार को देखकर नाओमी तथा बोअज़ दोनों ने उसे आर्शीवाद दिया (रूत 1:8,2:12) इन आशीर्वादों का उत्तर उसे भविष्य में प्राप्त भी हुआ अर्थात उसे बहुत सी आशिषें प्राप्त हुई। यह बात कतई सत्य है ''कि जो जैसा बोएगा, वैसा ही वह काटेगा'' मसीहीयों को एक यह आज्ञा भी दी गई है कि वे ''एक दूसरे पर कृपाल और करूणामय हों-और एक दूसरे के अपराध क्षमा करें'' (इफिसियों 4:32)।

(4) **रूत के सुन्दर जीवन का रहस्य था परमेश्वर में उसका दृढ़ विश्वास**– ''तेरा परमेश्वर मेरा परमेश्वर होगा'' कोई भी व्यक्ति जब अपने आप को पूर्णरूप से परमेश्वर को दे देता है तो उसके जीवन में सुन्दर बातें फूलों की तरह खिलने लगती हैं। उसका विश्वास हम इस बात में भी देखते हैं कि उसने परमेश्वर द्वारा दिये गये विवाह के नियम को भी माना था। मूसा के नियम अनुसार

ऐलीमेलेक के बाद जो उसका सम्बंधी होगा वही रूत को अपनी पत्नी बनाएगा (व्यवस्थाविवरण 25:5-10)। बिना किसी सन्देह के उसने उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखा तथा इसलिये उसने परमेश्वर के नियम अनुसार उसे अपना पति माना। बोअज़ को इस बात से बड़ी ही प्रसन्नता हुई होगी कि रूत ने कुछ जवान लड़के होते हुये भी उसे अपना पति होने के लिये चुना है। यदि वह परमेश्वर के नियम के विरूद्ध जाती तो शायद किसी और जवान व्यक्ति से विवाह कर सकती थी।

(5) **रूत बहुत भली स्त्री थी– बोअज़ ने कहा**– ''क्योंकि मेरे नगर के सब लोग जानते हैं कि तू भली स्त्री'' वह जानता था कि सब स्त्रियों में रूत एक रत्न के समान है, क्योंकि ''एक भली स्त्री अपने पति का मुकुट है'' रूत के जीवन की पवित्र तथा सुन्दर विशेषताओं के कारण उसे बहुत सम्मान मिला था (रूत 2:11 तथा 3:11)। सारा नगर उसके बारे में जानता था। हमारे व्यवहार के विषय में चाहे वो अच्छा हो या बुरा अधिकतर लोग जानते हैं। अच्छे लोगों के कार्यो की ज्योति दूर-दूर तक फैल जाती है तथा संसार से चले जाने के पश्चात भी लोग उन्हें याद करते हैं और उन्हें धन्य कहा जाता है। (प्रकाशितवाक्य 14:13)।

(6) **वह एक अच्छी बहु थी**– बिना किसी स्वार्थ के उसने अपनी सास नाओमी की देखभाल की थी, अपनी माता की तरह उसने उसका आदर किया तथा प्रत्येक स्थिति में उसकी सलाह ली। जिनके दिल बड़े होते हैं वही लोग अपनी सच्ची भक्ति को देने के योग्य हो सकते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि नाओमी तथा बोअज़ उससे बेहद प्रेम करते थे, क्योंकि वह इस योग्य थी। जिस व्यक्ति के अन्दर प्रेम के योग्य गुण नहीं होते उससे प्रेम करना भी कठिन होता है। प्रेम एक जीती जागती चीज़ है। हमारे व्यवहार, कार्य तथा शब्दों के द्वारा या तो प्रेम बहुत फले-फूलेगा या फिर समाप्त हो जायेगा। हमें प्रेम के गुणों को अपने अन्दर उत्पन्न करने का प्रयास करना चाहिए। रूत प्रत्येक स्थिति में एक अच्छी तथा योग्य बहु बनने में सफ़ल हुई। यद्यपि कुछ अनुचित परिस्थितियां उसे दूसरे मार्ग पर लेजा सकती थीं, परन्तु उसने ऐसा नहीं होने दिया क्योंकि उसके दिल में अपनी सास के प्रति बहुत आदर और सम्मान था और वह यह भी जानती थी कि उसके आरम्भ के जीवन में किस प्रकार से उसने उसकी देखभाल की थी। हो सकता है शायद उसने इस प्रकार से सोचा होगा कि ''मैं भी तो कभी सास बनूंगी, तब मैं स्वयं किस प्रकार का व्यवहार अपने प्रति चाहूंगी? एक मसीही माता ने विवाह के दिन अपनी बेटी से यह कहा था कि ''जब तक मैं जीवित हूं मुझसे अपनी सास की कोई बुराई मत करना क्योंकि वही एक ऐसी स्त्री है जो अपने पुत्र को इस संसार में लाई ताकि वह तेरा पति हो सके। कितना अच्छा कार्य उसने तेरे लिये किया है। चाहे तेरी सास कुछ भी कहे, मेरे सामने उसकी कोई बुराई मत करना, मैं उसके विरूद्ध कोई भी

बात नहीं सुनूंगी।'' यदि आज माताएं ऐसा व्यवहार दिखायें तथा अपनी बेटियों को इस प्रकार की अच्छी शिक्षा दें तो अवश्य ही सासों और बहुओं के सम्बन्ध बहुत ही अच्छे हो सकते हैं तथा परिवार में एक शांति का वातावरण कायम हो सकता है।

III रूत एक धार्मिक स्त्री थी और उसे इसका प्रतिफल भी मिला-

जब रूत ने मूर्ति पूजा को छोड़कर सच्चे तथा जीवते परमेश्वर की सेवा करने का निर्णय लिया तो उसका यह एक बहुत ही उचित निर्णय था। बोअज़ की यह इच्छा थी कि रूत को अच्छे से अच्छा प्रतिफल मिले। ''यहोवा तेरी करनी का फल दे, और इस्राएल का परमेश्वर यहोवा जिसके पंखों तले तू शरण लेने आई है तुझे पूरा बदला दे'' (रूत 2:12)। बहुत दुख-मुसीबत के दिन देखने के पश्चात, परमेश्वर के प्रेम की किरण उस पर प्रकट हुई तथा निम्नलिखित आशिषें उसे प्रतिफल के रूप में प्राप्त हुई-

(1) **परमेश्वर के पंखों के तले शरण लेने का प्रतिफल-** भजन संहिता के लेखक के अनुसार परमेश्वर के पंखों तले रहने की आशिष से बढ़कर और कोई बड़ी आशिष नहीं है। ''क्योंकि तू मेरा सहायक बना है, इसलिये मैं तेरे पंखों की छाया में जयजयकार करूंगा'' (भजन 63:7)।

एक प्रेमी सृष्टिकर्ता की यह कितनी ही शांतिदायक तथा बड़ी आशिष है। यीशु ने भी एक बार इसी प्रकार की बात कही थी जब उसको यरूशलेम की बुरी दशा देखकर बहुत दुख हुआ था, वह चाहता था कि पापी लोगों को पाप के कीचड़ से निकाल लें, ''जिस प्रकार से एक मुर्गी अपने बच्चों को पंखों तले इकटठा करके सुरक्षित रखती हैं''। सब बातों में परमेश्वर ने रूत की सहायता की थी। इस शांतिपूर्ण प्रतिज्ञा के विषय में ज़रा विचार कीजिये कि ''तु अपनी समझ का सहारा न लेना, वरन सम्पूर्ण मन से यहोवा पर भरोसा रखना। उसी को स्मरण करके सब काम करना, वह तेरे लिये सीधा मार्ग निकालेगा।'' (नीतिवचन 3:5,6)। इस बात पर ध्यान दीजिये कि परमेश्वर ने कुछ शर्तो को यहां रखा है। यदि हम इन शर्तो को पूरा करेंगे तो परमेश्वर अवश्य ही अपने वायदे को पूरा करेगा।

(2) **अच्छा पति मिलने का प्रतिफल**-किसी भी स्त्री के लिये बोअज़ जैसा अच्छे चरित्र वाला पति मिलना सचमुच में एक बहुत ही अच्छा इनाम तथा आशीष की बात होगी। वह धनी था, लेकिन उसे निर्धनों की भी चिन्ता रहती थी (रूत 2:8,9), जो लोग उसके लिये कार्य करते थे वे उसका बहुत आदर करते थे। वह रूत के गुणों को अच्छी तरह से समझता था और इसीलिये उसने उसे आशिष भी दी थी। वह रूत का बड़ा आभारी था कि वह उसकी पत्नी बन सकी। वह ईमानदार

था, क्योंकि उसने रूत से कहा था कि उससे विवाह करने से पहिले वह एक और कुटुम्बी से सलाह कर ले, और ऐसा उसने इसलिये कहा था क्योंकि उस कुटुम्बी का रूत पर पहिला अधिकार था, उसको अपनी इज्ज़त की भी चिन्ता थी (रूत 3:13) तथा विवाह के प्रत्येक नियम का वह पालन करना चाहता था चाहे वह नियम सरकार का हो या धार्मिक हो (रूत 4:1-13)। वह स्त्री धनी है जिसका पति हृष्ट-पुष्ट ही नहीं बल्कि एक अच्छे गुणों वाला चरित्रवान व्यक्ति है। सचमुच में केवल इसी तरह का पुरूष रूत के सीधे-साधे मन के साथ मेल खा सकता था। किसी भी व्यक्ति के लिये इससे बढ़कर प्रशंसा की और कोई बात नहीं हो सकती कि वह परमेश्वर का सच्चा भक्त है, तथा उसकी अगुवाई से अपने जीवन को चलाता है।

(3) एक मां बनने का प्रतिफल-उसके विवाह को दस वर्ष हो गये थे तथा उसके पास कोई बच्चा नहीं था, वह अब एक विधवा थी, और एक ऐसे देश में जा रही थी जहां वह एक अजनबी की तरह होगी। यह सब दुख उसके जीवन के साथ जुड़े हुये थे। रूत का विवाह जब बोअज़ के साथ हुआ तब उनको परमेश्वर ने एक पुत्र से आशीषित किया। जब ओबेद का जन्म उनके यहां हुआ होगा तो एक कितनी बड़ी खुशी उन्हें हुई होगी। एक प्रेम भरे वातावरण में ओबेद का जन्म होना वास्तव में एक बहुत ही सौभाग्यपूर्ण बात थी। उस बच्चे को भी बहुत आशिष मिली थी क्योंकि उसके माता-पिता तथा दादी परमेश्वर का भय मानने वाले लोग थे।

(4) यीशु की वंशावली में भी एक स्थान होने का प्रतिफल-ओबेद दाउद का दादा था। इसलिये रूत जो गैर-यहूदी थी कुछ राजाओं की माता बनी जैसे दाऊद, सुलेमान तथा राजाओं के राजा की। वास्तव में उसके लिये यह परमेश्वर की एक बहुत बड़ी आशीष थी। परन्तु आज हम कई बार यह भूल जाते है कि प्रत्येक मसीही का प्रभु यीशु मसीह से एक विशेष संबन्ध है और यह संबंध एक बहुत ही व्यक्तिगत संबन्ध है (मत्ती 12:46-50)। यदि हम मसीही है तो यीशु मसीह हमारा बड़ा भाई है, हमारा उद्धारकर्ता है, हमारा मध्यस्थ है तथा हमारी आत्माओं का चरवाहा है।

अपनी पिछली ज़िन्दगी की ओर ज़रा मुड़कर देखें। कुछ ऐसे फैसलों के विषय में विचार कीजिये जिनसे आपके जीवन पर प्रभाव पड़ा हो। क्या वे सही फैसले थे या गलत? क्या गलत फैसलों से छुटकारा पाने का कोई तरीका है?

नाओमी (Naomi)

रूत की पुस्तक का आरम्भ नाओमी के परिवार से आरम्भ होता है। सारी बातों में रूत ने नाओमी की सलाह ली थी। हो सकता है इस कहानी को बाइबल में देने का उद्देश्य यह हो कि दाऊद तथा यीशु मसीह की वंशावली के संबन्ध को दिखाया जा सके, यदि रूत के विषय में हमें नहीं पता होता तो शायद कभी भी नाओमी के बारे में नहीं जान सकते थे।

अब आईये इस अच्छी स्त्री नाओमी की ऐसी चार भूमिकाओं को देखें जो उसने अच्छी तरह से निभाई तथा ये बातें प्रत्येक स्त्री के जीवन में होनी चाहिये–

I नाओमी एक परदेशी के रूप में–

(1) लोग अक्सर एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करते हैं। कोई राजनीति से संबधित आज़ादी के लिये दूसरे स्थान पर चला जाता है तो कोई धार्मिक आज़ादी के लिये तथा कोई नौकरी की तलाश में दूसरे देश को चला जाता है। बाइबल के समयों में अकाल पड़ना एक आम बात थी, तथा ऐलीमेलेक और उसके परिवार को भी ऐसी ही समस्या का सामना करना पड़ा था। इसलिये उन्होंने मोआब के देश में जाने का निश्चय कर लिया था। बेतलेहम को छोड़ने का अर्थ था, अपना घर-बार, मित्रगण तथा आसपास की सारी वस्तुओं को छोड़कर दूर परदेश चले जाना। उसे एक लम्बा और कठिन सफ़र पूरा करना था। वह यह तक नहीं जानती थी कि उसे कहां जाना है।

(2) बेतलेहम को छोड़ते समय, उसने इस प्रकार से कहा–''मैं भरी पूरी चली गई थी, परन्तु यहोवा ने मुझे छूछी करके लौटाया है''। वह गरीब थी, और रोटी तक भी खाने के लिये नहीं थी–परन्तु फिर भी एक भरा हुआ जीवन क्यों? जीवन में उसके पास कुछ इसलिये था क्योंकि उसके अपने प्रिय जन उसके साथ थे। उसने अपने साथ वो सब कुछ लिया जिन्हें वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझती थी। अपने आरम्भ के जीवन से ही उसने यह सीखा था कि संसार की वस्तुओं के द्वारा भरपूर या अच्छा जीवन नहीं मिलता बल्कि भरपूर जीवन परमेश्वर के साथ, अपने प्रिय जनों तथा मित्रों के साथ अच्छे संबन्ध से मिलता हैं।

''क्योंकि किसी का जीवन उसकी संपत्ति की बहुतायत से नहीं होता (लूका

12:15)। इससे हमें यह पता चलता है कि नाओमी की वहां से दूसरे स्थान पर जाने की कितनी इच्छा थी।

II नाओमी एक विधवा के रूप में–

''तुम नहीं जानते कि कल क्या होगा। ''जीवन में अनेकों प्रकार के उलटफेर होते रहते हैं। यद्यपि नाओमी को मोआब में भोजनवस्तु तो मिल गई, परन्तु जो उसे सबसे अधिक प्रिय था, उसको उसने खो दिया था। ''ऐलीमेलेक, नाओमी का पति मर चुका था और अब वह अकेली थी'' यह एक छोटा सा कथन लगता है लेकिन प्रत्येक विधवा के लिये इस कथन में कई वर्षों का दुख तथा अकेलापन छिपा हुआ है। ऐसी विधवा स्त्रियां जिन्होंने जवानी में अपने दिल को जिसे दिया था, जिसके साथ उन्होंने दुखों को और खुशियों को बांटा था, और जिसके ऊपर अपना पूरा जीवन आश्रित किया था अब अपने आप को बहुत अकेला समझने लगती है। नाओमी का दुख तथा सूनापन और भी अधिक बढ़ गया था क्योंकि उसके दोनों पुत्रों की भी मृत्यु हो गई थी। ऐसे टूटे हुये दिल को अब किस चीज़ से शान्ति मिलेगी?

(1) **आंसुओं का मलहम**– नाओमी का दुख बहुत अधिक था, आत्मा तथा शरीर में वह इतनी निराश हो चुकी थी कि उसको पहचानना भी बड़ा कठिन हो गया था और यह स्वाभाविक भी था। बड़े ही दुख के साथ रोते हुये वह कहती हैं, ''मुझे नाओमी न कहो, मुझे मारा कहो, क्योंकि सर्वशक्तिमान ने मुझे छुछी करके लौटाया है। सो जब कि यहोवा ही ने मेरे विरूद्ध साक्षी दी, और सर्वशक्तिमान ने मुझे दुख दिया है, फिर तुम मुझे क्यों नाओमी कहती हो?'' (रूत 1:20,21)। कौन सी विधवा स्त्री होगी जिसने इस तरह का दुख महसूस नहीं किया हो? यीशु ने भी ऐसे ही दुख का अनुभव किया था जब लाज़र की मृत्यु होने पर वह मारथा तथा मरियम के साथ रोया था।

क्रूस की कठिन परीक्षा के समय में भी वह गतसमनी के बाग में रोया था। परमेश्वर द्वारा सृजे गये जीवों में मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो रो सकता है। आंसू परमेश्वर द्वारा दी गई एक आशीष है जिससे हम अपने दुखी मन का बोझ हल्का कर सकते हैं।

(2) **विश्वास का मलहम**– नाओमी यह जानती थी कि प्रभु उसके साथ है (रूत 1:20,21), शायद अपना दुख बयान करने का उसका यह तरीका उचित था, क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं कि परमेश्वर के बच्चों की आत्मिक उन्नति के लिये कई बार दुख का होना भी सही होता है। ''हंसी से खेद उत्तम है, क्योंकि मुंह पर

के शोक से मन सुधरता है'' (सभोपदेशक 7:3)।'' मुझे जो दुख हुआ वह मेरे लिये भला ही हुआ है, जिससे मैं तेरी विधियों को सीख सकूं'' (भजन 119:71)। दुखों को झेलते हुये ही नाओमी ने अपने जीवन को सुन्दर बनाया था। जब किसी का विश्वास दृढ़ होता है तो वह आसानी से दुखों का सामना कर सकता है''-मनुष्य की गति यहोवा की ओर से दृढ़ होती है'' (भजन 37:23), तथा ''जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं उनके लिये सब बातें मिलकर भलाई ही को उत्पन्न करती हैं। (रोमियों 8:28)।''

(3) **कार्य करने का मलहम**- बहुत ही शांतिपूर्ण विचार के साथ नाओमी ने अपने भविष्य के लिये योजनाएं बनाई। उसने बेतलेहम को जाने का निश्चय किया। जीवन को सदा चलते रहना है। यद्यपि उसका मन उदास था, क्योंकि यह स्वाभाविक है, परन्तु अपनी उदासी को उसने अपने कार्य के सामने दीवार नहीं बनने दिया, तथा बेतलेहम जाने के समय तक वह लोगों के लिये कार्य करती रही और दूसरों की सहायता करने में लगी रही। यह एक प्रकार का दुख दूर करने का मलहम था, क्योंकि ऐसा करने से उसके बहुत से मित्र बन गये थे और अपने पड़ोसियों के साथ भी उसका सम्पर्क अधिक हो गया था, इस बात को हम इस कहानी के अन्त में देखेंगे।

(4) **यादगारी का मलहम**- यादगारी परमेश्वर द्वारा दी गई एक आशीष है -सगे-सम्बधियों को याद करते रहने से एक बहुत ही अद्भूत शक्ति मिलती है। जिसको हम दिल से प्रेम करते हैं, उसे हम सदा याद करते हैं। परन्तु कई बार याद में डूबे रहने से हम अपने कार्यों में ढीले पड़ जाते हैं। कई लोग अपने पिछले जीवन के विषय में ही सोचते रहते हैं। सुलेमान इसके विषय में इस प्रकार से कहता है ''यह न कहना, बीते दिन इन दिनों से क्यों उत्तम थे? क्योंकि यह तू बुद्धिमानी से नहीं पूछता'' (सभोपदेशक 7:10)। ऐसा करने से हम अपने समय को नष्ट करते हैं। मान लीजिये यदि पौलूस भी इसी तरह से अपनी पिछली गलतियों के विषय में सोचता रहता तो इससे उसकी कितनी अधिक हानि होती, परन्तु उसने ऐसा नहीं होने दिया तथा अपने आप को प्रभु के लिये उसने अधिक से अधिक इस्तेमाल किया और वह कहता है ''कि जो बातें पीछे रह गई हैं मैं उनको भूल कर, आगे की बातों की ओर बढ़ता हुआ निशाने की और दौड़ा चला जाता हूं।''

(5) **आर्थिक रूप से स्थिति सही होने का मलहम**- अधिकांश लोगों की यह इच्छा होती है कि वे आत्मनिर्भर हों, मुसीबत पड़ने पर या बुढ़ापा आने पर वे अपनी देखभाल कर सकें। वह व्यक्ति बुद्धिमान होता है जो अपनी आर्थिक स्थिति को सही रखता है ताकि भविष्य में विधवा होने या बूढ़ापा आने पर वह कठिनाई का सामना कर सके। यह परमेश्वर द्वारा दिया गया एक सिद्धान्त है (नीतिवचन 6:6-8)। ऐसा करने से भविष्य में एक विशेष प्रकार की सुरक्षा तथा शांति का अनुभव होता है। ''टिड्डों'' की तरह जीवन निर्वाह करना अच्छा नहीं है क्योंकि बूढ़े होने पर वे ''चीटियों'' पर निर्भर रहते हैं कि वे उन्हें भोजन उपलब्ध करायें। अपनी योग्यता के अनुसार हमें अपने भविष्य के लिये अच्छा प्रबन्ध करना चाहिये। नाओमी ने आत्मनिर्भरता का यह कार्य करके दिखलाया था। मोआब को छोड़ते समय उसने अपनी बहु से कोई सहायता नहीं मांगी। परन्तु अनेकों बार दूसरों पर आश्रित होना भी आवश्यक हो जाता है तथा परमेश्वर ने ज़रूरतमन्द विधवाओं की सहायता के लिये भी व्यवस्था की है। परमेश्वर का वचन यह सिखाता है कि एक विधवा के परिवार के लोगों को उसकी सहायता करनी चाहिये। (1 तीमुथियुस 5:4-16)। रूत ने अपनी इच्छा से ऐसा किया था। प्रत्येक बच्चे की यह जिम्मेदारी होती है कि वह अपने माता-पिता की देखभाल करे, तथा जो मसीही इस कर्त्तव्य से दूर भागना चाहता हैं वह यह चाहता है कि कलीसिया या कोई और उनकी देशभाल करे। ऐसा करने से वह परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन करता है। यदि किसी विधवा के पास बच्चे नहीं है या उसका परिवार उसकी सहायता करने में असमर्थ हो तब कलीसिया को उसकी सहायता करनी चाहिये। (प्रेरितों 6:1;1 तीमुथियुस 5:16)।

(6) **आशा का मलहम**- दुखी आत्मा को आशा से बहुत राहत मिलती है। एक ऐसी आशा से जो हमें यह बताती है कि हम अपने उन प्रिय सम्बन्धियों से एक दिन अवश्य मिलेंगे जो प्रभु में मर चुके हैं, अपने उद्धारकर्ता यीशु से मिलेंगे तथा परमेश्वर के साथ अनन्तकाल तक रहेंगे' और वह उनकी आंखों से सब आंसू पोंछ डालेगा; और इसके बाद मृत्यु न रहेगी, और न शोक, न विलाप, न पीड़ा रहेगी: पहिली बातें जाती रहीं'' (प्रकाशितवाक्य 21:4)।

III नाओमी एक सास के रूप में-

जब तक मनुष्य जाति इस पृथ्वी पर जीवित है तब तक स्त्रियां सास बनती रहेंगी, और वह स्त्री बुद्धिमान है जिसे एक अच्छी सास के रूप में याद किया जाता है। रूत तथा उसके बीच बहु तथा सास के रूप में एक बहुत ही सुन्दर संबन्ध था। ज़रा इस रिश्ते के विषय में यह सोचिये कि इन दोनों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा: उन दोनों की आयु में बड़ा फ़रक था, उनकी जाति, धर्म तथा रीति-रिवाज़ इत्यादि भी भिन्न थे और सबसे बड़ी बात यह थी कि गरीबी के दुखः को झेलना । इतना सब होते हुये भी उनके विचारों में फ़रक नहीं पड़ा। एक

अच्छी सास अपने अच्छे व्यवहार से एक बहु को अच्छा बना सकती है। परन्तु इसके लिये उन दोनों को एक साथ मिलकर कार्य करना आवश्यक है।

(1) **उसके धार्मिक जीवन के कारण रूत सच्चे परमेश्वर की ओर फिरी**- नाओमी मोआब में एक अजनबी थी तथा एक ऐसे परमेश्वर तथा धर्म को मानती थी जो मोआबी लोगों को स्वीकार्य नहीं था, परन्तु उसका विश्वास अपने धर्म में बहुत ही दृढ़ था। रूत इस बात को जानती थी, और इसी लिये उसने कहा कि "तेरा परमेश्वर मेरा परमेश्वर होगा"। कई बार हमारे लिये यह कठिन हो जाता है कि हम अपने परिवार के लोगों को परमेश्वर की बातों से प्रभावित कर सकें। लूत ऐसा नहीं कर सका था (उत्पत्ति 19:14), ऐली भी ऐसा नहीं कर सका था। (1 शमुएल 2:12)। परन्तु नाओमी में यह एक सुन्दर योग्यता थी कि वह अपने अच्छे धार्मिक जीवन से दूसरों को प्रभावित कर सकती थी।

(2) **नाओमी स्वार्थी नहीं थी**- सबसे पहिले वह अपनी बहु के विषय में सोचती थी, और उसका ख्याल रखती थी (रूत 1:8-13) दोनों ही एक दूसरे का ध्यान रखती थीं। इस पूरी कहानी में हम इस सुन्दर बात को बार-बार देखते हैं। स्वार्थ अनेक पापों को जन्म देता है परन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि निःस्वार्थता से मनुष्य में कई प्रकार के अच्छे गुण दिखाई देते हैं। एक दूसरे के साथ परिवार में अच्छा बर्ताव करने में शांति का वातावरण कायम रहता है। ऐसे कौन से विचार हैं जो एक सास अपने परिवार की शांति को स्थिर रखने के लिये सोच सकती है? मान लीजिये अपने मन में शायद वह इस तरह से सोचे "क्या मैं उतना सहन करती हूं जितना मैं चाहती थी कि मेरी सास करे"? "मैं अपनी बहु की बहुत ही प्रशंसा करती हूं क्योंकि वह मेरे लड़के की जिसे मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया है बहुत अच्छी तरह से देखभाल करती है।" यदि प्रत्येक सास का ऐसा ही व्यवहार हो तो यह कितनी अच्छी और सुन्दर बात होगी।

(3) **नाओमी ने रूत के विवाह के लिये बहुत कार्य किया था**- नाओमी ने उससे कहा "हे मेरी बेटी, क्या मैं तेरे लिये ठांव न ढूंढूं कि तेरा भला हो?" (रूत 3:1)। उस समय के रिवाज़ के अनुसार अधिकतर रिश्ते माता-पिता द्वारा तय किये जाते थे, तथा नाओमी विवाह के विषय में परमेश्वर के नियमों को जानती थी।

(4) **वह बुद्धिमान थी तथा मनुष्य के स्वभाव को समझती थी क्योंकि उसने यह कहा था कि बोअज़ की रूत के प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी** (रूत 3:18)। वह मनुष्य बुद्धिमान होता है जो दूसरे के स्वभाव की प्रतिक्रिया को पहिले ही से समझ लेता है, क्योंकि लोगों के बीच में सही तरह से रहने के लिये यह एक ऐसा विशेष गुण है जो हममें होना चाहिये।

(5) **अपनी बहु के लिये उसने परमेश्वर से आशिष मांगी थी** (रूत 1:8)। नाओमी के मन में ईर्ष्या की भावना कभी नहीं आई तथा रूत को वह 'मेरी बेटी' कहकर पुकारती थी। "क्योंकि प्रेम मृत्यु के तुल्य सामर्थी है और ईर्ष्या कब्र के समान निर्दयी है" (श्रेष्टगीत 8:6)।

IV नाओमी बूढ़ी स्त्री के रूप में-

इस कहानी का अंतिम दृश्य इस प्रकार से है जैसे एक तूफ़ानी रात के बाद फिर से सूर्य का उदय होना। यह इस प्रकार से हुआ था जैसे कि एक कहानी के अन्त में अक्सर कहा जाता है कि "इसके बाद वे हमेशा के लिये खुशी से रहने लगे"। नाओमी को अपने आगे के जीवन में क्या-क्या आशीषें प्राप्त हुई? आइये देखें-

(1) वह नानी बनी तथा अपने पोते ओबेद पर एक अच्छा प्रभाव डालने के लिये उसे अवसर मिला। परमेश्वर का भय मानने वाली नानी-दादी का प्रभाव अपने पोतों-पोतियों पर बहुत अच्छा पड़ता है। इसके विषय में हम 2 तीमुथियुस 1:5) में पढ़ते है अर्थात तीमुथियुस ने अपनी नानी से शिक्षा पाई थी। बचपन की कुछ सुन्दर यादगारियां अक्सर नानी-दादी से जुड़ी हुई होती है। बूढ़ों की शोभा उनके नाती-पोते हैं (नीतिवचन 17:6)। वास्तव में नाओमी का जीवन खुशियों से भर गया था। उसने खुशी से गीत गाये तथा उसके पड़ोसियों ने कहा- "नाओमी के एक बेटा उत्पन्न हुआ है"। "यह बेटा तेरे जी में जी ले आने वाला और तेरे बुढ़ापे में पालनेवाला हो।" इस दुखी विधवा के अपने पुत्र तो मर चुके थे परन्तु ओबेद के कारण उसके जीवन में फिर से खुशियां लौट आई थीं।

(2) अपने मित्रों के साथ भी उसका अच्छा मेलजोल था-ओबेद के जन्म के समय सब पड़ोसी उसके यहां इकट्ठे हो गये थे और यह इस बात को दिखाता है कि सब के साथ उसके अच्छे सम्बन्ध थे, तथा उन्होंने उस बच्चे का नाम भी स्वयं रखा था (रूत 4:17)।

(3) नाओमी का जीवन अब फिर से खुशियों से भर गया था अर्थात अब वह बहुत प्रसन्न थी-सारी कड़वाहट अब दूर हो चुकी थी, क्योंकि उसने अपना जीवन दूसरों की सेवा में लगा दिया था। अपने पोते का अब उसे पालन-पोषण करना था तथा ऐसा करना उसके लिये एक बहुत ही प्रसन्नता की बात थी। यदि वह अपने दुखों को लेकर रोती रहती तो उसका जीवन कड़वाहट से भरा रहता तथा वह सदा दुखी रहती। उसने अपने समय का सदुपयोग किया तथा वह सदा पवित्रता के मार्ग पर चलती रही। "पक्के बाल शोभायमान मुकुट ठहरते हैं" वे धर्म के मार्ग पर चलने से प्राप्त होते हैं। (नीति वचन 16:31)।

हन्ना (Hannah)

एल्काना की दो पत्नियां थी, हन्ना तथा पनिन्ना। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनके यहां झगड़े तथा दुख का वातावरण होना स्वाभाविक था।

''पनिन्ना के तो बालक हुए, परन्तु हन्ना के कोई बालक न हुआ।'' ''पनिन्ना हन्ना को चिढ़ाती रहती थी'' तथा ''उसे अत्यंत चिढ़ाकर कुढ़ाती रहती थी।'' प्रत्येक वर्ष की तरह अपने नगर से सेनाओं के यहोवा को दण्डवत् करने और मेलबलि चढ़ाने के लिये शीलोह में जाते हुए हन्ना चुपके से परमेश्वर के मन्दिर में गई तथा अपने पूरे मन से उसने यहोवा को अपना सारा दुख बताया, वह निरन्तर परमेश्वर से प्रार्थना करती रही तथा उससे एक पुत्र मांगा और मन्नत मानी और कहा कि, ''मैं उसे उसके जीवन भर के लिये यहोवा को अपर्ण करूंगी।'' उसकी प्रार्थना का उत्तर यहोवा ने दिया और उसके पास एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम उसने शमुएल रखा। जब उसने उसका दूध छुड़ाया तब वह उसको शिलोह में यहोवा के भवन में लग गई ताकि यहोवा के प्रति अपनी की गई प्रतिज्ञा को पूरा करे। यहां हम उसको यहोवा का भय माननेवाली माता के रूप में देखते हैं। इसके पश्चात उसके विषय में हम और नहीं पढ़ते, परन्तु उसका विश्वास तथा प्रभाव शमुएल के सुन्दर जीवन में समा चुका था तथा दूसरों के लिये यह एक प्रेरणा का स्रोत था। इसके विषय में आप 1 शमुएल 1:1-2; 2:21 में पढ़ सकते है।

I एक गहिरे दुख के कारण वह परमेश्वर के और निकट आई-

(1) जब दुख सहने से बाहर हो जाता है, तब हम परमेश्वर के विषय में सोचते हैं। पनिन्ना द्वारा बार-बार चिढ़ाये जाने पर हन्ना ने परमेश्वर के पास जाने की आवश्यकता को अधिक समझा। योना नबी ने एक बार कहा था कि: ''जब मैं मूर्छा खाने लगा, तब मैंने यहोवा को स्मरण किया।'' प्रत्येक व्यक्ति को एकान्त में अपने सृष्टिकर्ता के साथ कुछ समय प्रार्थना में अवश्य बिताना चाहिए। जब यीशु के सम्मुख कठिन परीक्षा आई तब उसने कहा था '' मेरा मन बहुत उदास है, यहां तक कि मैं मरने पर हूं।'' फिर वह गतसमनी नाम स्थान में अकेले गया ताकि अपने पूरे मन से अपने पिता से प्रार्थना करे जिस प्रकार से हन्ना ने किया था। इस संसार

में अनेकों ऐसी बातें होती है जो हमारे दिल को दुखाती हैं। कई बार हम अय्यूब की तरह इस प्रकार से सोचते हैं, ''मेरा मन इस जीवन से बहुत उदास है।'' प्रत्येक व्यक्ति के सामने कई बार एक ऐसा समय भी आता है जब उसको शांति और दिलासा देने के लिये कोई नहीं होता, और तब यह एक ऐसा समय होता है कि वह परमेश्वर की नज़दीकी में और अधिक आना चाहता है।

(2) **उदास अथवा दुखी होना एक आशिष का कारण भी हो सकता है-** जब हमारा कोई सहारा नहीं होता तो, यह जानते हुये कि अब परमेश्वर ही हमारा सहारा है, हम उसकी ओर पूरी तरह से झुक जाते हैं और आत्मिक शक्ति प्राप्त करते हैं। पौलूस ने कहा था ''इस कारण मैं मसीह के लिये निर्बलताओं, निन्दाओं में, और दरिद्रता में और उपद्रवों में, और संकटों में प्रसन्न हूं; क्योंकि जब मैं निर्बल होता हूं तब बलवन्त होता हूं (2 कुरन्थियों 12:10)। दाऊद भी इस सिद्धान्त को समझता था और वह कहता है: ''मुझे जो दु:ख हुआ वह मेरे लिये भला ही हुआ है, जिससे मैं तेरी विधियों को सीख सकूं। (भजन 119:71)। जो लोग सहायता के लिये उसके पास नहीं आते वे अक्सर उसे भूल जाते हैं: ''तेरे सुख के समय मैंने तुझको चिताया था, परन्तु तूने कहा कि मैं तेरी न सुनूंगी।'' (यिर्मयाह 22:21)। बाइबल के एक पद में दाऊद ने मन को छू लेने वाली बात कही थी क्योंकि परमेश्वर में उसका विश्वास बहुत स्थिर था: ''मैंने दहिनी ओर देखा, परन्तु कोई मुझे नहीं देखता है। मेरे लिये शरण कहीं नहीं रही, न मुझकों कोई पूछता है। ये यहोवा, मैंने तेरी दोहाई दी है; मैंने कहा तू मेरा शरणस्थान है, मेरे जीते जी तू मेरा भाग है। (भजन 142:4,5)।

मुस्कुराना तथा आंसू बहाना जीवन के अंग है तथा जीवन में इन दोनों ही का होना आवश्यक है। दीवार में लगी हुई एक घड़ी की कहानी में कहा गया था कि यह पुरानी घड़ी अपने भारी पेन्डूलम के साथ कई वर्षो तक सही तरह से कार्य करती रही। परन्तु एक व्यक्ति ने उस घड़ी के विषय में एक बार कहा था कि ''भारी पेन्डूलम के साथ इस घड़ी को बहुत परिश्रम करना पड़ता होगा'' उसने वो भारी पेन्डूलम उसमें से निकाल दिया और वो निकालते ही उस घड़ी ने कार्य करना बन्द कर दिया क्योंकि वास्तव में उसका भार ही उसको चलाने के लिये अति-आवश्यक था। उस भार के बिना वो चल नहीं सकती थी।

(3) **हन्ना का दुख तथा बच्चे पाने की इच्छा उसके लिये बाद में एक खुशी का कारण बने-** केवल वही लोग जिन्होंने अपने जीवन में दुख का अनुभव किया है जीवन की खुशियों का असली अर्थ समझ सकते हैं। दुख का सामना करने

के बाद ही खुशी मिलती है। जब आप खुश हों तो अपने मन में झांककर देखें और तब आप यह जानेंगे कि जिस बात से आपको दुख हुआ था आज उसी के द्वारा आपको खुशी मिल रही है।

II हन्ना का प्रार्थना में बहुत विश्वास था

(1) प्रार्थना एक आज्ञा तो है परन्तु साथ ही हमारा एक विशेषाधिकार भी है। हन्ना प्रार्थना द्वारा परमेश्वर से बातचीत करना चाहती थी। परन्तु प्रार्थना केवल एक विशेषाधिकार ही नहीं बल्कि एक आज्ञा भी है जिसे मानना बहुत आवश्यक है। ''निरन्तर प्रार्थना में लगे रहो'' (1 थिस्स 5:17)।'' इसलिये आओ, हम अनुग्रह के सिंहासन के निकट हियाव बान्धकर चलें, कि हम पर दया हो, और वह अनुग्रह पाएं, जो आवश्यकता के समय हमारी सहायता करें'' (इब्रानियों 4:16)। तौभी अनेक मसीही ऐसे होते हैं जो कई दिनों तथा कई महिनों तक परमेश्वर से प्रार्थना के द्वारा बातचीत नहीं करते। परमेश्वर की आज्ञा मानना जितना आवश्यक है उतना ही प्रार्थना करना भी आवश्यक है।

(2) **हन्ना ने एकान्त में प्रार्थना करने के महत्व को सीख लिया था**– ''और वह मन में व्याकुल होकर यहोवा से प्रार्थना करने और बिलख बिलखकर रोने लगी। हन्ना मन ही मन कह रही थी; उसके होंठ तो हिलते थे परन्तु उसका शब्द न सुन पड़ता था–'' (1 शमूएल 1:10-13)। अनेक स्थितियों में एकान्त में प्रार्थना करना सम्भव हो सकता है जैसे चुपचाप अपने मन में। जिस प्रकार से हन्ना ने प्रार्थना की थी, वैसे ही परमेश्वर के बच्चे भी उससे प्रार्थना कर सकते हैं तथा किसी भी समय उससे सहायता मांग सकते हैं। हम कोई भी कार्य क्यों न कर रहे हो, तब भी अपने मन में उससे प्रार्थना कर सकते हैं। जब हम एक बड़ी भीड़ के बीच में खड़े हों, तब भी हमारी आत्मा परमेश्वर से बात-चीत कर सकती है। वास्तव में खामोशी के साथ की जाने वाली प्रार्थना एक सच्ची प्रार्थना होती है। ऐसी प्रार्थना मनुष्यों को दिखाने के लिये नहीं होती और न ही इसमें कोई दिखावा होता है और जिन लोगों का ध्यान सदा परमेश्वर की ओर होता है उनके लिये ऐसी प्रार्थना करना एक स्वाभाविक बात होती है।

(3) **जिस प्रकार की प्रार्थना परमेश्वर को स्वीकार्य होती हैं,** उसमें कुछ शर्तें शामिल हैं। मान लीजिये यदि परमेश्वर लोगों की प्रार्थना को नहीं सुनता तब इसका अर्थ यह होता कि उसने व्यर्थ में लोगों को पृथ्वी पर बना कर छोड़ दिया है ताकि वे अपनी समस्याओं को लेकर इधर-उधर व्यर्थ में घूमते रहें। परन्तु ऐसी

बात नहीं है, जो लोग स्वीकार्य प्रार्थना की शर्तों को मानते है, परमेश्वर उनकी प्रार्थनाओं को अवश्य सुनता हैं। यीशु ने शिक्षा दी थी कि स्वर्गीय पिता अपने बच्चों की प्रार्थना सुनकर उन्हें आशीष देता है (मत्ती 7:7-11)। परन्तु प्रभु हर-एक की प्रार्थना को नहीं सुनता। **यदि हम चाहते है कि परमेश्वर हमारी प्रार्थना को सुने तो हममें निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है।**

(1) हमें परमेश्वर का एक ऐसा बच्चा होना चाहिए जो सदा उसमें बना रहे। "यदि तुम मुझमें बने रहो, और मेरी बातें तुममें बनी रहें तो जो चाहों मांगो वह तुम्हारें लिये हो जाएगा। (यूहन्ना 15:7)।"

(2) हमें परमेश्वर की आज्ञाओं को मानना चाहिए" जो अपना कान व्यवस्था सुनने से फेर लेता है, उसकी प्रार्थना घृणित ठहरती है" (नीतिवचन 28:9)। "हम जानते हैं कि परमेश्वर पापियों की नहीं सुनता परन्तु यदि कोई परमेश्वर का भक्त हो, और उसकी इच्छा पर चलता है, तो वह उसकी सुनता है" (यूहन्ना 9:31)।

(3) हमें यीशू के नाम में प्रार्थना करनी चाहिए। (यूहन्ना 14:13,14), तथा हमारी प्रार्थना परमेश्वर की इच्छा अनुसार होनी चाहिए (1 यूहन्ना 5:14)।

(4) हमें विश्वास से प्रार्थना करनी चाहिए। "पर विश्वास से मांगे, और कुछ सन्देह न करें" (याकूब 1:6)।

(5) हमारा मांगने का उद्देश्य उचित होना चाहिए। "तुम मांगते हो और पाते नहीं, इसलिए कि बुरी इच्छा से मांगते हो, ताकि अपने भोग-विलास में उड़ा दो" (याकूब 4:3)।

(6) हमें दूसरों को क्षमा करने वाला होना चाहिए। "और यदि तुम क्षमा न करो तो तुम्हारा पिता जो स्वर्ग में है, तुम्हारा अपराध क्षमा न करेगा" (मरकुस 11:26)।

(7) प्रार्थना द्वारा प्राप्त हुई शांति। हन्ना ने कहा: "मैंने अपने मन की बात खोलकर यहोवा से कही है" तब वह "चली गई और खाना खाया, और उसका मुंह फिर उदास न रहा।" इस बात से कितनी शांति मिलती है कि हमारा एक महायाजक है, जो हमारी निर्बलताओं में हमारी सहायता करता है: "और अपनी सारी चिन्ता उसी पर डाल दो, क्योंकि उसको तुम्हारा ध्यान है।" (1 पतरस 5:7)।

III हन्ना ने परमेश्वर के प्रति किये हुये अपने वायदें को निभाया।

(1) बार-बार उसने मन्नत मानी "और उसने यह मन्नत मानी, कि सेनाओं के यहोवा, यदि तू अपनी दासी के दु:ख पर दृष्टि करे, और मेरी सुधि ले, और अपनी दासी को पुत्र दे, तो मैं उसे उसके जीवन भर के लिए यहोवा को अर्पण करूंगी"

(1 शमूएल 1:11)। शमूएल के जन्म के पश्चात हन्ना बड़ी ही आसानी से यह भी सोच सकती थी कि मैं अपने एकलौते पुत्र को देकर इतना बड़ा बलिदान क्यूं करूं, यदि मन्नत मानी है तो कोई बात नहीं। केवल एक आत्मिक दृण निश्चय के कारण ही वह अपने पुत्र को शिलों में यहोवा के भवन में ले गई ताकि वह वहां प्रभु की सेवा कर सके। जिस पुत्र को उसने कई प्रार्थनााअें के पश्चात पाया था अब उसी पुत्र से ही उसने अपने आपको अलग कर लिया था।

(2) अनेकों बार वायदे किये तो जाते हैं परन्तु निभाये नहीं जाते। अपने कष्टों तथा कठिन समयों में अनेक लोगों ने परमेश्वर से बहुत से वायदे किये थे परन्तु कष्ट तथा कठिन समय समाप्त होने के पश्चात वे अपने वायदों को तुरन्त भूल गये। अनेक मसीही लोग जब बीमार पड़ जाते हैं तो इस प्रकार से कहते हैं: "जब मैं अच्छा हो जाऊंगा, तो मैं प्रभु के लिए बहुत कार्य करूंगा।" क्या वे वास्तव में ऐसा करते हैं? जिनके यहां बच्चें नहीं होते वे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हमारें परिवार में बच्चे का जन्म हो, परमेश्वर जब उन्हें बच्चे से आशिषित कर देता है तो वे उसी बच्चे का बहाना बनाकर यह कहते हैं कि कहीं बच्चे को ठण्ड न लग जाये इसलिए हम सन्डे को उपासना में नहीं आ सके अर्थात् जिस प्रभु ने उनकी प्रार्थना को सुना था उसी के प्रति वे अब धन्यवादी नहीं है।

IV जब हन्ना पर दोष लगाया गया था तो उसका व्यवहार कैसा था-

जब हन्ना यहोवा के सामने प्रार्थना कर रही थी, तब एली उसके मुंह की ओर ताक रहा था, वह मन ही मन कह रही थी, उसके होंठ तो हिलते थे परन्तु उसका शब्द न सुन पड़ता था, इसलिये एली ने समझा कि वह नशे में है। बिना सोचे समझे एली ने बहुत ही जल्दबाज़ी में ऐसा किया था। डांट-फटकार उचित तो होती हैं परन्तु ऐसा करते समय हमें बड़ी ही होशियारी बरतनी चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि हम व्यर्थ में किसी पर दोष लगाने लगें, दोष लगाते समय हमें अपनी स्वयम की कमज़ोरियों को देखना चाहिए (मत्ती 7:1-5)। जबकि हन्ना पर एक अनुचित दोष लगाया गया था, परन्तु तौभी उसका व्यवहार बहुत अच्छा तथा शांतिपूर्ण था। बड़े ही अच्छे स्वभाव तथा आदर के साथ उसने उत्तर दिया, ''नहीं, हे मेरे प्रभु मैं तो दुखिया हूं, मैंने न तो दाखमधु पिया है और न मदिरा, मैंने अपने मन की बात खोलकर यहोवा से कहीं है।''

एली ने बहुत जल्दबाज़ी में ऐसी बात कही थी। जब उसे यह अहसास हुआ कि उसने अनुचित अनुमान लगाया है तब उसने अपनी गल्ती को माना और यह उसके

लिये एक आशिष का कारण था। अधिकतर लोगों में अपनी गल्ती को मानने का साहस नहीं होता, यदि उन्हें कोई सबूत भी दिखा दिया जाये कि यह गल्ती उन्होंने की है, फिर भी वे इसे स्वीकार नहीं करते। एक सही व्यक्ति कभी भी अपनी गल्ती को मानने से इन्कार नहीं करेगा। अपनी गलती को स्वीकार न करना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

V परमेश्वर का भय मानने वाले माता-पिता की शक्ति-

(1) **हन्ना को शमुएल की माता के रूप में अधिकतर याद किया जाता है-** ये ही शमूएल बड़ा होकर एक याजक, भविष्यद्वक्ता तथा इस्राएलियों का एक अन्तिम तथा महान न्यायी हुआ। इस्राएल जाति को संगठित करने की उसके ऊपर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी। उसके समय में एक परिवर्तन यह हुआ था कि न्यायियों के स्थान पर राजाओं को नियुक्त किया गया था तथा शाऊल को पहिला राजा बनाया गया था। वह लोगों को परमेश्वर के पास वापस लाया। उसके सारे जीवन का अच्छा व्यवहार उसके बचपन से ही देखने को मिलता है, और ''तब यहोवा आ खड़ा हुआ, और पहिले की नाई पुकारा, शमुएल! शमूएल! शमूएल ने कहा, कह क्योंकि तेरा दास सुन रहा है।'' (1 शमूएल 3:10)। यद्यपि शिलों में जाने के पश्चात वह कभी-कभी अपनी माता से मिलता था, तौभी परमेश्वर के प्रति अपनी माता की सच्ची भक्ति को वह भली-भांति जानता था। अवश्य ही ऐसी माता की यादगारियां उसके साथ सदा रही होंगी तथा कठिन समयों में उसे इन यादगारियों से सहायता भी मिलती होगी।

(2) **परमेश्वर के साथ एक साथी बनने की उसे अत्यन्त प्रसन्ता थी।** उसने कभी भी पन्निना का बुरा नहीं चाहा था और न ही उसके दिल में उससे बदला लेने की भावना थी तथा अपने स्वार्थ के लिये उसने परमेश्वर से पुत्र नहीं मांगा था। वह एक ऐसे पुत्र को इस संसार में लाना चाहती थी जो अपना सारा जीवन प्रभु का कार्य करने में लगायेगा। इस बात से उसे बहुत ही प्रसन्नता थी और ये ही एक कारण था कि शिलोह में अपने पुत्र को मन्दिर में छोड़ने के पश्चात उसने परमेश्वर के लिये धन्यवाद का गीत गाया (1 शमूएल 2:1-10)। अब उसका जीवन केवल इस उद्देश्य के लिये था कि वह शमूएल के उन बड़े कार्यों को देखे जो वह परमेश्वर के लिये करेगा। आज बहुत सी ऐसी माताएं है जिन्होंने अपने बच्चों को प्रभु के विषय में सिखाया था तथा उनका पालन-पोषण भी इसी प्रकार से किया था और आज उनके बच्चे बड़े होकर उसके राज्य (कलीसिया) के लिये कार्य कर

रहे हैं। किसी भी माता के लिये इससे बड़कर खुशी की और क्या बात होगी कि उसका बेटा प्रभु के लिये कार्य करे।

(3) **हन्ना अपने जीवन में पहिला दर्जा आत्मिक बातों को देती थी-** आत्मिक बातों को महत्व देना उसके जीवन में प्रथम बात थी, और अपने पुत्र के लिये भी वह ये ही चाहती थी कि वो भी अपने जीवन में प्रभु को पहिला स्थान दे। तौभी आज कितनी ही माताएं ऐसी है जिन्हें अपने बच्चों की आत्मिक स्थिति की कोई चिन्ता नहीं हैं तथा वे अपने बच्चों को बाइबल अध्ययन इसलिये नहीं करातीं और सन्डे स्कूल उन्हें इसलिये नहीं ले जाती क्योंकि इसके लिये उन्हें अपनी थोड़ी सी नींद का त्याग करना पड़ेगा। इसके विषय में और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है।

(4) **माताओं का प्रभाव अपने बच्चों पर भले या बुरे किसी भी रूप में पड़ सकता है-** बच्चे की सबसे पहली टीचर उसकी माता होती है तथा उसका प्रभाव भी अपने बच्चों पर बहुत अधिक होता है। यह भी कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों वह बढ़ता है, उसके छोटे से संसार की विशेष केन्द्र उसकी माता ही होती है।

एक बार एक लड़का कुछ समय के लिये अपने मित्र के यहां जाकर रहना चाहता था। अचानक उसके मुंह से यह शब्द निकले: ''मुझे मालूम नहीं कि मैं जाऊं या न जाऊं? क्योंकि मैं अभी से ही अपनी माता के विषय में सोच रहा हूं।'' यह बात कतई सत्य है कि एक बच्चे का मन अपनी मां से इस प्रकार से जुड़ा हुआ होता है कि उसके पूरे जीवन पर उसकी माता के प्रभाव की छाप होती है। कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों की माताएं भी इसी लिये प्रसिद्ध हुई क्योंकि उन्होंने अपने बच्चों पर बहुत विशेष प्रभाव छोड़ा था। अपनी मृत्यु से पूर्व इब्राहिम लिंकन की मां ने उससे कहा था अपनी बहन के प्रति दयावन्त होना, अपने पिता की आज्ञा को मानना, और परमेश्वर से सदा प्रेम रखना।'' इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि लिंकन ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षो में यह बात कही थी: ''कि आज मैं जो कुछ भी हूं इसका सारा श्रेय मेरी मां को जाता है।'' तीमुथियुस की माता तथा नानी के चरित्र को पढ़ने के द्वारा हम बड़ी ही सरलता से उसके अच्छे जीवन तथा कार्य को समझ सकते हैं (2 तीमुथियूस 1:5)।

(5) जिन बच्चों के माता-पिता परमेश्वर का भय मानने वाले नहीं हैं, उनके पास आत्मिक रूप से अच्छे सुअवसर भी नहीं होते। वे बच्चे अपने माता-पिता के अच्छे आत्मिक प्रभाव से वंचित रह जाते हैं। उड़ाऊ पुत्र जो अपने घर को छोड़कर

चला गया था तथा पाप में बिल्कुल डूब चुका था जब अपने बारे में सोचता है तो उसका ध्यान सीधा अपने घर तथा पिता की ओर जाता है और तब उसके जीवन में एक नया मोड़ आता है तथा वह पश्चाताप करके वापस घर लौटना चाहता है अर्थात वह अपने घर के बारे में सोचता है। जब आपका बच्चा किसी परीक्षा की घड़ी में पड़ता है तो क्या उसका ध्यान आपकी तरफ इस प्रकार से तो नहीं जाता कि मेरी माता हमेशा दुनियावी बातों में ही अपना समय व्यतीती करती है तथा उसे मेरी बिल्कुल चिन्ता नहीं है। क्या आपका बच्चा एक ऐसी माता के विषय में सोचता है, जो उसे सदा धार्मिकता के मार्ग पर चलने के लिये उसकी अगुवाई करे। एक मसीही पिता ने एक बार कहा था '' कि मैं उन मसीही माता-पिता के लिये हमेशा प्रार्थना करता हूं जो अपनी छोटी लड़कियों का पालन-पोषण कर रहे हैं क्योंकि ये ही लड़कियां बड़ी होकर मेरे बेटों की पत्नियां बनेंगी क्योंकि मैं जानता हूं कि जिन लड़कियों से वे शादी करेंगे वे लड़कियां उन्हें स्वर्ग में जाने के लिये उनकी सहायता करेंगी।'' यह एक कितना अच्छा विचार है। यदि प्रत्येक मसीही माता-पिता ऐसा ही विचार अपने अन्दर रखें तो क्यों उनके बेटे बेटियां सही मार्ग से भटकेंगे?

यदि किसी भी बच्चे को अच्छा खाना मिलता हो, अच्छे कपड़े मिलते हो तथा रहने के लिये अच्छा घर हो परन्तु उसमें अच्छे संस्कार न हो तो यह बड़े ही दुख की बात होगी। ऐसी कौन-सी नेक बातें हैं जो हमें अपने बच्चों को सिखानी चाहिये ताकि वे अच्छे और नेक इन्सान बन सकें?

ज़रा कुछ ऐसे वायदों के विषय में सोचिये जो लोग प्रभु से तब करते हैं जब उन पर मुसीबतों का पहाड़ टूटने लगता है?

अबीगैल (Abigail)

यदि आपको ऐबीगेल में स्वर्ग में मिलने का अवसर मिले, तो क्या आप उससे बुद्धिमानी से बात कर सकेंगे? वह बाइबल की एक बहुत ही प्रशंसनीय तथा सुन्दर स्त्री है, और दाऊद के जीवन में उसका एक बहुत ही विशेष स्थान था। इस कहानी को हम 1 शमूएल 25 अध्याय में पढ़ते हैं। जब शाऊल इस्राएल का राजा था, तब उसने परमेश्वर के विरूद्ध पाप किया तथा परमेश्वर ने उससे उसका राज्य लेकर उसके स्थान पर दाऊद को राजा बना दिया। वह दाऊद से ईर्ष्या करने लगा तथा उसका सारा जीवन इस बात में बीत गया कि वह किस प्रकार से दाऊद के प्राण ले सके। जिस प्रकार से एक शिकारी अपने शिकार की तलाश निरन्तर करता रहता है उसी तरह से वह भी दाऊद का पीछा करने लगा ताकि अवसर देखकर उसकी जान ले सके।

इसी समय में दाऊद ने छः सौ पुरूषों को अपने साथ लिया तथा परान के जंगल में जाकर गड़रियों से मित्रता कर ली जो एक बहुत धनी पुरूष नबाल के लिये कार्य करते थे। दाऊद ने बाद में अपने दस पुरूषों को नाबाल के पास भेजा ताकि वे उससे भोजन मांगकर ला सकें। नाबाल ने भोजन देने से साफ़ इंकार कर दिया। दाऊद को यह बात बहुत अपमानजनक लगी तथा वह इतना क्रोधित हुआ कि उसने नाबाल को तथा उसके परिवार के प्रत्येक पुरूष सदस्य को समाप्त करने की ठान ली। दाऊद ने अपने साथ चार सौ पुरूष लिये तथा नाबाल के घर की ओर चल पड़ा, ताकि उससे अपने अपमान का बदला ले सके। जब नाबाल की पत्नी को इस घटना का पता चला तो उसने ढेर सारा खाना लिया तथा दाऊद को ढूंढती हुई जंगल की ओर चल पड़ी ताकि उसे हत्या करने से रोक सके।

अब जंगल से दो काफ़िले गुज़र रहे हैं-एक काफ़िला क्रोध से भरा हुआ है तथा दूसरा शांति के लिये प्रयत्नशील है। जब अबीगैल दाऊद से मिली तो उसने झटपट उससे बात करनी चाही। इसका परिणाम क्या हुआ? उसके नम्र स्वभाव ने दाऊद के क्रोध को ठंडा कर दिया, और वह अपना इरादा बदलकर वापस जंगल की ओर चला गया। ऐसा करने के लिये किस प्रकार के शब्दों की आवश्यकता थी? कैसे चरित्र की आवश्यकता थी? नाबाल तथा दाऊद के प्रति उसका जिस प्रकार का व्यवहार था उससे हमें आज बहुत से अच्छे पाठ सीखने को मिलते हैं।

I एक ऐसी स्त्री जिसके पास सब कुछ था-

1. अबीगैल के विषय में ज़रा कल्पना कीजिये-

अबीगैल का विवाह एक बहुत ही धनी पुरूष से हुआ था। यदि भौतिक रूप से देखा जाये तो उसे किसी भी वस्तु की घटी नहीं थी। वह 'समझदार' स्त्री थी, अर्थात वह बुद्धिमान थी, किसी भी स्थिति का सामना करने तथा उसको सही रूप से काबू करने में वह निपुण थी। यद्यपि परमेश्वर ने अनेक शब्दों में हमें उसने विषय में नहीं बताया है तौभी उसकी हम इस विशेषता को देखते हैं कि उसके किस प्रकार से बिगड़ती हुई स्थिति को संभाला। वह ''रूपवती'' थी और सुन्दर रूप एक आशिष का कारण भी हो सकता है। एक सुन्दर तथा बुद्धिमान स्त्री होने के साथ-साथ उसका परमेश्वर पर बहुत दृढ़ विश्वास था। इससे अधिक किसी स्त्री को और क्या आवश्यकता हो सकती है? उसके पास धन, रूप तथा बुद्धि सब कुछ था। यह सब कुछ होते हुये भी उसके पास एक बात की घटी थी और वो यह कि उसका पति सही नहीं था। क्योंकि उसका विवाह एक अशिष्ट, स्वार्थी तथा शराबी व्यक्ति के साथ हुआ था।

2. **उसके पति पर जब आपत्ति पड़ी तो उसने उसे उस आपत्ति से बचाने का पूरा प्रयत्न किया।** जब उसने यह सुना होगा कि दाऊद उसके पति नाबाल के प्राण लेने आ रहा है, तो वह शीघ्र वहां से भागकर किसी सुरक्षित स्थान पर भी जा सकती थी। वह शायद इस प्रकार से भी सोच सकती थी कि मेरा पति बहुत खराब है, इसलिये कोई बात नहीं मरने दो उसे। यदि उसका पति उस समय मर जाता तो उसके साथ परिवार के और भी मासूम सदस्य मारे जाते। अबीगैल इस प्रकार की घटना को देखना नहीं चाहती थी।

3. **एक खराब तथा बिगड़ती हुई स्थिति में उसने अपना व्यवहार बहुत ही अच्छा रखा था।** दाऊद से बातचीत करते हुये उसने उस पर यह कतई प्रकट नहीं होने दिया कि वह उससे नाराज़ है या अप्रसन्न है। उसका परमेश्वर में अटल विश्वास था।

II समझाने-बुझाने में वह निपुण थी-

लोगों के साथ किस प्रकार से व्यवहार किया जाये, यह भी एक कला है। इस कला की एक विशेषता यह है कि यदि हम किसी व्यक्ति को कुछ करने के लिये कहें और वह उस कार्य को खुशी के साथ उसी समय करने के लिये तैयार हो जाये। इस प्रकार के सिद्धान्त की परिवार में, कलीसिया में तथा जहां भी हम रहते हैं प्रत्येक स्थान पर आवश्यकता होती है। पति, बच्चों तथा मित्रों को भी हमें अनेक

बार समझाना-बुझाना पड़ता हैं। कई बार हम नम्रतापूर्वक लोगों को यह ज़ोर देकर कहते हैं कि उन्हें मसीही बनना आवश्यक है। प्रेरित पौलूस ने भी इसी बात पर ज़ोर देकर कहा था कि ''प्रभु का भय मानकर हम लोगों को समझाते हैं।'' अबीगैल में लोगों को अपनी बात से कायल करने की एक बहुत बड़ी विशेषता थी। उसके जीवन की यह एक विशेष कला थी। ऐसा करने के लिये उसने क्या तरीका इस्तेमाल किया, आईये देखे:

1. **वह नम्र स्वभाव की थी।** ''दाऊद को देख अबीगैल फुर्ती करके गदहे पर से उतर पड़ी, और दाऊद के सम्मुख मुंह के बल भूमि पर गिरकर दण्डवत किया। फिर वह उसके पांव पर गिरके कहने लगी ''हे मेरे प्रभु वह अपराध मेरे ही सिर पर हो, तेरी दासी तुझसे कुछ कहना चाहती है, और तू अपनी दासी की बातों को सुन ले।'' (1 शमूएल 25:23-24)। अपने आपको बड़ा बनाकर दिखाने वाले व्यवहार से केवल अप्रसन्नता ही होती है। परमेश्वर भी ऐसे व्यवहार को पसन्द नहीं करता। मैं तुझ से अधिक पवित्र हूं या तुझसे बहुत अच्छा हूं जैसे व्यवहार के विषय में प्रभु कहता है ''जो कहते हैं हट जा मेरे निकट मत आ, क्योंकि मैं तुझसे पवित्र हूं। ये मेरी नाक में धुएं व उस आग के समान है जो दिन भर जलती रहती है'' (यशायाह 65:5)। अबीगैल ने अपनी बात को बड़ी ही नम्रतापूर्वक कहा था और दाऊद ने उसकी बात को बड़े ध्यान से सुना था।

2. **उसने अपने पति के विषय में दाऊद से कहा कि वह दुष्ट नवाल की बात पर चित न लगाए क्योंकि वह तो मूर्ख है तथा उसने मूर्खता का व्यवहार दिखाया है।** (1 शमूएल 25:25-28)। वह इस बात को भी समझती थी, जिस प्रकार से सुलैमान ने भी एक बार कहा था कि मूर्ख लोगों के साथ बहस करना अच्छा नहीं होता और यदि कोई बदला लेने की भावना से ऐसा करता भी है तो वह अपने आप को हानि ही पहुंचाता है। (नीतिवचन 17:12; 18:2,6,7)।

अबीगैल ने दाऊद से बिनती की थी कि वह अपने को एक भला धार्मिक मनुष्य बनाए रखे। तथा इस बात को याद रखे कि 'मेरे प्रभु का प्राण तेरे परमेश्वर यहोवा की जीवन रूपी गठरी में बन्धा रहेगा और तेरे शत्रुओं के प्राणों को वह मानो-गोफन में रखकर फेंक देगा (पद 28, 29)। दाऊद शायद थोड़े क्षणों के लिये यह भूल गया था कि पलटा लेना प्रभु का काम है और अबीलगैल ने उसे याद दिलाया कि यह काम प्रभु का है। अपने आप पलटा लेना दाऊद का काम नहीं था। (रोमियों 12:19)।

3. **अबीगैल ने उसे परमेश्वर की अच्छाई के विषय में बताकर उसका मन परिवर्तन करना चाहा था** यानि प्रभु की अच्छाई को उसने एक शक्ति की तरह

इस्तेमाल किया। प्रत्येक मनुष्य परमेश्वर की अच्छाई का अनुभव कर सकता है। (पद 30)

पौलूस ने भी परमेश्वर की अच्छाई के विषय में बोलकर लोगों से कहा था कि ''क्या तू उसकी कृपा और सहनशीलता, और धीरजरूपी धन को तुच्छ जानता है? और क्या यह नहीं समझता, कि परमेश्वर की कृपा तुझे मन-फिराव को सिखाती है?'' (रोमियों 2:4)। वह मसीहीयों को यह भी याद दिलाता है कि वे परमेश्वर की अच्छाई को जानते हुये आपस में एक दूसरे की सहायता करें ''और एक-दूसरे पर कृपाल, और करूणामय हो, और जैसे परमेश्वर ने मसीह में तुम्हारे अपराध क्षमा किये, वैसे ही तुम भी एक दूसरे के अपराध क्षमा करो'' (इफिसियों 4:32)। अबीगैल के शब्दों ने दाऊद के दिल को छू लिया था। यद्यपि वह परमेश्वर की अच्छाई को अच्छी तरह से समझती थी, तौभी वह यह जानती थी कि परमेश्वर मनुष्य को उसके प्रत्येक कार्य के लिये जिम्मेदार ठहरायेगा। दण्ड मिलने का भय भी एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को धार्मिकता की ओर अग्रसर करती है। ''इसलिये परमेश्वर की कृपा और कड़ाई को देख। जो गिर गए, उन पर कड़ाई, परन्तु तुझ पर कृपा, यदि तू उसमें बना रहे, नहीं तो, तू भी काट डाला जाएगा। (रोमियों 11:22)।'' और यहोवा के भय मानने के द्वारा मनुष्य बुराई करने से बच जाते हैं (नीतिवचन 16:6)।

4. **अबीगैल ने दाऊद से जो बिनती की थी वह उसने उसकी भलाई के लिये की थी**- उसने दाऊद को यह याद दिलाया कि एक दिन यहोवा तेरी भलाई करेगा जो उसने तेरे विषय में कहा है, और तुझे इस्राएल पर प्रधान करके ठहराएगा और तब तू महसूस कर सकेगा कि तेरा विवेक स्वतन्त्र है क्योंकि तूने हत्या जैसा पाप नहीं किया है।

वास्तव में उसने दाऊद से इस तरह से कहा कि ''दाऊद, ज़रा भविष्य की ओर देख, विचार कर और तू यह सोचकर कितना प्रसन्न होगा कि तेरे में इतनी शक्ति थी कि तूने धैर्य के साथ इस बुराई का सामना किया और अपने आपको पाप करने से बचा लिया। अपनी भलाई चाहना कई बार, दूसरों के लिये एक प्रोत्साहन का कारण होता है। जब परमेश्वर हमसे कहता है कि तुम अपने पड़ोसियों से अपने समान प्रेम रखो, तो वह पहले से ही यह जानता है कि इसमें हमारी भलाई है। यही एक कारण है कि परमेश्वर के वचन में मुख्य को अच्छा धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिये कहा गया है क्योंकि इसमें उसकी स्वयम की भलाई है। अबीगैल ने बड़े ही अच्छे ढंग से दाऊद के साथ बातचीत की, और इसी सिद्धान्त का इस्तेमाल हम दूसरे लोगों के साथ भी कर सकते हैं। प्रभु यीशु मसीह के पास लोगों

को लाने के लिये भी हम लोगों से इसी प्रकार से बातचीत कर सकते हैं, उन्हें यह बताने के लिये कि वे किस प्रकार से पाप से स्वतंत्र हो सकते हैं। उदाहरणार्थ हम उनसे इस तरह से कह सकते हैं कि "जब न्याय का दिन होगा तो आप कितने प्रसन्न होंगे क्योंकि आपने यीशु का अनुसरण किया है। इसका अर्थ यह हुआ कि अब आप वापस पापमय जीवन की ओर नहीं जायेंगे।"

5. यह भी जानना आवश्यक है कि अबीगैल ने दाऊद से क्या नहीं कहा। उसने दाऊद से इस तरह से बात नहीं की कि मुझ पर दया कर क्योंकि मेरे पति की मृत्यु के बाद मुझे बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। उसके स्थान पर यदि हम में से कोई होता तो शायद यह कहता कि "दाऊद तू जल्दबाज़ी में ऐसा अनुचित कार्य क्यों कर रहा है, ज़रा सोच मेरे पति की मृत्यु के पश्चात मेरा क्या होगा? मैं अपने जीवन को आगे कैसे चलाऊंगी"। अबीगैल ने इस तरह की कोई भी बात नहीं की। उसने दाऊद से बड़े ही तर्क से बात की और उसे यह सोचने के लिये मजबूर कर दिया कि जो वो करने जा रहा है वह उसके अपने हित में ठीक नहीं होगा।

III अबीगैल की बिनती के प्रति दाऊद की प्रतिक्रिया-

1. **दाऊद एक अच्छा आदमी था।** एक ऐसा इन्सान जिसका मन परमेश्वर से जुड़ा हुआ था। अपने सिपाहियों के ऊपर उसका अच्छा प्रभाव था। सारे 600 सिपाही उसकी आज्ञा मानते तथा अनुशासन में रहते थे। वे सिपाही बहुत ही ईमानदार थे। तौभी अच्छे लोगों को भी अपनी चौकसी करनी चाहिए। परमेश्वर का वचन सिद्ध है, परन्तु मनुष्य इस सिद्धांत को कायम नहीं रखता और अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं कि वह बुराई कर बैठता है अर्थात अपने विश्वास से गिर जाता है। यही दाऊद के साथ भी इस समय हुआ था। जब उसने अपनी गलती को मान लिया तब उसकी प्रतिक्रिया क्या हुई।

2. **वह इस बात के लिये धन्यवादी हुआ कि किसी ने ठण्डे दिमाग़ से उसे समझाया तथा जल्दबाज़ी में गलत कदम उठाने से उसे रोका।** वह यह कहने से हिचकिचाया नहीं कि "तेरा विवेक धन्य है, और तू आप भी धन्य है, क्योंकि तूने मुझे आज के दिन खून करने और अपना पलटा आप लेने से रोक लिया है।" एक अच्छे धार्मिक मित्र की हमें भी आवश्यकता पड़ सकती है। दांऊद ने इस बात को जाना था और इसके लिये यह धन्यवादी भी हुआ।

3. **उसने स्थिति को सही तरह से समझा था।** शायद उसके स्थान पर यदि कोई और होता तो अपनी प्रतिज्ञा अनुसार वह नाबाल की हत्या कर देता क्योंकि वह शायद यह सोचता कि यदि मैं वापस चला जाऊं और ऐसा न करूं तो यह मेरी

कमज़ोरी होगी। दाऊद इस बात को भली भांति समझता था कि सही कार्य को करना ही बुद्धिमानी है तथा ये ही वास्तव में एक असली शक्ति है। जब उसने अपने सिपाहियों को वापस बुला लिया, तब वास्तव में वह एक शक्तिशाली पुरूष बना, क्योंकि उसने शैतान पर विजय प्राप्त की थी। शायद उसका व्यवहार इस प्रकार का भी हो सकता था: और वह ऐसा भी कह सकता था कि "मेरा बहुत अपमान हुआ है, अब मैं उसे छोड़ूंगा नहीं, मुझे कोई नहीं रोक सकता।" परन्तु उसने बात को अच्छी तरह से समझा, क्योंकि उसका मन परमेश्वर के साथ जुड़ा हुआ था। अनुचित मार्ग को छोड़कर उचित मार्ग पर चलना ही एक असली शक्ति है। केवल दाऊद जैसा एक धर्मी मनुष्य ही अबीगैल की प्रशंसा कर सकता था। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जब उसे नाबल की मृत्यु के विषय में पता चला तब उसने अबीगैल को बुला भेजा ताकि वह उसकी पत्नी बन सके।

IV नबाल एक धनवान मूर्ख था-

ज़रा उन सुअवसरों के विषय में सोचिये जो नाबाल के पास थे। वह एक अच्छे परिवार से था, क्योंकि वह कालेब के घराने से था। परमेश्वर के विषय में उसे ज्ञान था। धन होने के साथ-साथ उसकी एक अच्छी पत्नी भी थी। इन सब आशिषों के होने के बावजूद भी वह एक ऐसा मनुष्य था जिसका चरित्र बहुत गिरा हुआ था। वह कठोर, और बुरे-बुरे काम करनेवाला था।"

1. **वह आत्मिक गुणों की अवहेलना करने वाला था-** इसमें कोई सन्देह नहीं कि दाऊद के विषय में वह यह जानता था कि परमेश्वर के द्वारा उसका अभिषेक हुआ है, क्योंकि अबीगैल को इसके विषय में अच्छी तरह मालूम था। परन्तु जब दाऊद ने अपने लोगों को उसके पास भेजा तो उसने बड़े ही अपमानजनक अन्दाज़ में उनसे बोला, कि "दाऊद कौन है? मैं तो ये ही कह सकता हूं कि वह कोई भागा हुआ दास होगा"। इस प्रकार के ठट्टा-मज़ाक करने वाले लोग प्रत्येक युग में हुये हैं तथा आज भी हैं। अनेक लोगों की यह आदत होती है कि वे परमेश्वर तथा उसके लोगों का ठट्टा उड़ाने में बड़ा मज़ा लेते हैं। आज अनेकों लोग ऐसे भी हैं जो अपने को मसीही कहते हैं परन्तु मसीह की कलीसिया का मज़ाक उड़ाते हैं।

2. **नाबाल स्वार्थी था, तथा दूसरों के बारे में वह कुछ नहीं सोचता था।** इस बात पर ध्यान दीजिये जो उसने स्वार्थी होकर कही थी: "क्या मैं अपनी रोटी-पानी और जो पशु मैंने अपने कतरनेवालों के लिये मारे हैं लेकर ऐसे लोगों को दे दूं, जिनकों मैं नहीं जानता कि कहां के हैं?" वह केवल ये ही चाहता था कि वे जंगल में भूखे मर जायें।

3. **अबीगैल का अच्छा जीवन नाबाल के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका, क्योंकि उसका मन साफ़ नहीं था।** अनेक पत्नियां अपने अविश्वासी पतियों को अपने अच्छे व्यवहार से प्रभु के पास ला सकती हैं। (1 पतरस 3:1)। अनेक ऐसे भी हैं जिन्हें प्रभु के पास लाना बड़ा असम्भव है क्योंकि उनके मन बहुत कठोर है। बीज बोने वाले के दृष्टान्त में यीशु मसीह ने यह बात सिखाई थी। इस दृष्टान्त में यह सिखाया गया है कि बीज में तथा बोने वाले में कोई खराबी नहीं थी बल्कि उस भूमि में खराबी थी जिसमें वो बीज डाला गया था। बीज परमेश्वर का वचन है तथा भूमि उन लोगों के मन हैं जिन्हें प्रभु का वचन सुनाया गया था। अनेक लोगों के दिल इतने कठोर होते हैं कि उन पर कोई असर ही नहीं होता।

4. **उसकी पत्नी तथा दास भी उसका आदर नहीं करते थे।** वे अब यह समझ गये थे कि इस आदमी के कोई सिद्धान्त नहीं है। और उसके अपने ही दास यह कहने लगे थे कि ''वह तो ऐसा दुष्ट है कि उससे कोई बोल भी नहीं सकता (पद 17)। उसकी पत्नी ने उसके विषय में यह कहा था ''क्योंकि जैसा उसका नाम है वैसा ही वह आप है, उसका नाम है नाबाल है, और सचमुख उसमें मूढ़ता पाई जाती है'' (पद 25)। नाबाल का जीवन बहुत ही दुखपूर्ण होगा क्योंकि उसके अपने सारे लोग भी उससे घृणा करते थे तथा कोई भी उसे प्यार नहीं करता था।

5. **आखिरकार नाबाल के साथ क्या हुआ?** अबीगैल दाऊद को समझा-बुझाकर वापस घर लौट आई ''तब अबीगैल नाबाल के पास लौट आई, और क्या देखती है, कि वह घर में राजा की सी जेवनार कर रहा है और नाबाल का मन मगन है, और वह नशे में अति चूर हो गया है, इसलिये उसने भोर का उजियाला होने से पहिले उससे कुछ भी न कहा (पद 36)। उसने बुद्धिमानी से काम लिया, अर्थात जब तक उसकी हालत सही नहीं हुई उसने उससे कुछ नहीं कहा। ''बिहान को जब नाबाल का नशा उतर गया, तब उसकी पत्नी ने उसे कुल हाल सुना दिया, तब उसके मन का हियाव जाता रहा, और वह पत्थर का सा सुन्न हो गया''। वास्तव में जब उसे मालूम हुआ कि वह अब मृत्यु के कितना निकट है, उसे इससे बड़ा धक्का लगा। उसने ऐसा सोचा तक भी नहीं होगा कि उसकी मृत्यु इतनी अचानक तथा शीघ्र हो जायेगी और वास्तव में कोई भी पापी इस प्रकार से नहीं सोचता।

शीबा की रानी
(The Queen of Sheeba)

इस अध्ययन में हम ऐसे रानी-राजा के विषय में देखेंगे जो अपने युग में संसार में बहुत प्रसिद्ध थे। सबसे पहिले एक ऐसी रानी के बारे में देखेंगे जो बहुत ही साहासिक तथा एक शक्तिशाली देश की रहने वाली थी। इसके पश्चात हम राजा सुलैमान के बारे में भी देखते हैं जो कि अपने काल का एक बहुत ही बुद्धिमान तथा धनी राजा था। यह वो समय था जब इस्त्राएल राज्य माली हालत से बहुत चोटी पर पहुंचा हुआ था।

एक बहुत बड़े जन-समूह को सम्बोधित करते हुये यीशु ने एक बार एक बात कही थी। उनके हठी तथा अविश्वासी मनों के विषय में उसने यह कहा था कि ''दक्खिन की रानी न्याय के दिन इस समय के मनुष्यों के साथ उठकर उन्हें दोषी ठहराएगी, क्योंकि वह सुलैमान का ज्ञान सुनने को पृथ्वी की छोर से आई, और देखो, यहां वह है जो सुलैमान से भी बड़ा है'' (लूका 11:31)

I रानी जो सुलैमान की परीक्षा करने आई थी-

कुछ लोगों ने उस समय शायद यह सोचा होगा कि शीबा की रानी सुलैमान के पास इसलिये आई होगी क्योंकि उस में कुछ जानने की लालसा होगी या वह इस्राएल के साथ अपने व्यापार को बढ़ाना चाहती होगी परन्तु यीशु मसीह ने स्पष्ट शब्दों में यह बताया था कि वह किस उद्देश्य से उसके पास आई थी। उसने सुलैमान की प्रशंसा करते हुये कहा था कि वास्तव में उसमें बुद्धि की खोज करने की जो इच्छा थी वह सही थी। सुलैमान के साथ उसकी मुलाकात के विषय में हम 1 राजा 10:1-13 में पढ़ते हैं।

1. उसका व्यवहार तथा शौक इस बात के प्रमाण हैं कि वह इतनी दूर रेगिस्तानी इलाकों को पार करती हुई और एक लम्बी यात्रा के पश्चात यरूशलेम पहुंची थी तथा यह यात्रा लगभग 1200 से 2000 मील लम्बी थी। उस ज़माने के रिवाज़ के अनुसार उसने सुलैमान को बहुत सारी भेंटें दी थीं जैसे मसाले, सोना, मणी इत्यादि जिनका मोल कई करोड़ रूपये था। 'फ़लसफ़ा' एक ऐसा शब्द है जिसका

वास्तविक अर्थ है "बुद्धि से प्रेम करना' तथा वास्तव में यह जीवन तथा मृत्यु का असली अर्थ जानने का अध्ययन है। इस क्षेत्र में सुलैमान केवल प्रभु यीशु से पीछे था। सारा संसार सुलैमान के विषय में जानता था। "जब शीबा की रानी ने यहोवा के नाम के विषय में सुलैमान की कीर्ति सुनी, तब वह कठिन से कठिन प्रश्नों से उसकी परीक्षा करने को चल पड़ी" (1 राजा 10:1)। क्योंकि वह स्वयं भी एक शासन चलाने वाली थी, इसलिये बड़े-बड़े आवश्यक निर्णय लेने की उसकी जिम्मेवारी थी तथा जैसा भी निर्णय वह लेती थी उसका प्रभाव उसकी प्रजा पर पड़ता था। उसने इस बात की आवश्यकता को समझा कि उसे भी मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। जो भी परेशान करने वाली समस्यांए उसके मन में थीं उन सबके विषय में वह सुलैमान से व्यक्तिगत रूप से बात करना चाहती थी। शायद उसने यह भी सोचा होगा कि उसके लिये यह एक बहुत ही सुन्दर सुअवसर है कि वह संसार के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति से बातचीत करेगी और जो उसका मन चाहेगा वो उससे पूछेगी। परमेश्वर के वचन में हम पढ़ते हैं कि जो भी उसने सुलैमान से पूछा उसने उन सब प्रश्नों के उत्तर उसे दिये। सुलैमान के विषय में वह साफ़ मन से जानना चाहती थी और हम ऐसा कह सकते हैं कि उसके मन में उसके प्रति कोई ईर्ष्या की भावना नहीं थी। खुले मन से उसने सुलैमान की प्रशंसा की। अपने अन्तिम शब्दों में उसने तीन विशेष बातें कहीं थीं। सबसे पहिले उसने यह कहा, "परन्तु जब तक मैंने आप ही आकर अपनी आंखों से यह न देखा, तब तक मैंने उन बातों की प्रतीती न की, परन्तु आधा भी मुझे न बताया गया था, तेरी बुद्धिमानी और कल्याण उस कीर्ति से भी बढ़कर है, जो मैंने सुनी थी"। तब उसने कहा कि "धन्य हैं तेरे जन! धन्य हैं तेरे ये सेवक! जो नित्य तेरे सम्मुख उपस्थित रहकर तेरी बुद्धि की बातें सुनते हैं"। उसने तीसरी बार फिर यह कहा कि: "धन्य है तेरा परमेश्वर यहोवा, जो तुझसे ऐसा प्रसन्न हुआ कि तुझे इस्राएल की राजगद्दी पर विराजमान किया: यहोवा इस्राएल से सदा प्रेम रखता है, इसी कारण उसने तुझे न्याय और धर्म करने को राजा बना दिया है।"

II क्योंकि सुलैमान की कीर्ति बहुत फैली हुई थी इसलिये शीबा की रानी चाहती थी कि उससे भेंट करे-

1. उसका धन- जब सुलैमान एक जवान लड़का ही था, तभी उसके ऊपर यह जिम्मेदारी आ गई थी कि वह अपने पिता दाऊद के बाद इस्राएल पर राज्य करे और तब प्रभु ने उसके मन की सबसे बड़ी इच्छा जाननी चाही। उस नम्र जवान लड़के ने कहा कि वह बुद्धि की इच्छा रखता है, "तु अपने दास को अपनी प्रजा का न्याय

करने के लिये समझने की ऐसी शक्ति दे, कि मैं भले बुरे को परख सकूं: क्योंकि कौन ऐसा है कि तेरी इतनी बड़ी प्रजा का न्याय कर सके"? (1 राजा 3:9-14)। प्रभु को इस बात से प्रसन्नता हुई कि उसने धन नहीं मांगा, लम्बी आयु नहीं मांगी या यह नहीं चाहा कि उसके शत्रुओं का नाश हो। परमेश्वर ने सुलैमान की केवल बिनती ही पूरी नहीं कि बल्कि उससे बोला कि "जो तूने नहीं मांगा, अर्थात धन और महिमा, वह भी मैं तुझे यहां तक देता हूं, कि तेरे जीवन भर कोई राजा तेरे तुल्य न होगा।" इसलिये सुलैमान अपने समय का एक बहुत ही प्रसिद्ध राजा हुआ। परमेश्वर ने उसे इतनी सारी आशिषों से भरपूर कर दिया था जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। शीबा की रानी यह सब कुछ देखकर बहुत ही चकित थी। "जब शीबा की रानी ने सुलैमान की सब बंद्धिमानी और उसका बनाया हुआ भवन, और उसकी मेज़ पर का भोजन देखा, और उसके कर्मचारी किस रीति से बैठते, और उसके टहलुए किस रीति से खड़े होते, और कैसे-कैसे कपड़े पहिने रहते हैं, और उसके पिलानेवाले कैसे रहते हैं, और वह कैसी चढ़ाई है, जिससे वह यहोवा के भवन को जाया करता है, यह सब जब उसने देखा, तब वह चकित हो गई"। उस युग की सबसे अद्‌भुत इमारत थी सुलैमान का मन्दिर। मन्दिर के बनने से पहिले दाऊद ने कई करोड़ रूपयों का सोना उसके निर्माण के लिये इकट्ठा किया था। इसको बनाने में सात वर्ष लगे थे, लगभग 183000 लोगों ने इसे बनाया था। इस मन्दिर को नबूकदनेस्सर ने 586 ईसा पूर्व में पूरी तरह से नाश कर दिया था।

2. सुलैमान की बुद्धि- जो उसने मांगा था वो उसे मिला। यद्यपि उसका व्यक्तिगत जीवन जवानी में ही बिगड़ चुका था क्योंकि उसने परायी स्त्रियों से विवाह किया था और इन स्त्रियों ने उसका मन प्रभु से दूर कर दिया था, परन्तु फिर भी प्रभु ने अपना ईश्वरीय ज्ञान उसके द्वारा लोगों को दिया था। जवानों को सिखाने का एक अच्छा तरीका यह है कि उन्हें बार-बार अच्छी शिक्षाएं दी जायें अर्थात उन्हें यह बताया जाये कि अच्छा जीवन निर्वाह किस प्रकार से करना चाहिए, यदि मुहावरों के रूप में संक्षिप्त में उन्हें कोई बात बताई जाये तो वो बात उनके दिमाग में अच्छी तरह से बैठ जायेगी। इसी प्रकार के तरीके को नीतिवचन की पुस्तक में भी इस्तेमाल किया गया है। नीतिवचन सुलैमान द्वारा लिखी गई है और इस पुस्तक में 31 अध्याय हैं। यदि प्रतिदिन एक अध्याय पढ़ने की आदत डाली जाये तो युवा लोग इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। एक मसीही माता से एक बार पूछा गया कि "आपने अपने बच्चे को इतना अच्छा बनाने के लिये क्या तरीका इस्तेमाल किया था?" उसने उत्तर देते हुये कहा कि "जब भी कोई समस्या या संकट हमारे बीच में उत्पन्न होता था, तब हम सब एक साथ बैठकर नीतिवचन की पुस्तक को पढ़ते थे।"

सुलैमान ने भी अपने अनुभवों से बहुत कुछ सीखा था। जीवन की समस्याओं को समझने का उसका तरीका अपने पूर्वजों से भिन्न था। उसने पाप की दुष्टता पर अधिक ज़ोर न देकर मूर्खता के ऊपर अधिक बल दिया था अर्थात बार-बार उसने यह बात कही थी कि परमेश्वर के विरोध में होना मूर्खता है, परन्तु धार्मिक होना बुद्धिमानी है। उदाहरणार्थ: ''यहोवा के विरूद्ध न तो कुछ बुद्धि, और न कुछ समझ, न कोई युक्ति चलती है'' (नीतिवचन 21:30)। ''परन्तु जो मेरा अपराध करता है, वह अपने ही पर उपद्रव करता है, जितने मुझसे बैर रखते हैं वे मृत्यु से प्रीति रखते हैं (नीतिवचन 8:36)। यदि हम इस बात को अच्छी तरह से समझें तो यह बात हमें धार्मिकता की ओर अग्रसर करती है। शीबा की रानी से हम एक बहुत ही महत्वपूर्ण पाठ यह सीखते हैं कि वह प्रयत्न करके सुलैमान के पास गई ताकि उससे यह मालूम करे कि बुद्धि का वास्तविक अर्थ क्या है।

III बुद्धिमान कौन है?-

एक सांसारिक ज्ञान केवल विनाश को ही पहुंचाता है। इसी बात का वर्णन परमेश्वर ने रोमियों 1:22-25,1 कुरिन्थियों 1:19-21, 1 कुरिन्थियों 3:18-20 में किया है। चाहे कोई कितना भी पढ़ा लिखा हो, परन्तु यदि वह परमेश्वर के वचन को अस्वीकार करता है तो वह बुद्धिमान नहीं है, वह मूर्ख है। बुद्धिमान फिर कौन है?

1. जो परमेश्वर की आज्ञाओं को स्वीकार करता है। ''जो बुद्धिमान है, वह आज्ञाओं को स्वीकार करता है'' (नीति 10:8)।'' -परन्तु जो सम्मति मानता, वह बुद्धिमान है'' (नीति 12:15)।

2. जो ज्ञान का ठीक से बखान करता है। ''बुद्धिमान ज्ञान का ठीक बखान करते हैं, परन्तु मूर्खों के मुंह से मूढ़ता उबल आती है'' (नीति 15:2)।

3. जो माता-पिता की आज्ञा को मानता है। ''बुद्धिमान पुत्र पिता की शिक्षा सुनता हैं'' (नीति 13:1)।

4. जो अपने शब्दों की चौकसी करता है। ''जो अपने मुंह को बन्द रखता है, वह बुद्धि से काम करता है'' (नीति 10:19)। 'जो झट क्रोध करे, वह मूढ़ता का काम भी करेगा (नीति 14:17)।

5. जो भविष्य के लिये तैयार रहता है। ''जो बेटा धूपकाल में बटोरता है वह बुद्धि से काम करनेवाला है'' (नीति 10:5)। मूसा ने भी लोगों से कहा था कि वे आने वाले भविष्य के लिये तैयार रहें, और अपने व्यवहार के परिणाम को जानें। ''भला होता कि ये बुद्धिमान होते, कि इसको समझ लेते, और अपने अन्त का विचार करते।'' (व्यवस्थाविवरण 32:29)।

6. जो आत्माओं को प्रभु के लिये जीतता है ''और बुद्धिमान मनुष्य लोगों के मन को मोह लेता है।'' (नीति 11:30)।

7. जो अपने आप को शराब से दूर रखता है ''दाखमधु ठटटा करने वाला और मदिरा हल्ला मचाने वाली है, जो कोई उसके कारण चूक करता है, वह बुद्धिमान नहीं है'' (नीति 20:1)।

8. जो अपने विवेक को सुरक्षित (शुद्ध) रखता है। ''हे मेरे पुत्र, मेरी बुद्धि की बातों पर ध्यान दे-जिस से तेरा विवेक सुरक्षित बना रहे क्योंकि पराई स्त्री के होठों से मधु टपकता है, और उसकी बातें तेल से भी अधिक चिकनी होती हैं, परन्तु इसका परिणाम नागदौना सा कड़वा और दोधारी तलवार सा पैना होता है। उसके पग मृत्यु की ओर बढ़ते हैं और अधोलोक तक पहुंचते हैं'' (नीति 5:1-5)। जो जवान पुरूष इस प्रकार की स्त्री के जाल में फंस जाता है उसको निर्बुद्धि कहा गया है। (नीति 7:6-27)।

9. जो सब प्रकार बुराई से दूर रहता है।

''बुद्धिमान डरकर बुराई से हटता है- (नीति 14:16)। परन्तु दूसरी ओर मूर्ख, या मूढ़ लोग दोषी होने को ठट्टा जानते हैं। (नीति 14:9)। पाप के ऊपर हंसना कोई बुद्धिमानी नहीं है। यह मूर्खता का एक चिन्ह है।

IV ''देखो, वह जो सुलैमान से भी महान है।''

1. **इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि हमें व्यक्तिगत रूप से सुलैमान से बात-चीत करने का अवसर प्राप्त होता तो हम कितने प्रसन्न होते।** कितनी ही अच्छी बातें उसके द्वारा लिखी गई थीं, परन्तु हमारे पास आज एक बहुत ही सुन्दर अवसर यह है कि हम प्रभु यीशु से बुद्धि प्राप्त कर सकते हैं जो सुलैमान से भी अधिक महान है। कई बार नीति-वचन की पुस्तक में बुद्धि के विषय में बोलते हुए लेखक ने यीशु अर्थात परमेश्वर के पुत्र की ओर संकेत किया है। जब आदम ने अदन की बाटिका में अपने अधिकार को खो दिया था, तब से सारी मनुष्य जाति का परमेश्वर से सिद्ध सम्बन्ध टूट गया था। इसी सम्बन्ध को यीशु ने जो सिद्ध वा अति बुद्धिमान था फिर से स्थापित किया। वह बुद्धि और ज्ञान से भरा हुआ था। ''जिसमें बुद्धि और ज्ञान से सारे भण्डार छिपे हुये हैं (कुलुस्सियों 2:3), वह जो सुलैमान से भी महान है''। तौभी हम देखते हैं कि उस समय के लोगों ने उसकी शिक्षाओं को अस्वीकार कर दिया था तथा उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया था। उसने उन्हें शैतान की सन्तान कहकर सम्बोधित किया था तथा उसने उनसे कहा था कि ''दक्खिन की रानी न्याय के दिन इस समय के मनुष्यों के साथ

उठकर, उन्हें दोषी ठहराएगी, क्योंकि वह सुलैमान का ज्ञान सुनने को पृथ्वी की छोर से आई।'' वह उन लोगों से बहुत अच्छी थी क्योंकि उसने सत्य से प्रेम किया था तथा उसकी खोज के लिये निकल पड़ी थी। सब मनुष्यों को परमेश्वर की सच्चाई को जानना चाहिये और जो लोग ऐसा नहीं करेंगे, वे यीशु के द्वारा दोषी ठहराये जायेंगे।

2. **वह जो सुलैमान से भी बड़ा था अर्थात यीशु, जिसने बहुत सारी बुद्धि की बातों को बताया**, तथा इन बातों को उसने बड़े ही साधारण दृष्टान्तों के रूप में कहा था जिनको समझना बिल्कुल भी कठिन नहीं है। उसने उस मूर्ख मनुष्य के विषय में कहा था जिसने अपना घर बालू पर बनाया था तथा उस बुद्धिमान मनुष्य के बारे में भी कहा था जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया था। उन दोनों में किस बात का अन्तर था? उनमें से एक ने आज्ञा को माना था और यीशु ने उसके विषय में यह कहा: ''इसलिये जो कोई मेरी ये बातें सुनकर उन्हें मानता है वह उस बुद्धिमान मनुष्य की नाई ठहरेगा जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया और मेंह बरसा और बाढ़े आई, और आन्धियां चलीं, और उस घर पर टक्करें लगीं, परन्तु वह नहीं गिरा, क्योंकि उसकी नेव चट्टान पर डाली गई थी'' (मत्ती 7:24,25)। प्रत्येक मनुष्य अपना एक घर बना रहा है, वह मनुष्य या तो मूर्ख है या बुद्धिमान इस बात का पता तब चलेगा जब एक दिन वो बड़ा तूफान आयेगा तथा यह तूफान अवश्य आयेगा। लूत की पत्नी वाले पाठ में हमने यह देखा था कि परमेश्वर की आज्ञा मानना बहुत ही आवश्यक है अपनी ही मुर्खता के कारण लूत की पत्नी नाश हुई थी। सुलैमान न भी आज्ञा ने मानने वाला ज़हर पिया था तथा वह प्रत्येक मनुष्य से आज यह कहता है कि जिस प्रकार की मूर्खता के मार्ग पर वह चला था वे लोग उस मार्ग पर न चलें। वह सब बातों का निचोड़ निकालकर यह कहता है कि बुद्धिमानी इसी बात में है कि ''परमेश्वर का भय मान और उसकी आज्ञाओं का पालन कर'', क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण कर्त्तव्य यही है (सभोपदेशक 12:13)। आज्ञा मानना बुद्धिमानी की बात है क्योंकि ये ही हमारे उद्धार का आधार है। आज यह आवश्यकता है कि हम यीशु मसीह यानि 'विश्वास के कर्ता और सिद्ध करने वाले की ओर ताकते रहें'' (इब्रानियों 12:2; 5:9)।

V बुद्धि का मोल- इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि नीतिवचन का लेखक हमें यह बताना चाहता है कि मनुष्य के पास उसकी सबसे बहुमूल्य वस्तु है उसकी बुद्धि।

1. इसकी प्राप्ति धन से भी बड़ी है-''क्योंकि बुद्धि की प्राप्ति चान्दी की प्राप्ति

से बड़ी, और उसका लाभ चोखे सोने के लाभ से भी उत्तम है। वह मूंगे से अधिक अनमोल है, और जितनी वस्तुओं की तू लालसा करता है, उनमें से कोई भी उसके तुल्य न ठहरेगी'' (नीति-3:14,15)।

2. यह जीवन के समान है-''क्योंकि जो मुझे पाता है, वह जीवन को पाता है और यहोवा उससे प्रसन्न होता है'' (नीति 8:35)।

3. बुद्धि प्राप्त होने से प्रसन्नता होती है तथा इसे प्राप्त करने वाला धन्य है। ''क्या ही धन्य है वह मनुष्य जो बुद्धि पाए, और वह मनुष्य जो समझ प्राप्त करे'' (नीति 3:13)। ''क्या ही धन्य है वह मनुष्य जो मेरी सुनता है'' (नीति 8:34)।

4. इसके प्राप्त होने से आत्मा तथा विवेक शुद्ध रहते हैं। ''खरी बुद्धि और विवेक की रक्षा कर, जब तू लेटेगा, तब भय न खाएगा, जब तू लेटेगा, तब सुख की नींद आएगी (नीति 3:21-24)। ''बुद्धि की बात ध्यान से सुनें, और समझ की बात मन लगाकर सोचें'' (नीति 2:2)। ''परन्तु जो मेरी सुनेगा, वह निडर बसा रहेगा, और बेखटक सुख से रहेगा। (निति. 1:33)

VI बुद्धि की प्राप्ति कैसे होती है?

1. सच्ची बुद्धि परमेश्वर से ही मिलती हैं ''क्योंकि बुद्धि यहोवा ही देता है, ज्ञान और समझ की बातें उसी के मुंह से निकलती है (नीति 2:6)।

2. ''बुद्धि का मूल यहोवा का भय है'' (भजन संहिता 111:10)। नीति-वचन की पुस्तक का निचोड़ ये ही है: ''यहोवा का भय मानना बुद्धि का मूल है, बुद्धि और शिक्षा का मूढ़ ही लोग तुच्छ जानते हैं।'' (नीति 1:7) एक अच्छा तथा सफ़ल जीवन व्यतीत करने के लिये, सुलैमान कहता है कि हमें परमेश्वर का भय मानना चाहिए, अपने सृजनहार का आदर करना चाहिये। एक अच्छा और बढ़िया जीवन बनाने की रूप रेखा भी वह हमें बताता है यानि परमेश्वर के साथ हमारा कैसा सम्बन्ध होना चाहिए, हमारे साथियों के प्रति हमारे कर्त्तव्य, स्वयम के प्रति हमारे कर्त्तव्य, परिवार के प्रति हमारी जिम्मेदारियां, और व्यापार में हमारे सिद्धान्त कैसे होने चाहिये।

3. ''पर यदि तुम में से किसी को बुद्धि की घटी हो, तो परमेश्वर से मांगे, जो बिना उलाहना दिए सब को उदारता से देता है, और उसको दी जाएगी'' (याकूब 1:5)। तौभी किसी को भी बुद्धि चमत्कारिक रूप में नहीं दी जायेगी, बल्कि मनुष्य को इसके लिये कार्य करना होगा अर्थात बुद्धि के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करनी होगी। यद्यपि बुद्धि के लिये हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं, तौभी हमारी प्रार्थना में उसके वचन को सीखना तथा उसकी आज्ञा मानना शामिल होनी चाहिए।

4. बुद्धिमानों की संगति करने से बुद्धि का विकास होता है। "बुद्धिमानों की संगति कर, तब तू भी बुद्धिमान हो जायेगा परन्तु मूर्खों का साथी नाश हो जाएगा" (नीति 13:20)। इस प्रकार की सलाह से केवल उन्हें ही सहायता मिलेगी जो इन दोनों बातों में अन्तर समझते हैं। इस पाठ को अपने अध्ययन की इस श्रंखला में शामिल करने का हमारा विशेष कारण यह था कि हम शीबा की रानी के जीवन से यह सीख सकें कि उसने संसार के सबसे बुद्धिमान व्यक्ति के साथ कितना अधिक समय बिताया ताकि उससे बुद्धिमानी की बातें सीख सकें। हमें भी आज उसकी तरह ही करना चाहिये। कैसे? हमें अपना अधिक से अधिक समय यीशु के साथ तथा परमेश्वर के वचन को पढ़ने में लगाना चाहिये ताकि हम परमेश्वर के ज्ञान को अच्छी तरह से जान सकें।

1. चाहे कोई व्यक्ति कितना भी बुद्धिमान हो यदि वह परमेश्वर की अन्ताओं पर नही चलता तो क्या उसे बुद्धिमान कहा जायेगा?

2. क्या आप कुछ ऐसे क्षणों को याद कर सकतीं हैं जब आपके बच्चे ने आपसे कई प्रश्न किये होगे और आपने बड़ी बुद्धिमानी से उनका जबाव दिया होगा।

3. क्या आपको कोई ऐसा समय याद है जब किसी बुद्धिमान व्यक्ति ने अपने बुद्धिमानी के शब्दों को बोलकर आपके कांधों का बोझ हल्का कर दिया हो?

यारोबाम की पत्नी
(Jeroboam's Wife)

जिस स्त्री के विषय में अब हम देखेंगे, वह एक दुखी स्त्री थी, यदि आज वह हमसे आमने-सामने बात कर सकती, तो अवश्य ही वह हमसे बिनती करके यह कहती कि हम उसकी गलतियों से अपने लिये कुछ सीखें। सबसे पहिले हम उसके पति के विषय में देखेंगे।

जब सुलैमान इस्राएल का राजा था तब उसकी दृष्टि एक ऐसे नौजवान पुरूष पर पड़ी जो बहुत ही शूरवीर तथा परिश्रमी था। इस बहादुर जवान का नाम था यारोबाम। वह एप्रैमी वंश का था और सुलैमान ने उसे अपने राज्य में बहुत ही जिम्मेदारी का काम सौंप रखा था। (1 राजा 11:28)। एक दिन परमेश्वर का भविष्यवक्ता अहिययाह उसे यरूशलेम के बाहर मिला और जब वे दोनों मैदान में अकेले थे तब अहिययाह ने यह भविष्यवाणी की कि इस्राएल को विभाजित कर दिया जायेगा। परमेश्वर ने उससे प्रतिज्ञा की थी कि वह उसके साथ होगा और उसकी सहायता करेगा तथा उससे कहा कि "तेरा घराना मैं बनाए रखूंगा।" लेकिन इस प्रतिज्ञा में एक शर्त थी: "और यदि तू मेरे दास दाऊद की नाई मेरी सब आज्ञाएं मानें, और मेरे मार्गो पर चले, और जो काम मेरी दृष्टि में ठीक है, वही करे और मेरी विधियां और आज्ञाएं मानें, और मेरे मार्गो पर चले, और जो काम मेरी दृष्टि में ठीक है, वही करे और मेरी विधियां और आज्ञाएं मानता रहे, तो मैं तेरे संग रहूंगा-" (1 राजा 11:29-40)।

जब सुलैमान ने इस भविष्यवाणी के विषय में सुना तब उसने यारोबाम को मार डालना चाहा। यारोबाम को जब यह पता चला तब वह मिस्र के राजा शीशक के पास भाग गया, और सुलैमान के मरने तक वहीं रहा। जब सुलैमान की मृत्यु हो गई तो उसका पुत्र रहूबियाम मिस्र से वापस लौट आया तथा उसने रहूबियाम का विद्रोह किया, और इस्राएल जाति का विभाजन कर दिया और दस गोत्रों का वह राजा बना। इसके पश्चात हम बाइबल के इस इतिहास को दो भागों में देखते हैं। उत्तरी राज्य के दस गोत्रों का नाम इस्राएल रहा। दक्षिणी राज्य का नाम यहूदा पड़ा।

इस बात के भय से कि लोग यरूशलेम को उपासना के लिये जायेंगे और तब उनका मन अपने स्वामी यहूदा के राजा रहूबियाम की ओर फिरेगा उसने एक बछड़े की प्रतिमा को बेतेल में और दूसरी को दान नामक स्थान पर स्थापित किया (1 राजा 12:28-30),उसने ऊंचे स्थानों के भवन बनाए ताकि वहां पर पराए देवताओं की उपासना की जाये तथा वह परमेश्वर के लोगों का ऐसा पहिला राजा था जिसने लोगों के मनों को मूर्तिपूजा की ओर फेरा। अहिय्याह नबी ने उससे कहा था कि वह अपनी बुराई (पाप) से मन फिरायें, परन्तु ''यारोबाम अपनी बुरी चाल से न फिरा'' (1 राजा 13:33)।

यारोबाम तथा उसकी पत्नी के दो पुत्र थे। एक पुत्र का नाम अबिय्याह था तथा वह धर्मी था। उनके दूसरे पुत्र का नाम नदाब था, जिसने ''वह काम किया जो यहोवा की दृष्टि में बुरा था'' (1 राजा 15:26)। उस समय उनका बेटा बहुत रोगी हुआ, अपने बेटे अबिय्याह को अच्छा करने के लिये वे चाहते थे कि उनकी कोई सहायता करे, और ऐसी सहायता केवल परमेश्वर ही कर सकता था, परन्तु यारोबाम इस बात को जानता था कि उसके पाप के कारण वह प्रभु से अलग है तथा उसके पास कोई अधिकार नहीं है कि वह अब सहायता के लिये प्रभु के पास जाये। उसने अपनी पत्नी से कहा ''ऐसा भेष बना कि कोई तुझे पहिचान न सके कि तू यारोबाम की स्त्री है, और शीलो को चली जा, वहां तो अहिय्याह नबी रहता है जिसने मुझ से कहा था कि तू इस प्रजा का राजा हो जायेगा।'' ऐसा उसने इसलिये किया था ताकि अहिय्याह नबी के द्वारा उसको अपने रोगी बेटे के लिये एक अच्छा उत्तर मिल सके।

इसके विषय में हम 1 राजा 14:1-18 में पढ़ते हैं। अहिय्याह नबी बहुत बूढ़ा था तथा बुढ़ापे के कारण उसकी आंखे धुंधली पड़ गई थीं। वह अच्छी तरह से देख भी नहीं सकता था, परन्तु इससे पहिले की यारोबाम की पत्नी उसके घर पर जाती, परमेश्वर ने अहिय्याह नबी को सब कुछ बता दिया था। जैसे ही उसके, कदम नबी के घर में प्रवेश हुए अहिय्याह ने उससे कहा: ''हे यारोबाम की स्त्री! भीतर आ परमेश्वर ने मुझे बता दिया था कि तू आ रही है, मैं तुझे कुछ विशेष बातें बताना चाहता हूं। वापस जा और अपने पति से कह दे कि तेरे लिये प्रभु का यह सन्देश है:'' कि मैंने तो तुझे प्रजा में से बढ़ाकर अपनी प्रजा इस्राएल पर प्रधान किया, और दाऊद के घराने से राज्य छीनकर तुझको दिया, परन्तु तू मेरे दास दाऊद के समान न हुआ जो मेरी आज्ञाओं को मानता, और अपने पूर्ण मन से मेरे पीछे-पीछे चलता था, और केवल वही करता था जो मेरी दृष्टि में ठीक है और तूने उन सभी से

बढ़कर जो तुझसे पहिले थे बुराई की है, और जाकर पराये देवता की उपासना की और मूरतें ढालकर बनाई हैं, जिसने मुझे क्रोधित कर दिया और मुझे तो पीठ के पीछें फेंक दिया है। इस कारण मैं यारोबाम के घराने पर विपत्ति डालूंगा, वरन मैं यारोबाम के कुल में से हर एक लड़के को और क्या बन्धुए, क्या स्वाधीन इस्राएल के मध्य हर एक रहनेवाले को भी नष्ट कर डालूंगा: और जैसा कोई गोबर को तब तक उठाता रहता है जब तक वह सब उठा नहीं लिया जाता, वैसे ही मैं यारोबाम के घराने की सफ़ाई कर दूंगा- इसलिये तू उठ और अपने घर जा, और नगर के भीतर तेरे पांव पड़ते ही वह बालक मर जाएगा।'' ज़रा सोचिये कि कितना भारी और दुखी मन लेकर वह घर की ओर वापस लौटी होगी, ''और वह भवन की डेवढ़ी पर जैसे ही पहुंची कि वह बालक मर गया। तब यहोवा के वचन के अनुसार जो उसने अपने दास अहिय्याह नबी से कहलाया था, समस्त इस्राएल ने उसको मिट्टी देकर उसके लिये शोक मनाया।''

इस दुखी स्त्री के जीवन से हम अनेक पाठ सीख सकते हैं।

I परमेश्वर को धोखा देने की व्यर्थता-

1. **यारोबाम तथा उसकी पत्नी की यह कितनी बड़ी मूर्खता थी कि वे महान परमेश्वर के उस भविष्यद्वक्ता** को धोखा देना चाहते थे, जो भविष्य के बारे में सब कुछ बता सकता था, उन दोनों ने ऐसा सोचा था कि परमेश्वर का यह जन देख तो सकता नहीं इसलिये बड़ी सरलता से हम उसको धोखा दे सकते हैं। शारीरिक दृष्टि का परमेश्वर की चमत्कारिक शक्ति के सामने कोई अर्थ नहीं है। यारोबाम तथा उसकी पत्नी ने परमेश्वर के भविष्यद्वक्ता को धोखा देने का प्रयत्न किया था, ताकि उससे कुछ आशीष प्राप्त कर सकें परन्तु वास्तव में ऐसा करना परमेश्वर को धोखा देने के बराबर है। हम शायद यह कहें कि ''अवश्य ही यदि यारोबाम थोड़े क्षणों के लिये इस बात पर विचार कर लेता तो शायद यह समझ जाता कि ऐसा करना अर्थात परमेश्वर को धोखा देना व्यर्थ है।'' परन्तु इससे पहिले कि हम उसके विषय में ऐसा कहें, आइये सबसे पहिले हम अपने आपको तो जांचे और देखें कि क्या हम तो इस प्रकार की मूर्खता नहीं कर रहे हैं?

2. **अनेक लोग किस प्रकार से प्रभु के सामने अपना भेष बदलते हैं?** ऐसे कई तरीके हैं। उदाहरण के रूप में: शायद प्रभु के दिन (ऐतवार को) कोई भेष बदलकर ऐसा कहे, ''मैं आज उपासना के लिये नहीं जा सकता, परमेश्वर मुझे पता है कि तू देख सकता है और तू जानता है कि-मैं कितना बीमार हूं'' परमेश्वर उनसे शायद इस प्रकार से कहे: ''जो तू भेष बदलकर बोल रहा है उसे मैं बड़ी सफ़ाई

से देख सकता हूं, बेटे, यदि आज सोमवार होता तो तू क्या दर्द की गोली लेकर दफ्तर नहीं जाता?'' हमारे चन्दा देने के विषय में हम शायद प्रभु से कहें, ''प्रभु हम अधिक चन्दा नहीं दे सकते। परन्तु क्या हम प्रभु की इस बात को सुन सकते हैं, वह कहता है: ''तू मेरे विषय में क्या सोचता है, क्या मैं दूर तक नहीं देख सकता? क्या तू नहीं जानता कि मैं तेरे मन की प्रत्येक बात जानता हूं और यह भी देख सकता हूं कि तूने मेरे को पहिला दर्जा नहीं दिया है बल्कि दूसरी बातों को तूने पहिला दर्जा दिया है'' मान लीजिये यदि एक मसीही प्रत्येक उपासना सभा में आये तथा उसका मन यदि ईर्ष्या, घृणा तथा लोभ या किसी और पाप से भरा हुआ हो तो क्या ऐसी उपासना प्रभु को स्वीकार्य होगी? कभी नहीं। प्रभु ने एक बार एक बात कही थी और वो यह कि ''यह लोग होठों से तो मेरा आदर करते हैं, पर इनका मन मुझसे दूर रहता है'' (मत्ती 15:8)।

3. एक दिन प्रभु के सामने सब बातें स्पष्ट हो जायेंगी। और यह इस प्रकार से होगा जैसे एक बहुत बड़े सिनेमा के पर्दे पर सब कुछ बड़ा-बड़ा साफ़ दिखाइ देता है। क्या वास्तव में बाइबल यह सिखाती है? हां, 1 कुरिन्थियों 4:8 में यू लिखा है कि प्रभु जब दोबारा आयेगा ''तो वह अन्धकार की छिपी हुई बातें ज्योति में दिखाएगा, और मनों की मतियों को प्रगट करेगा।'' आडंबरी व्यक्ति (Hypocrite) का अर्थ है ''अपने आप को छिपाना'' तथा यूनान में जो ड्रामे इत्यादि होते थे वहां से इस शब्द की उत्पत्ति हुई थी, अर्थात एक अभिनेता अपना भेष बदलकर भांति-भांति के वस्त्र पहनकर अपने आप को इस प्रकार से दिखाएगा जैसा वह वास्तव में है नहीं। यारोबाम की पत्नी ने भी परमेश्वर को धोखा देकर इसी प्रकार की मूर्खता की थी।

II अपने मन को दो जगह लगाने का पाप अर्थात पूरे मन से प्रभु की सेवा न करना-

1. आरम्भ से ही परमेश्वर की यह इच्छा रही है कि मनुष्य उसकी सेवा पूर्ण मन से करें, तौभी हमेशा यह देखा गया है कि लोग परमेश्वर से तथा संसार से दोनों से प्रेम करना चाहते हैं। जिस व्यक्ति का मन दोनों तरफ़ होता है वह परमेश्वर से अपना सम्बन्ध इसलिये रखता है ताकि कोई कठिनाई या आपत्ति आने पर वह उसे याद कर सके। वह चाहता है कि उसके दो धर्म हो अर्थात उसका एक धर्म तो मज़े उड़ाने के लिये हो तथा दूसरा धर्म मुसीबत पड़ने पर प्रभु से सहायता मांगने के लिये हो। क्यों नहीं यारोबाम सहायता के लिये बेतेल तथा दान के देवताओं के पास गया? क्योंकि वह स्वयं चाहता था कि वह बहुत लोकप्रिय हो तथा बहुत मज़े करे, परन्तु

मुसीबत पड़ने पर वह परमेश्वर के पास सहायता के लिये जाना चाहता था। जब दिन अच्छे होते हैं तो हम शैतान के साथ-साथ चलते हैं परन्तु कठिन समय आने पर क्यों नहीं हम सहायता के लिये शैतान के पास जाते? क्योंकि हम भली-भांति जानते हैं कि वह हमारी सहायता नहीं कर सकता, जिस प्रकार से यारोबाम भी यह जानता था कि दान और बेतेल के देवताओं से उसे कोई सहायता नहीं मिल सकती थी। इसलिये, यदि हम चाहते हैं कि तूफ़ान आने पर परमेश्वर हमारे साथ रहे तो क्या हमें भी तूफ़ान आने से पहले उसके साथ नहीं होना चाहिये? इस बात पर ज़रा विचार कीजिये।

2. **परमेश्वर ने मानवता को दो हिस्सों में बांटा है।** नूह के दिनों में दो प्रकार के लोग थे, धर्मी तथा अधर्मी। हम या तो चौड़े मार्ग पर चल रहे हैं या फिर सकरे मार्ग पर चल रहे हैं। (मत्ती 7:13-14)। हम अपना घर बालू पर अथवा चट्टान पर बना रहे हैं। (मत्ती 7:24-27)। हम या तो यीशु के साथ हैं या फिर उसके विरूद्ध हैं (मत्ती 12:30)। न्याय के दिन या तो हम उसकी दाहिनी ओर खड़े होंगे या फिर बाई ओर (मत्ती 25:31-46)। बाइबल के इन पदों को जानने के बावजूद भी आज अनेक लोग एक चौड़े मार्ग के बीच में चल रहे हैं-उनके अनुसार न वे अधिक अच्छे हैं और न अधिक बुरे हैं- तथा वे बहुत खुश हो कर यह कहते हैं कि हम आत्मिक रूप से बिल्कुल ठीक से चल रहे हैं। बाइबल में हमें इस प्रकार की कोई भी शिक्षा नहीं मिलती।

3. **''कोई भी मनुष्य दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता:** ''क्योंकि वह एक से बैर और दूसरे से प्रेम रखेगा, व एक से मिला रहेगा, और दूसरे को तुच्छ जानेगा'', ''तुम परमेश्वर और धन दोनों की सेवा नहीं कर सकते'' (मत्ती 6:24)। ''तुम न तो संसार से और न संसार में की वस्तुओं से प्रेम रखो: यदि कोई संसार से प्रेम रखता है तो उस में पिता का प्रेम नहीं है।'' (1 यूहन्ना 2:15)। जब संसार के प्रति हमारा प्रेम बढ़ने लगता है तब परमेश्वर के प्रति हमारा प्रेम घटने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक है। जब हमारा प्रेम परमेश्वर के प्रति बढ़ता है तब हमारी इच्छा में यह तीव्रता लाता है ताकि हम परमेश्वर के निकट आयें तथा उन बातों से दूर रहें जो हमें आत्मिक रूप से नष्ट करती हैं-चाहें वह एक अनुचित मनोरंजन ही क्यों न हो, या अनुचित साहित्य हो, या फिर सांसरिक लोगों के साथ हमारा उठना-बैठना हो अथवा गलत प्रकार की बातचीत अर्थात कोई भी ऐसी बात जो हमारे मन को प्रभु से दूर ले जाती है।

III मन न फिरानेवाले आशीष के उस खोजी को क्या उत्तर मिला–

यारोबाम और उसकी पत्नी चाहते थे कि परमेश्वर की आशीष उन्हें बड़ी आसानी से मिल जाये। वे दोनों अपनी बुराई से मन फिराये बिना ही प्रभु से आशीष चाहते थे। हमें कहीं पर भी यह संकेत नहीं मिलता कि वे अपनी मूर्तियों को छोड़ने के लिये तैयार थे, तथा अपनी बुराई के मार्ग को छोड़कर अपने आप को प्रभु को पूर्ण रूप से देना चाहते थे। फिर भी उनको प्रभु की सहायता का लालच था। मनुष्य के विषय में यह बात सदा सच रही है, कि मुसीबत पड़ने पर वह परमेश्वर से सहायता चाहता है, परन्तु बिना प्रभु की आज्ञा माने उसे कुछ नहीं मिलेगा। ''जो मुझसे, हे प्रभु, हे प्रभु कहता है, उनमें से हर एक स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करेगा, परन्तु वही जो मेरे स्वर्गीय पिता की इच्छा पर चलता है (मत्ती 7:21)। अपनी प्रार्थना में हम परमेश्वर से आशीष मांगते हैं परन्तु सुलैमान यह कहता है कि ''जो अपना कान व्यवस्था सुनने से फेर लेता है, उसकी प्रार्थना घृणित ठहरती है'' (नीतिवचन 28:9)।

2. **जो व्यक्ति मन नहीं फिराता परमेश्वर उसकी प्रार्थना को कभी नहीं सुनता**– यारोबाम तथा उसकी पत्नी अपने पुत्र के लिये आशीष तो चाहते थे, परन्तु बुराई से मन नहीं फिराना चाहते थे, इसलिये परमेश्वर ने उनकी बिनती सुनने से इन्कार कर दिया था। जब तक मनुष्य मन नहीं फिराता परमेश्वर उसके पापों को क्षमा नहीं करता और न ही अपनी आशीष उसे देता है। पापी मनुष्य को उद्धार पाने के लिये मन फिराना बहुत आवश्यक है। उद्धार पाने की जो शर्तें हैं उनमें से ''मन फिराना'' भी एक शर्त है (प्रेरितों 2:38;8:22)। पापों की क्षमा प्राप्त करने से पहिले मन फिराना आवश्यक है। मन फिराने का अर्थ क्या है? इसका अर्थ है अपने मन को बदलना, तथा अपने जीवन को बिल्कुल से बदल देना। मन फिराना सब आज्ञाओं में से एक बहुत कठिन आज्ञा है, तथा इसको मानने में लोगों को इसलिये कठिनाई होती है क्योंकि इस आज्ञा को मानने से उन्हें अपना कुछ त्याग करना पड़ेगा। मन फिराना बहुत आवश्यक है। यदि हम अपने स्वर्गीय पिता से आशीष चाहते हैं तो हमें अपना मन फिराना चाहिये।

IV परमेश्वर का वचन स्थिर है–

अपने पुत्र की मृत्यु के विषय में की गई भविष्यवाणी को सुनकर जब यारोबाम की पत्नी घर वापस लौट रही थी तो उसने बड़ी ही चाहत के साथ यह सोचा होगा कि: ''शायद भविष्यदूक्ता गलत बोल रहा है। मेरा बच्चा नहीं मरेगा, वह जीवत

रहेगा।'' लेकिन अपने मन में वह यह भी जानती थी कि परमेश्वर का वचन स्थिर है, उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। शायद उसे भविष्यदूक्ता की बात सुनकर आश्चर्य हो रहा था, परन्तु जब यही भविष्यवाणी पूरी हुई होगी तब उसका सब सन्देह दूर हो गया होगा। जैसे ही उसने घर की डेवढ़ी पर अपने पांव रखे उसी समय उसके पुत्र की मृत्यु हो गई।

1. **परमेश्वर ने हमें बहुत सारी चेतावानियां दी हैं**, तौभी आज बहुत से लोग नास्तिक हैं। हव्वा के समय से लेकर आज तक, शैतान का शाक्शिाली हथियार यह है कि वह लोगों को निश्चय दिलाकर कहता है कि पाप करने से डरो मत, पाप का आनन्द उठाओ, इससे तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा, और परमेश्वर की चेतावनियों पर ध्यान देना कोई आवश्यक बात नहीं है। एक नास्तिक चाहे ज़ोर-ज़ोर से गुस्से में लाल होकर परमेश्वर की निन्दा करे, परन्तु ऐसा करने से वह परमेश्वर के वचन को नहीं बदल सकता। वह शायद अपने विषय में यह आज्ञा दे कि उसकी मृत्यु के पश्चात उसकी राख समुन्द्र में डाल दी जाये तथा परमेश्वर की निन्दा करते हुये वह उसे यह चेतावनी दे कि परमेश्वर अब न्याय के दिन तू मुझे कैसे ढूंढेगा, परन्तु सत्य तो यह है कि वह मूर्ख परमेश्वर की शक्ति को नहीं पहचानता। एक बार की बात है कि एक व्यापारी ने एक कम्पनी से डाक द्वारा एक बैरोमीटर मंगवाया। यह बैरोमीटर काफ़ी महंगा था। जब उसने इस मौसम बताने वाले यंत्र को देखा तो उसका संकेत देने वाला सूचक पूरी तरह से एक ओर झुका हुआ था। उसे यह देखकर बहुत ही गुस्सा आया और उसने उस बैरोमीटर को कम्पनी को वापस भिजवा दिया। उसी दिन जब शाम होने वाली थी अचानक ज़ोर से तूफ़ान आया तथा शहर का बहुत सा भाग नाश हो गया। इस इन्सान के पास बहुत सारा समय था ताकि वह सब कुछ ठीक-ठाक कर लें क्योंकि बैरामीटर के संकेत के अनुसार एक बहुत बड़ा तूफ़ान आने वाला था, परन्तु उसने उस बैरामीटर पर विश्वास नहीं किया जो तूफ़ान या आने का संकेत दे रहा था। यहां विशेष बात यह है कि बैरोमीटर पर क्रोधित होने से तथा उसको तोड़ देने से उस तूफ़ान को रोका नहीं जा सकता था।

2. यदि कोई परमेश्वर की चेतावनियों पर विश्वास नहीं करता तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह उन्हें पूरा होने से रोक सकता है। आरम्भ से ही मनुष्य को यह पाठ समझने में कठिनाई हुई है। मनुष्य अक्सर इन प्रश्नों को पूछता है जैसे क्या न्याय का दिन आने वाला है? परमेश्वर कहता है कि न्याय का होना नियुक्त है और ऐसा अवश्य होगा। क्या सबसे अपने कार्यों का जो उन्होंने अपनी देह के द्वारा किये है जवाब देना पड़ेगा? परमेश्वर कहता है, हां। क्या दुष्ट लोग अनन्तकाल के विनाश

में जायेंगे? परमेश्वर कहता है, हां। क्या दुष्ट लोग अनन्तकाल के विनाश में जायेंगे? प्रभु का उत्तर है- हां। क्या वह धर्मियों के लिये स्वर्ग तैयार कर रहा है? वह कहता है, हां मैं ऐसा कर रहा हूं। क्या परमेश्वर के वचन पर हमें पूर्ण विश्वास है?

V. मृत्यु को देखते ही हमारे चेहरे पर गंभीरता छा जाती है-

1. पुत्र की बीमारी तथा मृत्यु यारोबाम तथा उसकी पत्नी को प्रभु के पास वापस ला सकती थी क्योंकि मृत्यु को देखते ही मनुष्य बहुत गंभीर हो जाता है। उसके चेहरे पर तुरन्त परिवर्तन दिखाई देने लगता है। जब कैन ने अपने भाई हाबिल को मरा हुआ देखा होगा तो उसे कितना बड़ा धक्का लगा होगा, क्योंकि वह अपने भाई की मरी हुई देह के पास खड़ा हुआ पहिली बार मृत्यु को देख रहा था। आज अनेक लोग मृत्यु की गंभीरता को समझते हुए प्रभु के पास वापस लौट आये हैं, और यही बात यारोबाम भी सोच सकता था। वह उस बात को याद कर सकता था जो परमेश्वर के भविष्यदूक्ता ने यरूशलेम के बाहर खड़े होकर उससे कही थी: कि 'यदि तू मेरे दास दाऊद की नाई मेरी सब आज्ञाएं माने, और मेरे मार्गो पर चले, और जो काम मेरी दृष्टि में ठीक है, वही करे, और मेरी विधियां और आज्ञाएं मानता रहे, तो मैं तेरे संग रहूंगा'' (1 राजा 11:38)। यदि वह प्रभु की प्रतिज्ञा को याद रखता तो वही प्रतिज्ञा उसे वापस प्रभु के पास लाने का कारण हो सकती थी, क्योंकि वह यह जानता था कि प्रभु का मार्ग क्या है, परन्तु पाप में वह इतना जकड़ चुका था कि वह उसमें से निकलना नहीं चाहता था। प्रत्येक जन मृत्यु के विषय में बार-बार सुनता है तथा अपने आस-पास मृत्यु को देखता है इसलिये प्रत्येक मनुष्य को गंभीरता पूर्वक यह सोचना चाहिए कि मृत्यु के पश्चात मेरी आत्मा कहां जायेगी?

1. मृत्यु के विषय में हम अनेक बातें जानना चाहते हैं- यारोबाम के परिवार के विषय में अनेकों प्रश्न पूछे जा सकते हैं। क्योंकि यारोबाम के धर्मी पुत्र को ले लिया गया था तथा अधर्मी पुत्र और माता को छोड़ दिया गया? हम नहीं जानते, ऐसा क्यों हुआ, परन्तु हम यह कह सकते है। कि शायद परमेश्वर अपने अनुग्रह के द्वारा यारोबाम को तथा सारे इस्राएल को मन-फिराव का अवसर देना चाहता था ताकि वे अपनी आत्मिक स्थिति को सुधार सकें। सारे इस्राएलियों ने उस जवान राजकुमार के लिये बहुत विलाप किया। इससे बढ़कर यदि वे अपनी आत्मिक स्थिति पर विलाप करते तो यह उनके लिये बहुत अच्छा होता । वह धर्मी राजकुमार उन विलाप करने वाले पापी लोगों से बहुत अच्छा था। हमारे सीमित विचार मृत्यु का अर्थ पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते, परन्तु यह एक ऐसी आवश्यक

बात है जिसका अनुभव प्रत्येक मनुष्य करता है। हमारे प्रिय जन जो इस संसार से चले गये हैं, उनके विषय में हम बहुत सी बातें जानना चाहते हैं, जिस प्रकार से एक कवि ने इस प्रकार से कहा था कि : ''प्रभु यीशु यदि यह सम्भव होता कि हम कुछ क्षणों के लिये उन आत्माओं से मिल सकते जो यहां से चली गई हैं ताकि वे हमें यह बता सकतीं है कि वे कहां हैं और कैसी है।''

हम जानते हैं कि मृत्यु के द्वारा जब एक दरवाज़ा बन्द हो जाता है तो दूसरा दरवाज़ा हमारे सामने खुल जाता है। हमारा सीमित ज्ञान हमें यह सिखाता है कि परमेश्वर की सिद्ध योजना के द्वारा हम इस पृथ्वी पर से सब कुछ छोड़कर सदा के लिये एक अनन्त स्थान पर चले जाते हैं। मृत्यु को शत्रु या एक मित्र कहा जाता है, तथा यह हमारे देखने पर निर्भर करता है कि हम मृत्यु को किस नज़रिये से देखते हैं। एक मसीही की आशा क्या है? इसका निचोड़ हम प्रेरित पौलूस के इन शब्दों में देखते हैं कि ''मेरे लिये जीवित रहना मसीह है और मर जाना लाभ है।'' (फिलिप्पियों 1:21)।

क्या आप ऐसा सोचते हैं कि मसीही लोग परमेश्वर से आशीषें मांगने के दोषी हैं, जबकि वे लगातार अनुचित कार्य करने में लगे रहते हैं तथा उनसे दूर रहने का प्रयत्न तक नहीं करते।

v v v

क्या आप ऐसा सोचते हैं कि आज बहुत से कार्य लोग इसलिये कर रहें है क्योंकि या तो वे परमेश्वर के वचन पर सन्देह करते है या फिर परमेश्वर के वचन पर विश्वास नहीं है।

इज़ेबेल (Jezebel)

अक्सर ऐसा कहा जाता है: कि "आदमियों के सोचने में ऐसा अन्तर है जैसे स्वर्ग तथा पृथ्वी में, परन्तु औरतों के सोचने में ऐसा अन्तर है जैसे स्वर्ग तथा नर्क में" शायद बुरी स्त्रियां कई बुरे आदमियों से भी अधिक बुरी दिखाई देती हैं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत सी अच्छी स्त्रियां भी हैं और अनेकों स्त्रियां बहुत अच्छी होती हैं। परमेश्वर ने अपने वचन में उन प्रभावशाली तथा भक्त स्त्रियों का चित्रण किया है जिनके जीवन लगातार स्वर्ग के साथ जुड़े हुऐ थे। परन्तु वह उन स्त्रियों के विषय में भी बताता है जो अपनी नीचता के कारण बहुत गिर चुकीं थीं तथा उनकी स्थिति काफ़ी अपमानजनक थी। प्रकाशितवाक्य की पुस्तक में सब प्रकार के पापों की तुलना इज़ेबेल के नाम से की गई है। (प्रकाशित 2:20)। वह एक राजकुमारी थी जिसका विवाह अहाब से हुआ था, जो इस्राइएलियों का राजा था। वह हठधर्मी बनकर इस्राएल में आई ताकि परमेश्वर की साधारण उपासना को नाश करके उसके स्थान पर बाल देवता की उपासना को आरम्भ करवा दे। उसने अपने इस कार्य में बहुत सफ़लता भी प्राप्त की थी क्योंकि लिखा है कि सचमुच अहाब के तुल्य और कोई नहीं था जिसने अपनी पत्नी ईज़ेबेल के उकसाने पर वह काम करने को जो यहोवा की दृष्टि में बुरा है अपने आप को बेच डाला था? (1 राजा 21:25)। ईज़ेबेल में वे अच्छे गुण नहीं थे जो अक्सर एक अच्छी तथा दूसरों की भावनाओं का आदर करने वाली स्त्री में पाये जाते हैं। वह एक घिनौनी तथा क्रोध करने वाली स्त्री थी। वह एक नाश करने वाली स्त्री थी क्योंकि जो भी उसका विरोध करने सामने आया उसे उसने अपने रास्ते से हटा दिया तथा वह बुराई का एक ऐसा फव्वारा बन गई थी जिसमें से बुराई इस्राएल तथा यहूदा के बीच निरन्तर बहती जा रही थी और यह बुराई बहुत समय तक होती रही।

अहाब तथा ईज़ेबेल की शक्ति का विरोध करने वाला केवल एक ही अकेला व्यक्ति था-और वो था "एलिय्याह नबी", यद्यपि वह एक निडर परमेश्वर का जन था तौभी वह इस स्त्री के क्रोध से बचने के लिये उस स्थाान से भाग गया था। (1 राजा 19:4-18)। वह एक चरित्रहीन तथा दुष्ट स्त्री थी और जब भी ईज़ेबेल का नाम दिमाग़ में आता है अक्सर तीन विशेष घटनाएं हमें याद आती हैं: (1) एलिय्याह नबी तथा ईज़ेबेल के (बाल देवता) भविष्यदूक्ताओं के बीच मुकाबला

जो कर्म्मेल पर्वत पर हुआ था (1 राजा 18:17-40), (2) नाबोत की दाख की बारी की घटना (1 राजा 21:1-16), (3) तथा उसकी भयंकर मृत्यु (2 राजा 9:30-37)। यह घिनौना तथा अपवित्र शासन जो लगभग तीस वर्षों तक चला हमारे ध्यान को इन तीन घटनाओं की ओर ले जाता है।

I हम किस प्रकार से यह जानते हैं कि ईज़ेबेल को दिल की बीमारी थी?

1. **मनुष्य के दो रूप हैं**- एक बाहरी तथा दूसरा आत्मिक रूप (2 कुरिन्थियों 4:16)। आत्मिक मन के द्वारा हम बातों को समझते हैं और उन पर विचार करते हैं, प्रेम करते हैं तथा एक निश्चय बनाकर आज्ञा को मानते हैं। मन से ही हमारा सब प्रकार का व्यवहार प्रगट होता है। "सबसे अधिक अपने मन की रक्षा कर, क्योंकि जीवन का मूल स्रोत वही है" (नीतिवचन 4:23)।भला मनुष्य मन के भले भण्डार से भली बातें निकालता है, और बुरा मनुष्य बुरे भण्डार से बुरी बातें निकालता हैं।" (मत्ती 12:35)। "क्योंकि कुचिन्ता, हत्या, परस्त्रीगमन, व्याभिचार, चोरी, झुठी गवाही और निन्दा मन से ही निकलती है" (मत्ती 15:19)।

2. **परमेश्वर चाहता है कि हमारा आत्मिक मन तन्दरूस्त हो,** क्योंकि वह सारी मनुष्य जाति को इसी तरह से देखता है अर्थात उसे हमारे आत्मिक मन की चिन्ता है। "क्योंकि यहोवा का देखना मनुष्य का सा नहीं है, मनुष्य तो बाहर का रूप देखता हैं, परन्तु यहोवा की दृष्टि मन पर रहती है" (1 शमूएल 16:77)। ईज़ेबेल घमण्डी तथा शाही पोशाक पहने हुये थी, परन्तु परमेश्वर इससे भी अधिक गहराई से उसके मन को जानता था। क्योंकि किसी के भी मन की हालत उसके व्यवहार से पता चलती है और हम जानते हैं कि उसका मन सही नहीं था।

II उसका मन क्यों सही नहीं था? क्योंकि:

1. **वह गलत परमेश्वर की उपासना करती थी।** वह एक ऐसी "धार्मिक" स्त्री थी, जिसने अधिकतर अनुचित कार्य धर्म के नाम से ही किये थे। केवल धार्मिक होना ही काफ़ी नहीं है। इतिहास से हमें पता चलता है कि अनेकों काले धंधे लोगों ने धर्म के नाम में ही किये थे। ईज़ेबेल के दृढ़ विश्वास का आधार उसकी त्रुटियां थीं, तथा अपने देवताओं का समर्थन उसने इसलिये किया था क्योंकि वह हठधर्मी थी। परमेश्वर ने कहा है, कि "तु मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर करके न मानना" (निर्गमन 20:3)। ईज़ेबेल के समय से बाल देवता की उपासना के विषय में सोचकर हम भयभीत हो जाते हैं। परन्तु आज बहुत से वास्तव में इस प्रकार की उपासना करने के दोषी लोग हैं। वे किसी न किसी रूप में मूर्तिपूजा कर रहे हैं। जो भी बात हमें परमेश्वर से अधिक सर्वश्रेष्ठ लगती हैं वह हमारे लिये एक

मूर्ति बन जाती है। कुछ लोग आनन्द देवता की उपासना करते हैं "और न तुम मूरत पूजने वाले बनो, जैसे कि उनमें से कितने बन गये थे, जैसा लिखा है, कि लोग खाने-पीने बैठे, और खेलने-कूदने उठे" (1 कुरिन्थियों 10:7)। " और वे परमेश्वर के नहीं वरन सुखविलास ही के चाहने वाले होंगे (2 तीमुथियुस 3:4)।" उनका अन्त विनाश है उनका ईश्वर पेट है, वे अपनी लज्जा की बातों पर घमण्ड करते हैं, और पृथ्वी की वस्तुओं पर मन लगाए रहते हैं" (फिलिप्पियों 3:19)। लोभ करना भी मूर्ति पूजा के बराबर है (कुलुस्सियों 3:5)। अनेक लोग परमेश्वर से अधिक अपने परिवारों से प्रेम करते हैं (मत्ती 10:37)। परन्तु परमेश्वर हमारे लिये या तो सबसे प्रथम है या फिर कुछ भी नहीं है। यह एक अनन्त सत्य है कि कोई भी मनुष्य दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकता।

2. **वह स्वार्थी तथा हठी थी,** इसलिये वह परमेश्वर क े नियमों की तथा किसी भी मनुष्य की कोई परवाह नहीं करती थी। अपनी इच्छा को मनवाने के लिये वह कुछ भी करने को तैयार हो जाती थी, चाहे उस बात का परिणाम कुछ भी हो, अर्थात अपनी मनमानी करने से उसे कोई भी नहीं रोक सकता था। उस समय में प्रत्येक जन को ईज़ेबेल के ईशारों पर चलना पड़ता था, जैसा वह चाहती थी वैसा ही होता था, इस प्रकार का व्यवहार उन लोगों के लिये बहुत ही दुखपूर्ण होता था जिनके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं था। स्वार्थपन की गहरी जड़ों से कई प्रकार के घृणित पाप उगने लगते हैं। इस प्रकार के कुछ पापों के विषय में ज़रा सोचिये: जैसे लोभ, ईज़ेबेल का जीवन इस बात को प्रमाणित करता है कि जब किसी का मन स्वार्थ से भर जाता है, तो वह स्वार्थ में डूबता चला जाता है तथा यहां तक डूबने लगता है कि उसकी कोई सीमा नहीं रहती है अर्थात ऐसा व्यक्ति लोभी बन जाता है।

3. **वह लोभी थी**- उसने तथा अहाब ने नाबोत की दाख की बारी का लोभ किया (1 राजा 21:1-14)। एक रानी होने के नाते ईज़ेबेल यह सोचती थी कि वह अपने अधिकार से जो मन चाहे कर सकती है, परन्तु नाबोत का भी अपना एक अधिकार था और ईज़ेबेल इस बात को नहीं समझती थी। बड़ी ही आसानी से उसने वो ले लिया जो उसे चाहिये था। दूसरों के जीवन में उन्नति को देखकर जलना आज एक आम बात हो गई है, परन्तु बाइबल के अनुसार इसे 'हड्डियों की संड़ाध" कहा गया है और यह एक ऐसा रोग है जो धीरे-धीरे रोगी को नाश करने लगता है।

4. **वह अपने पति पर रौब जमाती थी तथा उसने उसे अनुचित कार्य करने के लिये भी उकसाया था।** (1 राजा 21:24)। वह अपने पति को हमेशा नीचा दिखाती थी (1 राजा 21:7) तथा उसने वो सारा अधिकार स्वयम ले लिया था जो उसके पति का था। कलीसिया में आज अनेकों बार समस्याएं इसलिये पैदा हो जाती

है क्योंकि कई स्त्रियां अपने पतियों को उल्टी पट्टी पढ़ाती है। अहाब के साथ भी ऐसा ही हुआ था" उसकी पत्नी ईज़बेल ने उसे उकसाया" परमेश्वर यह कभी नहीं चाहता कि पत्नी अपने पति पर अधिकार चलाये (1 पतरस 3:1-5), और यदि हम परमेश्वर के बताये गये सिद्धांतों पर चलें तो इस प्रकार की अनेकों बुराईयों से बचा जा सकता है। यदि अहाब का विवाह किसी और स्त्री से हुआ होता तो शायद उसका जीवन बिल्कुल भिन्न होता, क्योंकि उसका मन ईज़ेबेल से अधिक अच्छा था। उसके जीवन में अनेकों बार ऐसे अवसर भी आये थे जब वह अपनी बुराई से मन फिराना चाहता था।

5. **वह बेईमान थी तथा चालाकी से मूसा की व्यवस्था को इस्तेमाल करना चाहती थी** और उसने नाबोत पर झूठा इल्ज़ाम लगाया (1 राजा 21:10)। धर्म के नाम का सहारा लेकर ही उसने हत्या करवाई थी। आज भी बहुत से अविश्वासी लोग अपनी किसी बात को उचित ठहराने के लिये बाइबल का सहारा लेते हैं तथा येही लोग परमेश्वर तथा उसके वचन का तिरस्कार भी करते हैं। एक दिन बाइबल की क्लास में अध्यापिका ने एक छोटे लड़के से बाइबल की आयत बोलने को कहा। बड़े ही आश्चर्य के साथ लड़का कुछ क्षणों के लिये तो हिचकिचाया और तब उसने यह बोला कि "झूठ बोलना परमेश्वर के सम्मुख घृणित बात है, परन्तु कोई समस्या आने पर झूठ हमेशा सहायता करता है"। वास्तव में वह लड़का कुछ क्षणों के लिये चकरा गया था, परन्तु जो बात उसने उस समय कहीं थी वो ईज़बेल का वास्तविक जीवन था।

6. **वह बड़ी कठोर तथा क्रूर थी।** एक पत्थर भी लगातार पानी के बहाव से हट जाता है, परन्तु एक कठोर मन ऐसा होता है जिस पर कोई असर नहीं पड़ता। वे लोग जो कमज़ोर तथा भ्रष्ट होते हैं, क्रूर भी होते हैं, तथा ईज़ेबेल का मन भी ऐसा ही था, एक ऐसा मन जो घमण्डी तथा निर्दयी था। जो लोग अपना उद्देश्य प्राप्त करने के लिये किसी भी अनुचित कार्य को करने से नहीं हिचकिचाते, वे कठोर निर्दयी तथा दुष्टता से भरे हुये होते हैं और इस प्रकार के लोगों के सामने दूसरों के अधिकारों का कोई महत्व नहीं होता, तथा वे दूसरों के जीवनों को भी कोई महत्व नहीं देते अर्थात किसी की हत्या करना उनके लिये मामुली सी बात होती है।

7. **इस प्रकार के कठोर मन ने ही ईज़ेबेल को हत्या करने के लिये प्रेरित किया था**- जितने भी लोगों ने उसे अप्रसन्न किया था उन्होंने उसके क्रोध के कारण दुख उठाया था, तथा प्रभु के भक्त एलिय्यायह को भी अपना प्राण लेकर भागना पड़ा था। जितने भी लोग दूसरों से घृणा करते हैं वे ईज़ेबेल के ही मार्ग पर चल रहे हैं: "जो कोई अपने भाई से बैर रखता है, वह हत्यारा हैं, और तुम जानते हो, कि किसी हत्यारे में अनन्त जीवन नहीं रहता।" (1 यूहन्ना 3:15)।

8. **वह झगड़ा करवाने वाली स्त्री थी**-यद्यपि अहाब ने एलिय्याह पर यह दोष लगाने का प्रयत्न किया था कि उसी के कारण इस्राएल में कष्ट हुआ है, परन्तु वास्तव में कष्ट का कारण अहाब और ईज़ेबेल स्वयं थे (1 राजा 18:17-18)। ईज़ेबेल जहां कहीं भी गई वहां झगड़े हुए तथा गड़बड़ी उत्पन्न हाती थी। झगड़े की परमेश्वर के वचन में निन्दा की गई है तथा वह इससे बैर करता है। (नीतिवचन 6:19)'' झगड़ा करने में जल्दी न करना नहीं तो अन्त में जब तेरा पड़ोसी तेरा मुंह काला करे तब तू क्या कर सकेगा?'' (नीतिवचन 25:8)।

9. **वह दूसरों का अपमान करती थी तथा धार्मिक अगुवों का मज़ाक उड़ाती थीं।** वह एलिय्याह तथा परमेश्वर के नबियों से घृणा करती थी। बुराई करने वालों ने हमेशा ही धर्मी लोगों को सताया है। पापी लोग धर्मी लोगों से इसलिये घृणा करते हैं क्योंकि धर्मी लोग उनसे अच्छे हैं।

III बुराई करने वाला स्वयं अपने आप को नाश करता है-

1. वास्तव में परमेश्वर के नियम को तोड़ने वाली जैसी कोई बात है ही नहीं। हम स्वयं अपने को तोड़ते हैं जब हम परमेश्वर के नियम के विरूद्ध जाते हैं। उसके नियम वैसे के वैसे ही हैं तथा वे कभी बदलते नहीं है। ईज़ेबेल के जीवन में हम इस बात को बड़ी ही सफ़ाई से देखते हैं। उसका जीवन टूटा हुआ था लेकिन परमेश्वर का नियम बिना बदले हुये वैसा का वैसा ही था। इसलिये दुष्ट लोग भी हमें यह सिखा सकते हैं कि हम उनका अनुसरण न करें तथा उनकी बुराईयों से दूर भागें। जब हम पाप की भयंकर विनाश की शक्ति को समझ जाते है तब यह बात हमें धार्मिकता की और बढ़ने के लिये प्रोत्साहित करती है। ''दुष्ट अपने ही अधर्म के कर्मों से फंसेगा, और अपने ही पाप के बन्धनों में बन्धा रहेगा। (नीतिवचन 5:22)। ''परन्तु जो मेरा अपराध करता है, वह अपने ही पर उपद्रव करता है- (नीतिवचन 8:36)। दुष्टता विनाश को लाती है, तथा बुराई करने वाला अपनी ही गर्दन में रस्सी को कसता है। वास्तव में जो भी हमने इस जीवन में बोया है उसकी सारी-फसल इस जीवन में ही नहीं काटी जाती क्योंकि बहुत से दुष्ट लोग भी इस संसार में फल-फूल रहे हैं। यद्यपि बुराई का पूरा फल अभी नहीं मिलेगा जब तक कि न्याय का दिन न आ जाये। कुछ लोगों ने अपने जीवनों में जैसा बोया था वैसा ही काट रनहे हैं और यह बात संसार में हमें अक्सर देखने को मिलती हैं।

यह संसार उन लोगों से भरा हुआ है जो अपने ही लिये विनाश के बीच बोते हैं। शराबी तथा पेटू लोग अपना स्वास्थ्य स्वयंम खराब करते हैं। जो व्यक्ति गप्पें मारता है और इधर-उधर जाकर बुराईयां करता है, वे अपने अनेक अच्छे मित्रों को खो देता है। जो सुस्ती करता है तथा काम नहीं करता वह अपने को निर्धन बना

लेता है, और इस प्रकार के कई बीच है जो इन्सान अपने ही विनाश के लिये बोता है। परमेश्वर के बनाये हुये जितने भी नियम हैं यदि हम उन्हें तोड़ते हैं, तो हम विनाश की कटनी काटेंगे। लोगों को जीने के लिये परमेश्वर ने अपने कुछ निर्देश दिये हैं। प्रेमी सृजनहार ने अपने लोगों को प्रसन्न रहने की एक ईश्वरीय कुंजी दी है तथा यह निर्देश उसने हमें इसलिये नहीं दिये कि वह हम पर तानाशाही करें। मनुष्य अपना मार्ग चुनने के लिये स्वतंत्र है, परन्तु अपने व्यवहार के नतीजे को वह स्वयं नहीं चुन सकता। यह परमेश्वर के द्वारा ठहराया गया है। दुष्ट को उसकी दुष्टता का दण्ड अवश्य मिलेगा, हो सकता है इसमें थोड़ी देर लगे, परन्तु वह दण्ड से बच नहीं सकता। इसी तरह से धर्मी को भी उसका प्रतिफल अवश्य मिलेगा।

2. यद्यपि ईज़ेबेल के बहुत से शत्रु थे। परन्तु वह स्वयं भी अपनी शत्रु थी- उसने यह सीखा था कि 'विश्वासघातियों को मार्ग कड़ा होता है'' (नीतिवचन 13:15) तथा परमेश्वर ठटठों में नहीं उड़ाया जाता: क्योंकि मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा'' (गलतियों 6:7)।

परमेश्वर ने मनुष्य को समझ दी है ताकि वह किसी भी कार्य को करने से पहले उस कार्य के परिणामों को समझ सके। ईज़ेबेल यह जानती थी कि उसके पास शान्ति नहीं है। एलिय्याह नबी ने किस प्रकार से उसके विषय में भविष्यवाणी की थी और वो भविष्यवाणी उसी प्रकार से पूरी हुई (1 राजा 21:23; 2 राजा 9:30-37)।

येहू को परमेश्वर ने राजा बनाया था, और उसे वह प्रभावित करना चाहती थी, लेकिन वह अपने इस कार्य में असफ़ल रही। उसके अपने ही परिवार के लोगों ने खिड़की से उसे नीचे गिरा दिया था। उसकी मृत्यु के पश्चात येहू ने यह आज्ञा दी थी कि ''जाओं उस स्रापित स्त्री को देख लो, और उसे मिट्टी दो, वह तो राजा की बेटी है''। परन्तु, ''जब वे उसे मिटटी देने गये तब उसकी खोपड़ी, पावों और हथेलियों को छोड़कर उसका और कुछ न पाया''। उसकी देह को कुत्तों ने खा लिया था जिस प्रकार से उसके विषय में भविष्यवाणी की गई थी ठीक वैसे ही उसके साथ हुआ। परन्तु सबसे अधिक दुख की बात यह है कि उसकी आत्मा खोई हुई थी अर्थात वह परमेश्वर से दूर थी।

3. **आज ईज़ेबेल का जीवन इस बात की गवाही देता है कि धार्मिक होना बुद्धिमानी है** तथा दुष्ट होना मूर्खता है। बुद्धिमान तथा मूर्ख वाले दृष्टांत में यीशु ने इसी बात के विषय में शिक्षा दी थी।

IV पाप छूत के रोग के समान है-

1. ईज़ेबेल ने स्वयं को ही नहीं बल्कि दूसरों को भी नाश किया था- वह अपने

पति तथा बच्चों के लिये नाश का कारण बनी, क्योंकि उन्हें भी वह बुराई की तरफ ले गई। उसके तीनों बच्चों का जीवन भी बहुत बुरा तथा दुखपूर्ण था। यदि उनकी मां उनके साथ न होती तो उनके लिये यह अच्छा होता, तथा अहाब यदि अपने आरंभिक जीवन में ही अपनी पत्नी से अलग हो जाता तो उसके लिये भी यह अच्छा होता।

2. **''एक पापी बहुत भलाई नाश करता है''** (सभापदेशक 9:18)। एक दुष्ट व्यक्ति की दुष्टता कितनी विनाशकारी हो सकती है, इस बात का अन्दाज़ा लगाना बहुत ही असम्भव है। जिस व्यक्ति का मन बुराई की ओर लगा रहता है वह खतरनाक समुद्री जन्तु आक्टोपस के समान है-अर्थात ऐसा व्यक्ति सीधे-साधे लोगों को कष्ट देता है, कमज़ोर लोगों को उनके विश्वास से दूर ले जाता है तथा जो लोग पाप में है उन्हें साहस देता है कि पाप से अपना मुख न फेरें। किस प्रकार का प्रभाव हम दूसरों पर छोड़ते हैं? बुरा या अच्छा? वास्तव में यह एक सोचने योग्य बात है।

3. **यदि हम स्वर्ग में प्रवेश करना चाहते हैं तो हमारे मन रोग-रहित होने चाहिये-** प्रत्येक व्यक्ति पापी है तथा बाइबल कहती है कि सबने पाप किया है। यदि मनुष्य अपने पापों में ही मर जाये तो सदा के लिये परमेश्वर से अलग होकर खों जायेगा। यदि हम अपने मन को अर्थात भीतरी मनुष्यत्व को सही नहीं करे तब हम किस प्रकार का मन लेकर अनन्तकाल में प्रवेश करेंगे?

हमारी आत्माएं रोगी हैं या रोग रहित? ज़रा सोचिये। हमारे अनुग्रहित तथा दयावन्त सृजनहार ने हमें पाप से बचाने के लिये एक ज़रिया दिया है अर्थात हमारे मनों को शुद्ध करने के लिये प्रभु यीशु का लोहू, जिसके सम्पर्क में हम विश्वास, पश्चाताप, अंगीकार तथा बपतिस्में के द्वारा आते हैं। (इब्रानियों 11:6, रोमियों 10:10, प्रेरितों 2:38, रोमियों 6:3,4)। यह सब कुछ जब शुद्ध मन से किया जाता है, तब परमेश्वर आत्मा को पाप जैसे रोग से यीशु के लोहू के द्वारा साफ़ करता है तथा इसके द्वारा वह अपने बच्चों के पापों को लगातार धोता रहता है (प्रेरितों 8:22, याकूब 5:16, यूहन्ना 1:7-8)।

4. मनुष्य की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यह है कि स्वर्ग में प्रवेश करने के लिये वह अपने मन को शुद्ध रखे। सर वाल्टर रेले को जब फांसी दी जा रही थी तब फांसी देने वालों ने उनसे पूछा था कि क्या वह चाहते हैं कि उनका सिर सीधी और झुका रहे? उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया ''कि यदि मन साफ़ है, तो इससे कुछ फ़रक नहीं पड़ता कि सिर किस ओर झुका है। यदि हम स्वर्ग में जाना चाहते हैं तो हमें अपने मनों को शुद्ध रखना चाहिये। ''धन्य हैं वे, जिन के मन शुद्ध हैं, क्योंकि वे परमेश्वर को देखेंगे''।

वशती (Vashti)

एस्तेर की पुस्तक एक नाटकीय तथा भावुक उपन्यास की तरह हैं । इस पुस्तक को अध्ययन करने के दो विशेष कारण हैं। पहिला कारण तो यह है कि इसका सम्बन्ध उस उद्धार से जुड़ा हुआ है, जो यीशु के जन्म के द्वारा होना था। इस पुस्तक के इतिहास में हमें फारस के विषय में भी पता चलता है। तथा बहुत सी पुरात्व खुदाईयां इस बात का प्रमाण है। दूसरा कारण यह है कि इसमें जिन चरित्रों का वर्णन है उनसे यह पता चलता है कि अच्छाई तथा बुराई के क्या परिणाम हो सकते हैं।

इस्राएलियों को बाबुल के लोगों ने बन्धुवाई में ले लिया था तथा इसके पश्चात बाबुल देश को फ़ारस द्वारा जीत लिया गया था। सारे यहूदी संसार में इधर-उधर तितर-बितर हो गये थे। ऐस्तेर भी उनमें से एक बन्धुवा थी जिसे इस्राएिलियों के साथ फ़ारस में ले जाया गया था तथा ऐस्तेर के द्वारा ही परमेश्वर ने इन लोगों को नाश होने से बचाया था। इस कहानी का आरम्भ वशती तथा उसके पति क्षयर्ष से होता है जो परशिया का राजा था।

क्षयर्ष अपने समय का एक बहुत ही शक्तिशाली राजा था और वह एक सौ सताईस प्रान्तों पर राज्य करता था। 33 ई सन तक परशिया संसार की एक बहुत बड़ी ताकत थी तथा इसके पश्चात सिकन्दर ने इसे जीत कर अपने कब्ज़े में ले लिया था। अपने राजभवन का धन और माहात्म्य के अनमोल पदार्थ दिखाने के लिये क्षयर्ष ने अपने सब हाकिमों और कर्मचारियों की जो उसके प्रान्तों के थे जेवनार की। और वह उन्हें ''बहुत दिन वरन एक सौ अस्सी दिनों तक अपने राजविभव का धन और अपने माहात्म्य के अनमोल पदार्थ दिखाता रहा''। राजभवन की बारी के आंगन में सात दिन तक उसने जेवनार की और सांतवें दिन, जब राजा का मन दाखमधु में मग्न था तब उसने सात खोजों को आज्ञा दी, कि ''रानी वशती को राजकुकुट धारण किए हुए राजा के सम्मुख ले आओ, जिससे कि देश देश के लोगों और हाकिमों पर उसकी सुन्दरता प्रगट की जाए, क्योंकि वह देखने में बहुत सुन्दर थी''।। खोजे के द्वारा राजा की इस आज्ञा को पाकर रानी वशती ने आने से इन्कार कर दिया और इस बात से राजा बहुत क्रोधित हुआ। (एस्तेर 1:11,12)।

तब राजा ने समय-समय का भेद जानने वाले पण्डितों से पूछा और उन्होंने

उसके विषय में राजा से कहा कि ''रानी, वशती ने जो अनुचित काम किया है, वह न केवल राजा से ही परन्तु सब हाकिमों से और उन सब देशों के लोगों से भी किया है जो राजा क्षयर्ष के सब प्रान्तों में रहते हैं। क्योंकि रानी के इस काम की चर्चा सब स्त्रियों में होगी और जब यह कहा जाएगा, कि राजा क्षयर्ष ने रानी वशती को अपने सामने ले आने की आज्ञा दी परन्तु वह न आई, तब सभी अपने पतियों को तुच्छ जानने लगेंगी-और आज के दिन फ़ारसी और मादी हाकिमों की स्त्रियां जिन्होंने रानी की यह बात सुनी है तो वे भी राजा के सब हाकिमों से ऐसा ही कहने लगेगीं- यदि राजा को स्वीकार हो, तो यह आज्ञा निकाले, कि रानी वशती राजा क्षयर्ष के सम्मुख फिर कभी आने न पाए और राजा पटरानी का पद किसी दूसरी को दे दे जो उससे अच्छी हो।'' राजा ने उनकी सलाह को मान लिया तथा आज्ञा दी कि ऐसा ही किया जाये। रानी वशती को उसके स्थान से हटा दिया गया लेकिन वह यह जानती थी कि जो उसने किया है वह उचित है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि वह यह जानती थी कि इस कार्य को करने का परिणाम क्या होगा। तौभी उसने राज महल के रीति-रिवाजों को नहीं माना, तथा लोगों के सामने अपने आप को प्रगट नहीं किया, क्योंकि महल में उस समय देश-देश के लोग आये हुये थे तथा वे सब दाखमधु पी रहे थे। इस रानी के जीवन से हम अनेकों महत्वपूर्ण पाठों को सीख सकते हैं। सबसे पहिले उसके पति के विषय में देखेंगे-

I राजा जिसके कारण यह संकट उत्पन्न हुआ था-

1. **'राजा का मनु दाखमधु से मगन था''।** यद्यपि उसने यह आज्ञा दी थी कि किसी को भी बरबस या ज़बरदस्ती नहीं पिलायी जायेगी, तौभी वहां उदारता से बहुतायत के साथ लोगों को शराब पिलायी गयी। राजा ने इतना दाखरस पी लिया था कि वह अपने संयम को ही खो बैठा था तथा वह अपने आपे में नहीं रह सका। उसका मानसिक संतुलन भी अब खो चुका था तथा स्वयं को उसने मूर्ख मना लिया था। शराब पीने से ऐसा ही होता है। नूह, जो कि परमेश्वर का एक भक्त था दाखमधु पीकर मतवाला हो गया था तथा पाप में डूब चुका था (उत्पत्ति 9:21)। शराब के द्वारा उत्पन्न होने वाली बुराईयों के अनेकों उदाहरणों को देखा जा सकता है तथा इसके विषय में यदि हम और अधिक जानना चाहते हैं तो हम अपने प्रतिदिन के समाचार पत्रों में पढ़ सकते हैं । पुलिस के द्वारा यह पता चला है कि अधिकतर अपराध जो युवाओं द्वारा किये जाते हैं, वे शराब के नशे मे आधी रात के बाद होते हैं। हिंसा की घटनाओं को रोका जा सकता है यदि माता-पिता अपने बच्चों पर कर्फ्यु लगाकर रखें तथा बच्चों को ऐसा कोई अवसर न दें कि वह शराब पी सकें।

शराब पीना हमारे राष्ट्र के लिये भी एक अपमानजनक बुराई है। आज तमाम संसार में इस आदत के शिकार करोड़ों लोग हैं। मान लीजिये यदि पन्द्रह युवाओं को एक लाईन बनाकर नदी के किनारे खड़ा करके यह समझाया जाये कि यदि वे नदी में दूसरी ओर तैरेंगे तो उनमे से कोई न कोई अवश्य ही डूब जायेगा। क्या आप चाहेंगे कि उन तैरने वाले बच्चों मे आपका भी बच्चा हो? क्या आप खतरे के इस संकेत पर ध्यान नहीं देंगे? जब हम बच्चों को पार्टी अथवा किसी और अवसर पर शराब पीने के लिये उत्साहित करते हैं तो यह एक बहुत अनुचित बात होती है क्योंकि आगे चलकर इसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। अमरीका के एक समाचार पत्र के आंकड़े के अनुसार जो 1962 में किया गया था-लगभग 1132 बच्चों में से 59 प्रतिशत बच्चे घरों तथा कारों में बैठकर शराब पीते हैं-18 वर्ष की आयु में वह रैस्टोरेन्ट तथा शराब के अड्डों पर पीने लगते है। और 45 प्रतिशत ने यह कहा कि उन्होंने सबसे पहिले शराब पीनी घर से ही शुरू की थी। जब डैडी ने उन्हें बियर पिलाई थी।

परमेश्वर शराब के विषय में कुछ कहना चाहता है। ''दाखमधु ठट्टा करने वाला और मदिरा हल्ला मचाने वाली है, जो कोई उसके कारण चूक करता है, वह बुद्धिमान नहीं है''। (नीतिवचन 20:1)। '' और दाखरस से मतवाले न बनो, क्योंकि इससे लुचपन होता है, पर आत्मा से परिपूर्ण होते जाओ'' (इफिसियों 5:18)। ''मतवालापन- ऐसे ऐसे काम करने वाले परमेश्वर के राज्य के वारिस न होंगे (गलतियों 5:21)।

2. **जिस प्रकार की आज्ञा राजा ने वशती को दी थी वो उस समय के सामाजिक रिवाज़ के विरूद्ध थी,** क्योंकि उस समय में स्त्रियां पुरूषों के साथ समारोहों में भाग नहीं लेती थीं। वह अपनी जिम्मेदारी को भली-भांति निभा रही थी, क्योंकि महल में आई दूसरी स्त्रियों का वह अतिथि -सत्कार कर रही थी, इस बात से हमें यह पता चलता है कि वह एक अच्छी रानी थी।

3. **उसने स्वामित्व के सिद्धान्त पर कोई ध्यान नहीं दिया**-उस समय में कोई भी स्त्री यदि बिना परदा किये हुये अपने पति के अतिरिक्त दूसरे पुरूषों के सामने आती थी तो इसे बड़ी लज्जा की बात माना जाता था। यदि वह अपनी पत्नी से सच्चा प्रेम करता तो वह कभी भी उसे इतना नीचे नहीं गिराता और न ही उसका अपमान करता।

4. **राजा ने अपने क्रोध के कारण जल्दबाज़ी में ऐसा अनुचित कदम उठाया था।** इतिहास से हमें यह मालूम होता है कि क्षयर्ष बहुत ही निर्दयी तथा तानाशाही शासक था। ऐसा मनुष्य जिसके पास बहुत अधिकार होता है वह कई बार शराब पीकर अपने संयम को खो देता है। इस समय राजा क्षयर्ष अपना संयम खो

बैठा था और उसने अपनी पत्नी को देश निकाला दे दिया था तथा यह एक ऐसा निर्णय था जिसके विषय में उसे बाद में पछताना भी पड़ा था।

II वह एक मूर्तिपूजक स्त्री थी परन्तु उसका चाल-चलन बहुत ही उत्तम था अर्थात वह संकोच तथा संयम के साथ रहती थी।

जहां तक हमें मालूम है, वशती सच्चे परमेश्वर की उपासक नहीं थी तथा इसीलिये हम उसे एक अधर्मी रानी के रूप में जानते हैं। तौभी उसका अच्छा चरित्र तथा दृढ़ निश्चय आज परमेश्वर के बच्चों के लिए एक उदाहरण है। यह बहुत ही दुख की बात है कि कई बार परमेश्वर के लोगों का चाल-चलन वैसा नहीं होता जैसा होना चाहिए। इब्राहिम तथा सारा को इस बात से कितनी शर्म आई होगी कि उन्होंने जो धोखा किया था उसके लिये एक अधर्मी राजा ने उन्हें डांटा था। (उत्पत्ति 12:14-20)। यद्यपि वशती जीवते परमेश्वर का अनुसरण नहीं करती थी तौभी एक अच्छे चरित्र को वह बहुत मूल्यवान समझती थी। परमेश्वर के लोगों को अपने को पवित्र रखना चाहिए और इस बात की आज बहुत आवश्यकता है।

1. **परमेश्वर हमेशा यह चाहता है कि उसके लोगों का अच्छा चरित्र हो तथा वे पवित्र बने रहें, उनका पहनावा सही हो-** आरम्भ से ही हम इस बात को देखते हैं कि परमेश्वर ने आदम और हव्वा के लिये चमड़े के अंगरखे बनाकर उनको पहिना दिए थे। (उत्पत्ति 3:21)। प्रत्येक युग में इस सिद्धांत को सिखाया गया था और आज भी यह सिद्धांत लागू है। परमेश्वर का वचन कहता है: ''वैसे ही स्त्रियां भी संकोच और संयम के साथ सुहावने वस्त्रों से अपने आप को संवारें-'' (1 तीमुथियुस 2:1)।

2. **क्योंकि परमेश्वर चाहता है कि स्त्रियां अपने आप को सुहावने वस्त्रों से संवारें?** इसलिये नहीं कि हमारे शरीर लज्जाजनक हैं, बल्कि इसलिये कि हम पवित्र लोग हैं। परमेश्वर ने हमारी देहों को सृजा है, तथा मसीही लोगों की देहों में पवित्र आत्मा वास करता है। अपवित्र होने से अच्छा है कि हम पवित्र रहें। हमारा शरीर हमारे लिये एक खज़ाने की तरह है इसलिये हमें इसे शुद्ध तथा पवित्र रखना है तथा इसका सम्बन्ध पवित्र परमेश्वर से सही रूप में जुड़ा रहना चाहिये।

3. **परमेश्वर की यह इच्छा है कि स्त्रियां अपने को पवित्र रखें, कहीं ऐसा न** हो कि उनके अनुचित पहनावे के कारण कोई पाप में फंसे। दाऊद के पाप के विषय में बहुत कुछ कहा जाता है, परन्तु प्रत्येक जन इस बात को भी जानता है कि बेतशीबा भी उस पाप के लिये पूरी दोषी थी। जहां बेतशेबा रहती थी यदि वहां वशती जैसी स्त्री रहती तो शायद दाऊद ऐसा घृणित पाप नहीं करता तथा उसका जीवन बिल्कुल भिन्न होता। प्रत्येक माता का यह कर्तव्य है कि वह अपनी बेटियों

के पहनावे का पूरा ध्यान रखें।

4. **पवित्र रहने में क्या-क्या बातें शामिल हैं?** अच्छे पहनावे के अलावा इसमें और भी कई बातें शामिल हैं परन्तु 1 तीमुथियुस 2:9 में विशेषकरके पहनावे के दृष्टिकोण से यह बात कही गई है। यदि ईमानदारी से देखा जाये तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आज बहुत सा ऐसा पहनावा पहिना जाता है जो चरित्रनाशक होता है। ज़रा अपने आप से हम इन प्रश्नों को पूछे ''क्या मैं एक भक्त स्त्री को अनुचित पहनावे में देखना चाहूंगी''? ''मेरी अपनी माता इस पहनावे में कैसी लगेगी?'' ''क्या मैं चाहूंगी कि कलीसिया का प्रचारक मुझे ऐसे बेढंगे कपड़े पहिने हुये देखे?'' आज नौजवान लड़कियों को यह बात समझने की बहुत आवश्यकता है।

5. **स्त्रियों के आदर्श आज हमारे समाज को संयम में रख सकते हैं।** आज जवान स्त्रियों के सम्मुख एक बहुत ही बड़ी चुनौती है। यदि वे आत्मिक बातों को महत्व दें तथा अपने चरित्र को पवित्र रखें तो उनका आने वाला वंश कितना अच्छा होगा। यदि वे ऐसा करने में असफ़ल हों जाती हैं तो ज़रा विचार कीजिये कि इसके परिणाम कितने बुरे होंगे।

III वशती का अपना एक दृढ़ निश्चय था-

उसने आत्मिक बातों को महत्व देते हुये जहां ''नहीं'' बोलना था वहां ''नहीं'' बोला। वह अपने निश्चय पर दृढ़ बनी रही। उसे इस बात की कोई भी चिन्ता नहीं थी कि इसका परिणाम उसे क्या भुगतना पड़ेगा। वास्तव में जब हम कहते हैं कि किसी व्यक्ति का यह दृढ़ निश्चय है तो इसका अर्थ यह होता है कि इस बात पर उसका अटल विश्वास है। अपने सिद्धान्तों पर चलना एक बहुत बड़ी बात है। मन के द्वारा एक दृढ़ निश्चय बनाना तथा मन से विश्वास करना एक ऐसी शक्ति है जो बहुत बड़ी होती है।

(1) **हम वशती के उदाहरण** से यह भी सीखते हैं कि एक दृढ़ निश्चय मान-सम्मान तथा शोहरत से भी बड़ा होता है।

(2) **दृढ़ विश्वास तथा निश्चय लालच से भी अधिक शक्तिशाली होता है।** जब पोतीपर की पत्नी ने यूसुफ को पाप में फंसाना चाहा था, तब उसने उसका विरोध किया। ऐसा उसने क्यों किया था? क्योंकि उसका विश्वास दृढ़ था। वह बुराई तथा अच्छाई को भली-भांति समझता था। उसने यह कहा कि ''मैं ऐसी बड़ी दुष्टता करके परमेश्वर का अपराधी क्योंकर बनुं? वशती की तरह यूसुफ ने भी ''नहीं'' कहा। हमारे प्रतिदिन के जीवन में भी लालच आते है परन्तु दृढ़ विश्वास के द्वारा हमें साहस मिलता है ताकि हम उनका विरोध कर सकें।

(3) **दृढ विश्वास सांसारिक आनन्द से भी अधिक शक्तिशाली होता है।**

मूसा ने भी सयाना होकर फ़िरौन की बेटी का पुत्र कहलाने से इन्कार कर दिया, क्यों? ''इसलिये कि उसे पाप में थोड़े दिन के सुख भोगने से परमेश्वर के लोगों के साथ दुख भोगना और उत्तम लगा'' (इब्रानियों 11:25)।

(4) **दृढ़ विश्वास इतना शक्तिशाली होता है** कि उपहास जैसे डर का सामना दृढ़ता से करता है।

(5) **दृढ़ विश्वास मृत्यु के भय से भी अधिक शाक्तिशाली होता है।** यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला सत्य बोलने के लिये अपने विश्वास पर अटल रहा। तथा ऐसा करने पर उसे अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ा। दानिय्येल को शेरों की मांदों में डाला गया था। स्तिफनुस को पत्थरवाह करके मार डाला गया परन्तु उसने यीशु का इन्कार नहीं किया।

IV एक दृढ़ निश्चय की विशेषता-

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी बात पर अपना विश्वास रखता है, तथा यह विश्वास सच्चाई या फिर किसी अनुचित बात पर आधारित होता है। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि हम अच्छी तरह से यह जान लें कि क्या इस बात में हमारा विश्वास सही है, या नहीं तथा इसको जानने के पश्चात हमें इस विश्वास को मज़बूत करने के लिये कार्य करना चाहिये। कौन सी ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण से वशती, दानिय्येल, यूहन्ना तथा स्तिफनुस ने अपने दृढ़ निश्चय को दिखाया था?

(1) **हमारा विश्वास प्रमाणों तथा अधिकार पर आधारित होना चाहिये।** आत्मिक बातों के लिये केवल हमारा एक अधिकार है और वो है परमेश्वर का वचन। ''विश्वास सुनने से तथा सुनना मसीह के वचन से होता है'' (रोमियों 10:17)। केवल परमेश्वर का वचन ही हमें बताता है कि जीने और मरने का असली अर्थ क्या है। अनेक लोग अच्छाई तथा बुराई में इसलिये अन्तर नहीं समझते क्योंकि उनका विश्वास परमेश्वर के वचन में बिल्कुल नहीं है। आज बहुत से लोग नास्तिक हैं, तथा अपने को बहुत आधुनिक समझते हैं इसलिये वे यह सोचते हैं कि चाहे किसी का विश्वास कैसा भी हो या वह कुछ भी करता हो इससे कुछ फ़रक नहीं पड़ता। जब कोई भी व्यक्ति परमेश्वर के वचन में अपना विश्वास खो देता है तब धार्मिकता की ओर से उसका ध्यान हट जाता है और वह बुराई तथा भलाई में अन्तर समझना भूल जाता है।

एक समय था जब स्त्री और पुरूष अपने चरित्र के द्वारा पहिचाने जाते थे। उस समय में एक व्यक्ति का आदर इसलिये होता था क्योंकि वह ईमानदार तथा सत्य बोलने वाला होता था। वह हमेशा उचित ही कार्य को करना चाहता था। आज अक्सर ऐसे व्यक्ति को मूर्ख समझा जाता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि आज हमारे समाज में नास्तिकता, आधुनिकवाद जैसी बातें बहुत ही प्रचलित हैं तथा लोग कहते हैं कि चाहे कुछ भी करो या कैसा भी तुम्हारा विश्वास हो इससे कोई फ़रक नहीं पड़ता। जब कोई भी मनुष्य परमेश्वर के वचन में अपना विश्वास खो देता है, तब वह धार्मिकता से कोई लाभ नहीं उठा सकता तथा बुराई करते समय उसे कोई रोकने वाला नहीं होगा।

(2) **अनेक बार हमें बुराई करने वाली बड़ी भीड़ का सामना करने के लिये एक दृढ़ साहस की आवश्यकता पड़ती है।** हमारे में ऐसा साहस होना अति आवश्यक है। कई बार हम बड़ी आसानी से बुराई की ओर प्रभावित हो जाते हैं। ज़रा नूह की पत्नी के विषय में सोचिए कि उस समय में जब वे अकेले भीड़ का सामना कर रहे थे तब किस प्रकार से अपने तीनों पुत्रों को उसने यह सिखाया होगा कि हम साहस के साथ अकेले अपने विश्वास में दृढ़ रहेंगे। जो लोग सच्चाई के मार्ग पर चलते हैं वे बहुत थोड़े होते हैं तथा ऐसे लोग हमेशा थोड़े ही रहेंगे। अकेले भीड़ का सामना करने के लिये एक मज़बूत साहस की आवश्यकता होती है। विश्वास में कमज़ोर लोग ऐसा नहीं कर सकते। एक चूहे के बारे में बहुत प्रसिद्ध कहानी है। यह चूहा एक जादूगर के घर में रहता था। चूहा बिल्लियों से बहुत डरता था तथा उसने जादूगर से कहा मुझे बिल्ली बना दो और जादूगर ने उस पर दया करके उसे बिल्ली बना दिया। अब यह बिल्ली कुत्तों से बहुत डरने लगी तब जादूगर ने उसे शेर बना दिया। शेर बनने पर वह शिकारियों से डरने लगा। तब जादूगर को बड़ा ही गुस्सा आया तथा गुस्से में आकर उसने उसे फिर से चूहा बना दिया तथा उसने चूहे से कहा, कि ''तेरा दिल तो केवल चूहे का ही दिल है, तू शेर दिल बनने के योग्य ही नहीं है।'' आज हमें ऐसी स्त्री पुरूषों की आवश्यकता है जो शेर दिल तथा हिम्मत वाले हों।

(3) **एक दृढ़ निश्चय पर बने रहने के लिये अपने को अनुशासन में करने की आवश्यकता है।** एसाव ने अपने आप को अनुशासित नहीं किया था। भूख और खाने के लालच में पहिलौठे होने के अधिकार को वह भूल गया था। सिकन्दर ने पूरे संसार पर विजय तो प्राप्त कर ली थी परन्तु स्वयं पर वह विजय प्राप्त नहीं कर सका था।

(4) **सच्चाई पर खड़े रहने के लिये हमें कोई भी दाम देने के लिये तैयार रहना चाहिये।** वशती को ऐसा करने के लिये अपने ताज तक को छोड़ना पड़ा था और आज मसीहीयों को भी अपने विश्वास में स्थिर रहने के लिये तथा सच्चाई पर चलने के लिये कई प्रकार के दाम चुकाने पड़ सकते हैं। क्या हम ऐसा करने के लिये तैयार हैं?

एस्तेर (Esther)

एस्तेर की पुस्तक में हम एक ऐसे नाटक को देखते हैं जिसमें प्रेम, ईर्ष्या, बदला लेने की भावना, हत्या, एक दृण निश्चय, साहस तथा आदर जैसी बातों को दर्शाया गया है। ऐस्तेर के जीवन की कहानी सिन्ड्रेला के जीवन की कहानी से कुछ मिलती जुलती हैं। वह एक ऐसी यहूदी लड़की थी जिसके पास जीवन में कोई आशा नहीं थी परन्तु एक दिन ऐसा आया कि उसने जीवन की उचाईयों को छू लिया तथा वह एक बहुत प्रसिद्ध स्त्री बनी। इस पूरी कहानी को हम परमेश्वर के वचन में पढ़ते हैं।

रानी वशती को राजमहल से निकाले जाने के पश्चात, राजा क्षयर्ष को यह सलाह दी गई कि वह अपने राज्य के सब प्रान्तों से अपने लिये एक सुन्दर युवती को रानी बनाने के लिये चुने।'' यह बात राजा को पसन्द आई और उसने ऐसा ही किया'' एक सुन्दर युवती को चुनने के लिये योजना बनाई गई। यह परमेश्वर की योजना नहीं थी बल्कि मनुष्यों द्वारा बनाई गई योजना थी। तौभी परमेश्वर चाहता था कि इससे भलाई ही उत्पन्न हो। ऐस्तेर तथा मोर्दके उन यहूदियों में से थे जो यरुशलेम से बन्धुआई में ले जाये गये थे। मोर्दके ने ऐस्तेर को अपनी बेटी बनाया तथा उसने उसे राजभवन में भेजा। एक वर्ष की तैयारी के पश्चात ऐस्तेर राजा के सम्मुख गई। ''और वह युवती उसकी दृष्टि में अच्छी लगी, और उससे वह प्रसन्न हुआ, तब उसने बिना विलम्ब उसे राजभवन में से शुद्ध करने की वस्तुएं, और उसका भवन और उसके लिये चुनी हुई सात सहेलियां भी दीं- और अच्छा रहने का स्थान दिया- और राजा ने ऐस्तेर को और सब स्त्रियों से अधिक प्यार किया, और सब कुवांरियों से अधिक अनुग्रह और कृपा की दृष्टि उसी पर हुई, इस कारण उसने उसके सिर पर राजमुकुट रखा और उसको वशती के स्थान पर रानी बनाया। तब राजा ने अपने सब हाकिमों और कर्मचारियों की बड़ी जेवनार की और उसे ऐस्तेर की जेवनाार कहा-। ऐस्तेर ने राजा को अपनी जाति और कुल का पता नहीं दिया क्योंकि मोर्दके ने उसे ऐसा करने को मना किया था।

राजा क्षयर्ष ने हामान को एक उच्च पद दिया था और वह इस पदवी में राजा से दूसरे नम्बर पर था। राजा के सब कर्मचारी जो राजभवन के फाटक में रहा करते थे, ह्रामान के सामने झुककर दण्डवत किया करते थे क्योंकि राजा ने उसके विषय

में ऐसी आज्ञा दी थी। मोर्दके एक यहूदी होने के कारण न तो झुकता था और न ही उसको दण्डवत करता था। ह्रामान को जब मोर्दके के विषय में यह बात पता चली तो वह बहुत क्रोधित हुआ।

प्रतिदिन ह्रामान यह देखता था कि मोर्दके उसके सामने नहीं झुकता और यह देखकर उसका क्रोध और भी बढ़ जाता था।

I जो फांसी का फन्दा ह्रामान ने दूसरे के लिये बनवाया था वही उसके घमण्ड को तोड़ने का कारण बना।

(1) **मोर्दके ने ह्रामान के सामने झुकने से इन्कार किया था। और यही बात उसके घमण्ड को गिराने का कारण बनी।**

इसी घमण्ड के कारण ह्रामान में मोर्दके के प्रति जलजलाहट उत्पन्न हो गई थी। तथा वह उससे बदला लेना चाहता था। अपने क्रोध को सन्तुष्ट करने के लिये तथा घमण्ड को दिखाने के लिये वह यह चाहता था कि केवल मोर्दके को ही नहीं बल्कि सारे यहुदियों को भी नाश कर दे। सारी यहूदी-जाति को समाप्त करने की उसने ठान ली थी। उसने राजा क्षयर्ष से कहा, तेरे राज्य के सब प्रान्तों में रहने वाले देश-देश के लोगों के मध्य में तितर-बितर और छिटकी हुई एक जाति है, जिसके नियम और सब लोगों के नियमों से भिन्न हैं, और वे राजा के कानून पर नहीं चलते-यदि राजा को स्वीकार हो तो उन्हें नष्ट करने की आज्ञा लिखी जाए। राजा ने ह्रामान की बात को मान लिया तथा उसने यहुदियों को नाश करने की आज्ञा दे दी। सिर्फ़ एक आदमी की मूखर्ता के कारण पूरी जाति को नाश करने की आज्ञा दे दी गई थी।

(2) घमण्ड से भरे हुए ह्रामान की आंखे इस समय बन्द थीं और उसे कुछ और दिखाई नहीं दे रहा था। उसके पास सब कुछ था, और इतना था कि घमण्ड से वह अपनी पत्नी तथा अपने मित्रों को इसके बारे में बताता था। (ऐस्तेर 5:11-12) सब कुछ होते हुये भी, वह यह शिकायत करता है: कि ''जब-जब मुझे वह यहूदी मोर्दके राजभवन के फाटक में बैठा हुआ दिखाई पड़ता है, तब-तब यह सब मेरी दृष्टि में व्यर्थ हैं।'' ह्रामान इस समय ईर्ष्या से भरा हुआ था तथा इसी ईर्ष्या के कारण ही वह अपनी तमाम आशीषों को भूल चुका था।

कई बार हमारे दिमाग में एक छोटी सी बात इतनी घूमती रहती है कि हम उसके बारे में सोचते हुये अपनी दूसरी आशीषों को भूल जाते हैं। और तब हम अपने जीवन को बड़ा ही कष्टदायक बना लेते हैं। हमारी ऐसी हालत केवल घमण्ड तथा ईर्ष्या के कारण ही नहीं बल्कि पूर्वद्वेष, स्वार्थपन, लालच तथा सुस्ती के कारण भी होती है। इसी प्रकार की अन्य और भी बातें है जिनके कारण हमारा जीवन बहुत

कष्टदायक होने लगता है।

चिड़ियों की एक कहानी में हम इस प्रकार से देखते हैं कि तीन चिड़ियें रोटी के एक टुकड़े के लिये लड़ रही थीं। जब वे लड़ रही थी तब उनमें से एक रोटी चिड़ियां के टुकड़े को अपनी चोंच में पकड़कर उड़ गई तब दोनों चिड़ियें उसका पीछा करने लगीं, जब वे ऐसा कर ही रही थीं तभी अचानक वो रोटी का टुकड़ा छूट कर गिर गया तथा उनमें से वो रोटी का टुकड़ा किसी को भी नहीं मिल सका। उसी रोटी के टुकड़े को यदि वे बिना झगड़ा किये हुये मिल बांट के खा लेतीं तो कितना अच्छा होता। हम लोग चिड़ियों से बिल्कुल भिन्न हैं तथा बुद्धिमान भी है। परन्तु कई बार हमारा व्यवहार भी इन चिड़ियों की तरह होता है। हम आवश्यक बातों को भूलकर छोटी-छोटी बातों के लिये आपस में लड़ते रहते हैं।

(3) **ह्यमान के पाप का बढ़ना**-स्वार्थपन में घमण्ड भरा हुआ होता है और इसीलिये उसके पाप इस प्रकार से थे जैसे: स्वार्थपन, घमण्ड, ईर्ष्या, बदला लेने की भावना, हत्या इत्यादि। यद्यपि ह्यमान ने इस प्रकार की योजना नहीं बनाई थी तौभी अन्त में उसने ऐसा करके अपने आप को ही नाश किया था।

II मोर्दके ने अपने लोगों को बचाने की योजना बनाई-

(1) **वह परमेश्वर की ओर फिरा**-जब राजा ने यह आज्ञा निकाली कि क्या जवान, क्या बूढ़े, क्या स्त्री, क्या बालक, सब यहूदी घात और नाश किये जाये, तब उसने अपने वस्त्र फाड़े तथा टाट पहिन कर अपने उपर राख डाल ली। जब वह खबर सारे देश में फैल गई तब तमाम यहूदियों ने भी ऐसा ही किया। यद्यपि परमेश्वर का वर्णन ऐस्तेर की पुस्तक में नहीं हुआ है परन्तु फिर भी बार-बार इस पुस्तक में यह देखा गया है कि लोगों ने परमेश्वर की सहायता का अनुभव किया था। टाट ओढ़ना तथा राख मलना यह दिखाता है कि वे लोग दुखी तथा शोकित थे और पश्चाताप करके परमेश्वर की ओर लौटना चाहते थे। जब यहूदी लोगों को सब कुछ अन्धकार की तरह दिखाई देने लगा तब उनके मन सहायता के लिए उस महान शक्ति अर्थात परमेश्वर की ओर फिरे।

(2) मोर्दके का परमेश्वर में दृढ़ विश्वास था और वह यह समझ गया था कि प्रभु लोगों के द्वारा कार्य करता है, क्योंकि उसने ऐस्तेर को यह सलाह दी थी कि वह यहूदी लोगों के लिये अपने पति से प्रार्थना करे। ऐस्तेर ने जवाब दिया कि यदि वह राजा के पास बिना निमन्त्रण के जायेगी तो उसका जीवन संकट में पड़ सकता है। मोर्दके उससे जवाब में कहता है कि: "तू मन ही मन यह विचार न कर, कि मैं ही राजभवन में रहने के कारण सब यहूदियों में से बची रहूंगी। क्योंकि जो तू

इस समय चुपचाप रहे तो और किसी न किसी उपाय से यहूदियों का छुटकारा और उद्धार हो जाएगा, परन्तु तू अपने पिता के घराने समेत नाश होगी। फिर क्या जाने तुझे ऐसे ही कठिन समय के लिये राजपद मिल गया हो" (4:13-14)।

III एक विशेष कार्य के लिये इस स्त्री को चुना गया था-

(1) ऐस्तेर ने परमेश्वर की योजना को पूरा करने की चुनौती को स्वीकार कर लिया था। मोर्दके के समझाने के द्वारा उसने यह निश्चय बना लिया था कि वह "ऐसा करेगी" और ऐसी ही दशा में मैं नियम के विरूद्ध राजा के पास भीतर जाऊंगी, और यदि नाश हो गई तो हो गई" (4:16) लेकिन उसने एक शर्त रखी कि सब यहूदी उसके साथ मिलकर उपवास करेंगे और यह तीन दिन-तीन रात तक होगा। वह परमेश्वर पर अपना पूर्ण भरोसा रखने लगी थी और अगर यह बात न होती तो शायद वह उपवास भी नहीं करती। अपने कार्य को करने के पश्चात, उसने इस बात को सीख लिया था कि उसके जीवन में प्रभु का एक बहुत बड़ा उद्देश्य है, क्योंकि राजा ने उसकी बात को मान लिया था तथा उसके द्वारा यहूदी लोग नाश होने से बच गये थे। हम इस विषय में विचार करें कि यदि ऐस्तेर जैसी स्त्री न होती तो यहुदी जाति का क्या होगा।

इस कार्य के लिये प्रभु किसी और को भी चुन सकता था परन्तु किसी और के चुने जाने से आज इतिहास शायद भिन्न होता। ऐस्तेर का विवाह इस राजा के साथ होने से यहूदी लोग बहुत ही आशीषित हुये थे तथा यह भी सम्भव हो सका कि वे लोग नहेमायाह की अगुआई में यरूशलेम वापस लौट सके। ऐस्तेर ने भी दोबोरा की तरह यह प्रमाणित करके दिखा दिया था कि यदि कोई भी व्यक्ति अपने जीवन को प्रभु की सेवा में लगा दे तो उसका जीवन प्रभु के लिये कितना शक्तिशाली हो सकता है। धन्य है वह मनुष्य जो परमेश्वर की योजना को पूरा करने के लिये परिश्रम करता है। एक भक्त स्त्री ने कहा था: "मैं जानती हूं कि परमेश्वर और मैं मिलकर बहुत अधिक कार्य कर सकते हैं"।

(2) **जो परमेश्वर ने ऐस्तेर को दिया था अर्थात उसकी सुन्दरता वो उसने उसके कार्य के लिये इस्तेमाल की।** आज हम अपनी सारी योग्यताओं को प्रभु के कार्य के लिये इस्तेमाल कर सकते हैं जैसे-सुन्दरता, लोगों से अच्छी तरह से मिलना, परमेश्वर की स्तुति में गीत गाना, दूसरो को प्रभु यीशु के विषय में बताना तथा और भी कई ऐसी विशेषताएं हो सकती हैं जिन्हें हम प्रभु के लिये इस्तेमाल कर सकते हैं।

(3) **क्योंकि मोर्दके ने उसका पालन पोषण किया था, इसलिये उसके**

मन में मोर्दके के प्रति बहुत आदर सम्मान था। वह उसका चचेरा भाई था। क्योंकि वह एक अनाथ लड़की थी इसीलिये उसको मोर्दके ने पाला-पोसा था। वह हमेशा उसकी आज्ञा मानती थी (2:20), तथा उससे सलाह लेती थी। एक रानी बनने के बाद भी वह मोर्दके को नहीं भूली थी। (4:4; 4:16)। माता-पिता तथा बड़ों का आदर करना एक सुन्दर विशेषता हैं। अक्सर बच्चे माता-पिता तथा बड़ों का आदर नहीं करते। बड़े-बूढ़ों को भी बच्चों के प्रति अपना व्यवहार अच्छा रखना चाहिए। यदि हम चाहते हैं कि बच्चे और जवान हमारा आदर करें तो हमें भी अपना व्यवहार उनके प्रति अच्छा रखना चाहिए। कई बार ऐसे भी क्षण आते हैं जब जवानों को सलाह के लिये बड़े-बूढ़ों के पास जाना पड़ता है।

(4) आखिरकार ऐस्तेर ने उन सबके मनों को जीत लिया जिनसे वह मिली थी तथा वे सब उससे बहुत प्रभावित हुये। महल में उसके साथ जो युवतियां थीं, उन्हें भी उसने प्रभावित किया। हो सकता है, ऐस्तेर ने उन्हें परमेश्वर के विषय में भी बताया हो।

(5) **वह अपने कर्तव्य का पालन करना समझती थी।** वह शायद आसानी से यह भी कह सकती थी कि ''मुझे क्या आवश्यकता हैं कि मैं इस्राएलियों को बचाऊं; कोई और भी तो यह काम कर सकता हैं''। परन्तु जब उसने मन में किसी कार्य को करने की ठान ली, तब उसने साहस के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया। यदि हम कोई भलाई करना चाहते हैं तो हमें करनी चाहिये और यदि हम जानते हुये भी नहीं करते तो इसके लिये परमेश्वर का वचन हमें दोषी ठहरायेगा। (याकूब 4:17)

(6) उसने दूसरों की सहायता की और ऐसा करने से उसे स्वयं भी सुरक्षा मिली। अपने आप को अपने लोगों के लिये बलिदान करने की उसकी इच्छा ने उसके जीवन को बचाया। दूसरों की सहायता करने से हमें बहुत सी आशीषें प्राप्त होती है। हमें दूसरों की भलाई के लिये हमेशा सोचना चाहिये।

IV मोर्दके को ऐसा प्रतिफल मिला जिसके विषय में उसने कभी सोचा तक भी नहीं था-

ह्यमान ने मोर्दके के लिये फांसी का फंदा बनाया था। (5:14)। उसी रात को राजा अपनी इतिहास की पुस्तक को पढ़ रहा था तथा उसने उसमें यह देखा कि एक दिन मोर्दके ने उसके जीवन को बचाया था (2:21,6:1-3)। जब क्षयर्ष राजा को मालूम हुआ कि मोर्दके को कोई भी इनाम नहीं दिया गया तब उसने ह्यमान को बुलाकर उससे पूछा: कि ''राजा जिस व्यक्ति से प्रसन्न हुआ हो, उस व्यक्ति

के लिये राजा को क्या करना चाहिए?'' घमण्डी ह्यमान एक पल के लिये भी यह नहीं सोच सकता था कि उसके अतिरिक्त कोई और भी ऐसा व्यक्ति हो सकता है जिससे राजा प्रसन्न हो और उसे इनाम दे। ह्यमान ने उत्तर दिया कि ''ऐसे व्यक्ति को तो बढ़िया सी पोशाक पहनाकर तथा राजा के घोड़े पर बैठाकर पूरे शहर में घुमाना चाहिये।''

राजा इस सलाह से बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने कहा 'जल्दी करो और मोर्दके के साथ ऐसा करो'' अब ह्यमान को उसी व्यक्ति के लिये यह सब कुछ करना था जिसे वह बहुत नीचा समझता था। मोर्दके ने राजा का जीवन बचाने के लिये कोई इनाम नहीं मांगा था। परन्तु उसने जो भलाई की थी उसका प्रतिफल उसे मिला। अनेकों बार ऐसे भी अवसर आते हैं कि हमें अचानक ऐसी आशीषें प्राप्त होने लगती हैं जिनके विषय में हमने कभी सोचा तक नहीं था।

V ऐस्तेर की समस्या को राजा के सम्मुख लाया गया।

(1) **अब ऐस्तेर यह समझ गई थी कि अपने पति से उसे किस प्रकार से पेश आना है।** तीन दिनों तक उपवास रखने के पश्चात, ऐस्तेर ने अपने आप को सुन्दर वस्त्रों से संवारा तथा राजा के पास गई और तब राजा ने उसकी ओर सोने का राजदण्ड बढ़ाया। राजा उससे बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसे कुछ मांगने को बोला, चाहे वो उसका आधा राज्य ही क्यों न हो, रानी ने उससे कहा मेरी यह बिनती है कि राजा मेरी जेवनाार में आये। अपनी समस्या को बताने से पहले उसने राजा के लिये एक और जेवनार तैयार की। एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात स्त्रियों को यह सीखनी चाहिये कि अपने पति को एक अच्छा भोजन खिलाने के पश्चात उनके पतियों द्वारा उनकी बिनती पर बहुत अच्छी तरह से ध्यान दिया जाता है।

(2) **ऐस्तेरे ने राजा से कहा कि ''उसे तथा उसके लोगों को मरवा दिया जायेगा''।** ऐसा सुनने के पश्चात राजा ने क्रोधित होकर पूछा: कि ''वह कौन है? और कहां हैं जिस ने ऐसा करने की मनसा की है?'' ऐस्तेर ने उत्तर दिया कि ''वह विरोधी और शत्रु यही दुष्ट ह्यमान है'' । (7:5,6)।

घमण्डी ह्यमान ने जो फांसी का फन्दा मोर्दके के लिये तैयार किया था उसी फांसी के खम्बे पर उसे लटका दिया गया।

(3) **राजा ने यहूदी लोगों को यह आज्ञा दे दी कि वे अपनी रक्षा स्वयं करें** (8:7,14)। राज्य के और प्रान्तों के यहूदी इकट्ठे होकर अपने-अपने प्राण बचाने के लिये उठ खड़े हुये, और अपने बैरियों में से पचहत्तर हज़ार मनुष्यों को घात करके अपने शत्रुओं से विश्राम पाया (9:16)।

VI बुराई का परिणाम-

सम्पूर्ण बाईबल में बार-बार इस बात पर ज़ोर देकर बोला गया है कि ''पापी को हमेशा पाप से चोट पहुंचती है'' (नीतिवचन 13:15) यही कारण है कि प्रभु हम से चाहता है कि हम अच्छा जीवन व्यतीत करें। ज़रा सोचिये कि घृणा जैसे पाप के क्या-क्या परिणाम हो सकते हैं। ह्यमान ने जो ईर्ष्या की थी उसका क्या परिणाम हुआ-

(1) जब राजा ने तमाम यहूदी जाति को समाप्त करने की आज्ञा दे दी थी तब उसने यह सोचा तक भी नहीं था कि वह अपनी प्रिय रानी के लोगों को मौत के घाट उतारने की आज्ञा दे रहा है।

(2) ह्यमान ने अपने पाप के परिणाम का फल तब पाया जब उसे उस फांसी के फन्दे पर लटका दिया गया। जिसे उसने उस व्यक्ति के लिये बनाया था जिससे वह ईर्ष्या करता था। (पढ़िये गलतियों 6:7)। ''मैने दुष्ट को बड़ा पराक्रमी और ऐसा फैलता हुआ देखा, जैसे कोई हरा पेड़ अपने निज भूमि में फैलता है। दुष्ट लोंग बहुत बड़ी (भजन 37:35)। उड़ान तो भरते हैं लेकिन गिरते भी हैं।

(3) ह्यमान के कारण लगभग 75,000 लोग मारे गये थे। यदि उसका मन साफ़ होता तो शायद ऐसा कभी नहीं होता। एक पापी मनुष्य के कारण अनेक लोगों को नुकसान उठाना पड़ता है।

1. **क्या आप अपने जीवन की कोई ऐसी घटना याद कर सकतीं है जब परमेश्वर ने अपने किसी कार्य को करने के लिये आपको इस्तेमाल किया हो?**
2. **हमान के मन में मोर्दके के प्रति ईर्ष्या की भावना थी, जरा आप अपने मन में झांककर देखें, क्या आपके दिमाग़ में भी किसी के प्रति कोई ऐसी बात है और उसके विषय में सोचकर अपनी आशिषों को भूल गए हैं?**
3. **उस समय के विषय में सोचिये जब आपको अपने पापों के कारण आपको किन-किन दुखों और समस्याओं का सामना करना पड़ा था।**

श्रीमती अय्यूब (Mrs. Job)

अय्यूब की पुस्तक अपने आप में एक अनोखी पुस्तक है। इसमें एक ऐसे व्यक्ति का वर्णन है जो अपने विश्वास में बहुत महान तथा धनी था। वह खुश रहता था और सीधा साधा व्यक्ति था। परमेश्वर का भयमानने वाला तथा बुराई से दूर रहने वाला मनुष्य था। (अय्यूब 1:8)।

इस कहानी में हम देखते हैं कि शैतान तथा परमेश्वर के बीच बातचीत होती है। शैतान परमेश्वर से आज्ञा चाहता है, ताकि अय्यूब की परीक्षा ले सके, यह जानने के लिये कि क्या वह परमेश्वर की सेवा अपने स्वार्थ के लिये तो नहीं कर रहा? परमेश्वर को अपने दास पर पूरा भरोसा था, इसलिये उसने शैतान को ऐसा करने की आज्ञा दे दी। इस परीक्षा में अय्यूब को बहुत सी यातनाओं का सामना करना पड़ा था।

यहां हम यह देखना चाहेंगे कि यह सब कुछ होते हुये भी उसकी पत्नी ने क्या किया। केवल एक वाक्य अय्यूब की पत्नी ने बोला था तथा इस एक वाक्य से आज हम अपने लिये अनेकों पाठ सीख सकते हैं। कई बार केवल एक ही घटना या किसी व्यक्ति द्वारा बोला गया एक वाक्य उसके सारे चरित्र को प्रकट कर देता है। क्योंकि ''मन के भण्डार से मनुष्य बहुत कुछ बोलता है।''

I किस प्रकार से अय्यूब की पत्नी ने शैतान की सहायता की थी?

(1) **शैतान चाहता था कि अय्यूब परमेश्वर को त्याग दे।** परमेश्वर ने शैतान को यह आज्ञा दी थी कि तू अय्यूब के साथ कुछ भी कर परन्तु उसके प्राण मत लेना। शैतान ने उसे एक के बाद एक कष्ट देने शुरू कर दिये। उसकी सारी जायदाद नाश हो गई और उसके सारे बच्चे भी मर गये तथा उसके सारे शरीर पर फोड़े हो गये थे (अय्यूब 1:13;2:8)। क्या शैतान विजयी हुआ? क्या परमेश्वर के जन की हार हुई? नहीं, अय्यूब ने अपना बागा फाड़ा और परमेश्वर को दण्डवत किया। अपने दुख और पीड़ा को कम करने के लिये वह एक ठीकरा लेकर राख पर बैठ गया।

उसका केवल एक ही सम्बन्धी अब उसे शान्ति दे सकता था और वो थी उसकी पत्नी लेकिन उसकी पत्नी ने भी उसकी कोई सहायता नहीं की। श्रीमती

अय्यूब ने शैतान की बहुत सहायता की। शैतान बहुत चालाक, नाश करने वाला तथा अपने हथियारों को अच्छी तरह से इस्तेमाल करने वाला है।

(2) **जब अय्यूब अपने दृण विश्वास के साथ राख पर बैठा हुआ था,** तब शैतान उस समय अपना बहुत ही विनाशकारी हथियार इस्तेमाल करता है। अर्थात अय्यूब की पत्नी अपने पति से आकर यह कहती है: ''क्या तू अब भी अपनी खराई पर बना है! परमेश्वर की निन्दा कर, और चाहे मर जाए तो मर जा''। (अय्यूब 2:9) परमेश्वर की निन्दा करना एक बहुत ही नीचता की बात थी (1 राजा 21:10)। यदि अय्यूब उसकी सलाह को मान लेता तो शैतान इसे अपनी एक बहुत बड़ी जीत समझता, परन्तु अय्यूब ने उसकी सलाह मानने से इन्कार कर दिया।

II अय्यूब की पत्नी अपनी परीक्षा में असफ़ल हो गई थी–

जीवन में अनेकों बार हमें कई फ़ैसले करने पड़ते हैं, तथा प्रत्येक फ़ैसला या तो अच्छाई के लिये होता है या फिर बुराई के लिये। अय्यूब अपनी परीक्षा में सफ़ल हो गया था। श्रीमति अय्यूब हव्वा की तरह अपनी परीक्षा में असफ़ल हो गई थी।

(1) **वह परमेश्वर के साथ चलने में असफल रही–** इस संसार में दो बड़ी शक्तियां हैं। जब अय्यूब की पत्नी ने अपने पति से परमेश्वर को छोड़ने के लिये बोला तब वह शैतान के साथ थी और चाहती थी कि उसका पति भी शैतान के साथ हो ले। कोई भी मनुष्य एक साथ परमेश्वर और शैतान की सेवा नहीं कर सकता।

(2) **उसने अपने पति की सहायता नहीं की–** स्त्री को पुरूष के लिये एक सहायक के रूप में बनाया गया हैं। पहले कभी भी उसको अपनी पत्नी की इतनी आवश्यकता नहीं पड़ी थी जितनी की इस समय थी। परन्तु वह उसकी सहायता करने में असफल रही। मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता हैं साहस परन्तु शैतान का कार्य हैं उसके साहस को तोड़ना। यदि यह सत्य है तो हमें अपने परिवार के लोगों तथा मित्रों का साहस बढ़ाना चाहिए। अय्यूब को अपनी पत्नी से सहायता तथा साहस की आवश्यकता थी। परन्तु जब ऐसा नहीं हो सका तो उसने अकेले ही तूफ़ान का मुकाबला किया और वह इतिहास में एक बहुत बड़ा इन्सान हुआ परन्तु दुख़ की बात यह है कि उसने एक ग़लत स्त्री से विवाह किया था।

(3) **दुख सहने की परीक्षा में भी श्रीमती अय्यूब असफ़ल रही–** इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह भी बहुत दुखी थी क्योंकि उसकी ज़ायदाद और बच्चे बरबाद हो चुके थे, परन्तु फिर भी उसका व्यवहार अनुचित था।

उसकी यह जिम्मेदारी थी कि वह प्रभु के प्रति विश्वासयोग्य बनी रहे। दुख़ की घड़ी आने से यह पता चलता है कि हमारा विश्वास प्रभु में कितना हैं। ''यदि तू विपत्ति के समय साहस छोड़ दे तो तेरी शक्ति बहुत कम है।'' (नीतिवचन 24:10)। कई लोग अच्छे समय में तो बड़े विश्वास योग्य बने रहते हैं परन्तु दुख आने पर घबराकर प्रभु को छोड़ देते हैं। चाहे कैसा भी वक्त हो हमें प्रभु के प्रति विश्वासी बने रहना चाहिये। अय्यूब ने ऐसा करके दिखाया था।

(4) **वह अच्छे अवसरों का लाभ उठाने में असफल रही।** योग्यताओं के साथ हमारी जिम्मेदारियां भी बढ़ती हैं। मत्ती 25:14–30 में इसके विषय में सिखाया गया हैं। अय्यूब की पत्नी के पास कौन सा बड़ा अवसर था? वह एक बहुत महान व्यक्ति की पत्नी थी, एक ऐसा इन्सान जो निर्धनों पर हमेशा दया करता था। वह बुद्धिमान था, अपने मित्रों को अच्छी सलाह देता था, और उसे अपने बच्चों की आत्माओं की चिन्ता थी। अय्यूब की पत्नी ऐसे व्यक्ति की पत्नी बनकर बहुत आशीषित थी। उसके पास धन, जायदाद सब कुछ था। उनका एक अच्छा परिवार था जिसमें प्रभु का भय मानने वाले बच्चे थे। यदि कठिनाई पड़ने पर वह अपने पति का साथ देती तो इतिहास में उसका कितना नाम होता। वह ऐसा कर सकती थी, पर उसने ऐसा किया नहीं। बड़ी ही दुख की बात है कि कठिन समय में उसने अपने पति का साथ नहीं दिया अर्थात उसका साथ छोड़ दिया था।

III परमेश्वर का कार्य करने में हमारे सामने जो भी बाधा आती है उससे शैतान को बहुत सहायता मिलती है–

एक बहुत बड़ा पाठ हम अय्यूब की पुस्तक से यह सीखते हैं कि शैतान लोगों के द्वारा कार्य करता है। बाइबल के अन्य पदों में भी हमें यह बात देखने को मिलती हैं। यहूदा को शैतान ने इस्तेमाल किया था (मत्ती 26:46–50) पतरस ने अपना सारा जीवन प्रभु की सेवा में लगाया था लेकिन शैतान ने उसे भी अपने चंगुल में फंसा लिया था। (मत्ती 16:23)। कोई भी व्यक्ति जब सही कार्य करने से चूक जाता है तो इससे साफ़ पता चलता है कि वह शैतान के लिये कार्य कर रहा है। आज भी बहुत सी स्त्रियां श्रीमती अय्यूब की तरह अपने पतियों को अच्छे कार्य करने के लिये रोकती हैं।

IV ''तू एक मूढ़ स्त्री की सी बातें करती है''

अय्यूब की पत्नी ने अपने पति को यह सलाह दी थी कि ''परमेश्वर की निन्दा कर, और चाहे मर जाए तो मर जा'' अय्यूब ने उत्तर दिया कि ''तू एक मूढ़ स्त्री की सी बातें करती हैं'', ''क्या हम जो परमेश्वर के हाथ से सुख लेते हैं, दुख न

लें!'' (अय्यूब 2:10)। उसकी सलाह एक निरी मूर्खता थी और उसकी बात को मानना एक मूर्खता थी, परन्तु ऐसा क्यों?

(1) अब केवल परमेश्वर ही उसे सहारा दे सकता था। ज़ायदाद, बच्चे और सब कुछ खो देने के पश्चात अब केवल उसका एक ही सहारा था और वो था अपने स्वर्गीय पिता पर पूरा भरोसा रखना। यदि वह परमेश्वर को त्याग देता तो संसार में तथा आने वाले संसार में उसके पास कोई आशा नहीं होती।

अय्यूब ने अपना विश्वास चट्टान पर बनाया था और सत्य के खम्बे की तरह उसका विश्वास दृण था। उसकी पत्नी शायद उसको उसके विश्वास से फेर सकती थी, परन्तु वह ऐसा नहीं कर सकी।

(2) **श्रीमती अय्यूब शायद ऐसा सोचती थी कि परमेश्वर की सेवा करने से कोई लाभ नहीं है।** क्योंकि उसकी सेवा करने के कारण ही हमें कष्टों का सामना करना पड़ रहा है। वह सोच रही थी कि अय्यूब भी इस वास्तविकता से परिचित होगा कि क्यों बिना किसी कारण के उसे सताया जा रहा है। लेकिन अय्यूब अपने दृण विश्वास से अपने प्रभु का नाम लेता है, और इस प्रकार से कहता है कि ''प्रभु ने दिया था, और प्रभु ने ले लिया, उसका नाम धन्य हो''। क्यों धार्मिक लोग दुख पाते हैं? अय्यूब की पुस्तक में इसी बात के विषय में बोला गया है। अय्यूब और उसके तीन मित्र भी इसका उत्तर जानना चाहते थे। और अय्यूब स्वयं भी यह नहीं समझ सका था कि शैतान उसकी परीक्षा क्यों कर रहा है। या परमेश्वर उसको क्यों ताड़ना दे रहा है। बाइबल में अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि धर्मी लोगों ने बहुत दुख उठाया था तथा दुष्ट काफ़ी फले-फूले थे। प्रत्येक मसीही पर यातनाएं आती हैं तथा यह सब हमारे लिये भलाई को उत्पन्न कर सकती हैं।

(3) **श्रीमती अय्यूब यह समझ नहीं सकी थी कि दुख-मुसीबत आशीष का कारण भी हो सकते हैं।** ''जिनसे प्रभु प्रेम करता हैं उनकी ताड़ना भी करता हैं।'' अनेक बार हम मसीही लोग इस बात को पूर्ण रूप से समझ नहीं पाते। हम कुछ ऐसी बातों को देख सकते हैं जिनके कारण परमेश्वर अपने बच्चों की ताड़ना करता हैं। और ''वे हमारे लाभ के लिये होती हैं।'' (इब्रानियों 12:10)। किस प्रकार से ये बातें हमारे लाभ के लिये होती। आइये देखें:-

V दुख-मुसीबत हमारी सहायता करते हैं ताकि हम जीवन के विशेष लक्ष्य को प्राप्त कर सकें-

(1) ''पवित्रता'' हमारे इस जीवन का विशेष उद्देश्य यह है कि हम आत्मिकता में आगे बढ़ें तथा अपने को स्वर्ग में जाने के योग्य बनायें। कष्ट उठाने से हम और भी अधिक शक्तिशाली बनते हैं। इस बात को समझते हुये हम परमेश्वर पिता के ज्ञान को समझ सकते हैं जो अपने बच्चों पर यातनाएं और कष्ट आने देता हैं ''ताकि वे उस की पवित्रता के भागी हो जाए'' (इब्रानियों 12:1-14)।

(2) **कष्ट हमें प्रभु के निकट और अधिक आने में हमारी सहायता करते हैं।** उसके बिना हम असहाय होते हैं।

(3) **एक अच्छा तथा आशीषित जीवन व्यतीत करने के लिये कष्टों का होना आवश्यक है।** यदि आपने केक के अतिरिक्त और किसी मीठी चीज़ को नहीं खाया है तो क्या आप उन चीज़ों की मिठास की प्रशंसा करेंगे? यदि आप को नहीं मालूम कि दुख क्या है तो क्या आप खुशी के क्षणों की प्रंशसा करेंगे? केवल मसीहीयत ही ऐसा धर्म है जो यह सिखाता है कि हम अपने दुख मुसीबत को अपने जीवन की अच्छाई के लिये इस्तेमाल कर सकते हैं।

(4) **यातनाएं हमें जीवन के महत्व को समझने की आवश्यकता को बताती हैं।** ''सुख के दिन सुख मान, और दुख के दिन सोच; क्योंकि परमेश्वर ने दोनों को एक ही संग रखा है, जिससे मनुष्य अपने बाद होने वाली किसी बात को न समझ सके'' (सभोपदेशक 7:14)। लोगों के ऊपर जब तक कष्ट नहीं आते तब तक वे परमेश्वर और उसकी बातों के विषय में नहीं सोचते। यदि संसार में सब कुछ सही चलता रहे तो फिर परमेश्वर के बारे में कौन सोचेगा? कुछ ऐसे साधारण से दुख हैं जो हमारे उपर अक्सर आते हैं और तब हम जीवन के महत्व को समझते हुये अपने ध्यान को आत्मिक बातों पर लगाते हैं। जैसे कि:

जब हम बीमार पड़ते हैं तब हमारा ध्यान परमेश्वर की ओर जाता हैं। बीमारी हमें आत्मिक रूप से बढ़ने में सहायता करती हैं। जब हमारे कोई प्रिय जन इस संसार को छोड़कर चले जाते हैं तब हम परमेश्वर तथा स्वर्ग के विषय में और अधिक सोचते हैं।

जब हम अपने मित्रों तथा प्रिय जनों के व्यवहार से उदास हो जाते हैं तब केवल एक ही है जो हमारी सहायता करता है और वह है हमारा परमेश्वर ''वह तुझे कभी नहीं भूलेगा और न ही छोड़ेगा।''

(5) **दुखों और कष्टों का होना हमें यह सिखाता हैं कि हमें दूसरों के साथ सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।** प्रेरित पौलूस ने कुरिन्थियों की कलीसिया को भी ऐसा ही लिखा था (2 कुरिन्थियों 1:3-7)। यदि हमने स्वयं कभी दुख न सहा हो तो हम किसी दूसरे के साथ अच्छी तरह से सहानुभूति नहीं दिखा सकेंगे।

मरियम (Mary)

यीशु की माता मरियम का बाइबल में एक विशेष स्थान है। वह जवान स्त्री कौन थी जिसे परमेश्वर ने यीशु की माता होने के लिये चुना था? बहुत कम हम उसके विषय में जानते हैं। उसकी वंशावली के विषय में भी नहीं बताया गया है। वह एक बहुत नम्र स्त्री थी। वह पहली ऐसी स्त्री थी जिसे मरियम कहा गया था। पुराने नियम में इस नाम को मिरियम के नाम से भी पुकारा जाता था। बाइबल में मरियम का नाम तब आया जब जिब्राईल स्वर्गदूत ने उससे आ कर कहा था कि ''हे मरियम, भयभीत न हो, क्योंकि परमेश्वर का अनुग्रह तुझ पर हुआ है। तू गर्भवती होगी, और तेरे एक पुत्र उत्पन्न होगा; तू उसका नीम यीशु रखना'' (लूका 1:30,31)। उसका विश्वास एक बच्चे की तरह था, बड़े ही नम्र होकर मरियम ने उत्तर दिया: कि ''देख मैं प्रभु की दासी हूं, मुझे तेरे वचन के अनुसार हो'' (लूका 1:38)।

परमेश्वर के वचन अनुसार, कुंवारी मरियम ने अपने पहले बच्चे को जन्म दिया तथा उसे उसने एक चरनी में रखा। स्वर्गदूतों ने उसके जन्म की खुशी में गीत गाये; और यदि तमाम लोग उस समय उसके आने का मकसद समझ सकते तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे सब भी उसके सामने झुककर उसे प्रणाम करते, यह जानते हुये कि वह वास्तव में परमेश्वर का पुत्र है और लोगों का उद्धार करने आया है। यीशु मसीह का कुंवारी मरियम से जन्म लेना बाइबल की एक बहुत महत्वपूर्ण घटना है। जो लोग परमेश्वर पर विश्वास करते हैं उनके लिये इस बात में विश्वास करना बहुत आसान है। जिस परमेश्वर ने आदम और हव्वा को बनाया था उसके लिये यह बिल्कुल कठिन नहीं था कि वह बिना शारीरिक पिता के कुंवारी मरियम के द्वारा एक बच्चे को इस संसार में लाये।

अनेकों पाठ हम मरियम के जीवन से सीख सकते हैं, जैसे कि परमेश्वर का अद्भूत प्रेम जो उसने सारे संसार के प्रति दिखाया। एक अच्छी माता की विशेषताएं जिसने किस प्रकार से परमेश्वर के पुत्र का पालनपोषण किया था। आज मरियम बाइबल की एक ऐसी स्त्री है जिसके विषय में अनेकों गलत धारणाएं हैं। अनेकों लोग आज मरियम की मूर्ति बनाकर उसके सामने झुकते हैं। बाइबल में कहीं पर भी ऐसा नहीं सिखाया गया है, मरियम के नाम से कई बार खाने खिलाये जाते हैं,

अर्थात उसे बहुत ही आदर सम्मान देकर उसकी उपासना की जाती है। बाईबल इसके विषय में कुछ भी नहीं कहती।

I मरियम के विषय में झूठी शिक्षायें यह हैं-

(1) **कि वह परमेश्वर की माता है।** मरियम आम लोगों की तरह एक इन्सान थी। यदि वह परमेश्वर की माता होती तो उसे परमेश्वर से पहले विद्यमान होना चाहिये था। शारीरिक रूप से वह यीशु की माता थी। यीशु ईश्वरीय था और इसलिये वह आदि से परमेश्वर के साथ था। (यहून्ना 1:1)। इसलिये मरियम परमेश्वर की माता नहीं थी। न ही मरियम यीशु मसीह से पहले विद्यमान थी, क्योंकि यीशु तो आरम्भ से ही परमेश्वर के साथ था। बाइबल में कहीं पर भी इस प्रकार की शिक्षा नहीं मिलती। परमेश्वर तथा मनुष्य के बीच में एक बिचवई होने के कारण ही वह परमेश्वर का तथा मनुष्य का पुत्र बना। यदि मरियम भी ईश्वरीय होती तो मसीह का जन्म दो ईश्वरीय शक्तियों के द्वारा होता तथा यीशु तब इस संसार में मनुष्य का पुत्र होकर जन्म नहीं लेता।

(2) **यह शिक्षा बिल्कुल गलत है कि मरियम सारी स्त्रियों में महान होने के कारण बहुत बड़ी और धन्य कहलायेगी और उसकी उपासना होनी चाहिये।** अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है ''कि मरियम सब युग के लोगों में धन्य क्यों है?'' यह सत्य है कि इलीशिबा ने मरियम से कहा था: कि ''तू सब स्त्रियों में ''धन्य'' है'' (लूका 1:48)। और उसने ऐसा इसलिये कहा था क्योंकि मरियम को विशेष रूप से आशीषित किया गया था परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके पास कोई विशेष ईश्वरीय शक्ति थी। बाईबल में और भी कई स्थानों पर स्त्रियों को ''धन्य'' बोला गया है। उदाहरणार्थ हम देखते हैं, लिआ ने कहा था: कि ''मैं धन्य हूं: निश्चय स्त्रियां मुझे धन्य कहेंगी'' (उत्पत्ति 30:13)। ''सब स्त्रियों में से केनी हेवेर की स्त्री याएल धन्य ठहरेगी'' (न्यायियों 5:24)। ''याएल'' सब स्त्रियों में धन्य थी।'' परन्तु कोई भी उसकी उपासना नहीं करता है। मरियम को ''धन्य'' कहा गया था परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उसकी उपासना की जाये। जब यीशु को क्रूस दिया जा रहा था तब भी मरियम के नाम का वर्णन हुआ था तथा प्रेरितों 1:14 में भी उसके विषय में थोड़ा सा बोला गया है। उसकी मृत्यु के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है। पौलूस भी उसके विषय में कुछ नहीं कहता है। पतरस ने भी कुछ नहीं कहा है। यदि परमेश्वर चाहता कि मरियम को लोग बहुत बड़ा दर्जा दें तथा उसकी उपासना करें तो अवश्य ही अपने वचन में प्रभु

इसके विषय में बहुत कुछ कहता।

3. **''पवित्र गर्भधारण'' जैसी शिक्षा का आरम्भ लगभग चौथी शताब्दी में हुआ था** तथा इसके विषय में लोग आपस में सहमत नहीं थे। (सन 1854 में पोप ने इस शिक्षा को कैथलिक कलीसिया के साथ जोड़ दिया था। इस शिक्षा का अर्थ क्या है? इस शिक्षा का यीशु मसीह के जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध मरियम के जन्म से हैं। कैथलिक लोगों के अनुसार ''अपने पुत्र के ईश्वरीय गुणों के कारण ही मरियम को मूल पाप से अलग रखकर सुरिक्षत रखा गया था ताकि वह पवित्र गर्भ धारण करे,'' वे कहते हैं कि यीशु का जन्म होने के लिये यह आवश्यक था कि उसकी माता आदम के पाप से स्वतन्त्र हो। वास्तव में यह शिक्षा गलत है, क्योंकि प्रत्येक बच्चा जब जन्म लेता है तो वह निष्पाप होता है। क्योंकि पाप एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर नहीं जाता है (यहेजकेल 18:20)। एक दिन हमारी मृत्यु होगी और यह इसलिये होगी क्योंकि आदम ने पाप किया था, परन्तु हम आदम के पाप के कारण पापी नहीं हैं।

कैथलिक चर्च के अनुसार मरियम को यीशु को जन्म देने के लिय निष्पाप होना था। यदि यह बात सही है तो फिर मरियम की माता को भी उसे जन्म देने के लिये निष्पाप होना चाहिये था। हम देखते हैं कि यह शिक्षा बिल्कुल गलत है। जो लोग यह विश्वास करते है। कि नवजात शिशु अथवा छोटे बच्चे निष्पाप होते हैं, वे इस शिक्षा में विश्वास नहीं करते।

(4) **मरियम हमेशा तक कुंवारी रही-य**ह भी एक गलत शिक्षा है। यह शिक्षा मरियम को सारी मनुष्य जाति से भिन्न दिखाने के लिये दी गई है। यीशु के जन्म के पश्चात मरियम के पास और भी बच्चे उत्पन्न हुये थे। ''क्या यह बढ़ई का बेटा नहीं? और क्या उसकी माता का नाम मरियम और इसके भाईयों का नाम याकूब और युसुफ और शमौन और यहूदा नहीं। और क्या इसकी सब बहिनें हमारे बीच में नहीं रहतीं?'' (मत्ती 13:55-58)। ''युसूफ नींद से जागकर प्रभु के दूत की आज्ञा अनुसार अपनी पत्नी को अपने यहां ले आया। और जब तक वह पुत्र न जनी तब तक वह उसके पास न गया'' (मत्ती 1:24-25)। यदि वह यूसुफ की पत्नी नहीं थी, तो क्यों उसने विवाह किया?'' इसलिये नहीं कि उसे यीशु की मां बनना था। क्या यह मरियम के लिये उचित होता कि वह विवाह की जिम्मेदारियों को न मानें? यदि वह ऐसा करती तो यह विवाह करने के सिद्धान्तों को तोड़ना है। (1 कुरि 7:3-5)।

(5) **मरियम के विषय में यह कहना कि वह परमेश्वर और मनुष्यों के बीच में एक मध्यस्थ है, कैथलिक लोगों की एक गलत शिक्षा है।** ''हेल मेरी'' यह कैथलिक चर्च की एक प्रार्थना हैं और इसमें वे इन शब्दों का प्रयोग करते हैं ''पवित्र मरियम, परमेश्वर की माता, हम पापियों के लिये प्रार्थना कर, इस समय तथा हमारी मृत्यु के समय ''अमीन'' जबकि बाइबल यह शिक्षा देती है कि केवल यीशु ही हमारा मध्यस्थ है: -परमेश्वर और मनुष्यों के बीच में भी एक ही बिचवई (मध्यस्थ) है, अर्थात् मसीह यीशु जो मनुष्य है'' (1 तीमुथियुस 2:5)। ''हमारा केवल एक ही प्रेमी मध्यस्थ हैं'' (इब्रानियों 4:14-16)। इसलिये किसी और मध्यस्थ की हमें आज आवश्यकता नहीं है।

(6) **एक और अनुचित शिक्षा यह दी जाती है कि मरियम की देह को कब्र में नहीं रखा गया था बल्कि वह स्वर्ग पर उठा ली गई थी।** यह शिक्षा एक ऐसी शिक्षा है जो कि बिल्कुल बे-बुनियाद है तथा इस शिक्षा में कैथलिक चर्च की स्थिति इसलिये भी खराब होती है क्योंकि पहली शताब्दियों में ऐसा कहा गया था कि मरियम की हड्डियां खुदाई करके निकाली गई थीं तथा उन्हें नमुाईश में रखा गया था और यहां तक कि उसकी हड्डियों को बेचा भी गया था।

II मरियम के विषय में यीशु का अपना दृष्टिकोण-

(1) **अपनी जवानी में, यीशु ने अपने माता-पिता की आज्ञा मानी थी** (लूका 2:51)। ऐसा करना उसके लिये अति आवश्यक था क्योंकि उसे दूसरों के सामने एक अच्छा नमूना रखना था। आज्ञा मानने के पाठ को उसने आरम्भ से ही सीखा था-अर्थात माता-पिता तथा परमेश्वर की आज्ञा को मानना। इसलिये यदि आज वह हमसे चाहता है कि हम उसकी आज्ञा को मानें तो वह हमसे कोई ऐसा कार्य करने के लिए नहीं कह रहा है जो उसने खुद न किया हो। अपने बच्चों को हमें सबसे प्रथम आज्ञा मानना सीखाना चाहिये। यूसुफ तथा मरियम ने अपने पुत्र को इसी प्रकार की ट्रेनिंग दी थी। अपनी माता की उसे चिन्ता भी थी और अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उसने यूहन्ना से कहा था: ''कि मेरी माता का ख्याल रखना'' (यूहन्ना 19:26-27)। यह बात दिखाती है कि उसे अपने माता पिता की चिन्ता थी और ऐसा ही हमें भी करना चाहिये।

(2) **तौभी क्या यीशु ने मरियम को दूसरी स्त्रियों से महान कहा?**

क्या उसने अपने शारीरिक सम्बन्ध पर अधिक ज़ोर दिया था? क्या उसने कभी मरियम को ''परमेश्वर की माता'' कहकर पुकारा था?'' कभी नहीं। एक बार गलील के काना शहर में एक विवाह समारोह में जब मरियम उसके पास आकर

बोली कि दाखरस घट गया है तब यीशु ने उससे कहा है महिला तुझे मुझसे क्या काम? (यूहन्ना 2:3,4)। यहां हम देखते हैं कि उसने उसे माता कहकर भी नहीं पुकारा परन्तु उसने उसे ''हे महिला'' कहकर पुकारा। उसके प्रचार करने की यह शुरूआत थी। अब वह उसका उद्धारकर्ता था, उसका पुत्र कहलाने से भी अधिक वह उसका उद्धारकर्ता था। मरियम का कार्य अब समाप्त हो चुका था तथा यीशु का कार्य अब आरम्भ हुआ था। क्योंकि मरियम इस बात को समझ गई थी तथा इसलिये उसने सेवकों से कहा कि ''जो कुछ वह तुमसे कहे, वही करना''

एक बार उसकी माता और भाई उससे बात करना चाहते थे, किसी ने उससे कहा तेरी माता और भाई बाहर खड़े हैं। यह सुनकर उसने उत्तर दिया: ''कौन है मेरी माता और कौन हैं मेरे भाई''? और अपने चेलों की ओर अपना हाथ बढ़ा कर कहा, ''देखो, मेरी माता और मेरे भाई यह हैं। क्योंकि जो कोई मेरे स्वगीय पिता की इच्छा पर चले, वही मेरा भाई और बहिन और माता है'' (मत्ती 12:46-50)। यीशु ने हमेशा आत्मिक बातों को अधिक महत्व दिया था। उसने सिखाया था कि जो उसके स्वर्गीय पिता की इच्छा पर चलते हैं, वो उसके लिये उसके भाई-बहिनों तथा उसकी माता से भी बढ़कर हैं।

एक और स्थान पर हम देखते हैं कि एक स्त्री उससे इस प्रकार से कहती है कि ''धन्य है वह गर्भ जिस में तू रहा, और वे स्तन, जो तूने चूसे, यीशु ने कहा: हां, परन्तु धन्य वे हैं, जो परमेश्वर का वचन सुनते और मानते हैं। (लूका 11:27-28)। यीशु ने बार-बार इस बात को कहा था कि जो परमेश्वर की इच्छा पर चलते हैं वे मरियम से भी अधिक धन्य हैं।

III मरियम यीशु के अधिकार वो तब समझ गई थी जब उसने अपना प्रचार आरम्भ किया था:

(1) **मरियम ने सेवकों से कहा ''जो कुछ वह तुमसे कहे, वही करना** (यूहन्ना 2:5)। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण पाठ है जो हम मरियम के जीवन से सीख सकते हैं। उसने परमेश्वर के पुत्र के अधिकार को समझा। इसलिये हमें आज मरियम की उपासना करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि परमेश्वर ने उसे कोई भी विशेष शक्ति नहीं दी थी। आज हमें प्रभु यीशु के अधिकार को मानना है। यदि मरियम और यीशु आज हमसे बातें करते तो अवश्य ही वे हमें यह बताते कि धार्मिक संसार में उन दोनों का दर्जा क्या है। पापों से क्षमा और उद्धार केवल यीशु के ही द्वारा सम्भव है। मरियम प्रभु यीशु को इस संसार में लाने का एक

ज़रिया थी। अर्थात हम इस प्रकार से कह सकते हैं कि उद्धार की योजना की जंजीर में इब्राहिम तथा दाऊद की तरह वह भी इस ज़ंजीर की एक कड़ी थी। वह हमारी उद्धारकर्ता नहीं है, न ही वह हमारी मध्यस्थ है, वह हमारी न्यायी भी नहीं है। यीशु, अर्थात केवल परमेश्वर का पुत्र ही सब कुछ है।

(2) **''जो कुछ वह तुमसे कहे, वही करना''।** यह केवल एक सलाह ही नहीं है बल्कि एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे बाइबल में बार-बार सिखाया गया है। हमारा अनन्त जीवन भी इसी सिद्धान्त के ऊपर अधारित होगा। वह हमारा ''सदाकाल के उद्धार का कारण हो गया है'' (इब्रानियों 5:9)। उसके सम्मुख एक दिन हम सब खड़े होंगे और वह हमारा न्याय करेगा। ''जब मनुष्य का पुत्र अपनी महिमा में आएगा, और सब स्वर्गदूत उसके साथ आएंगे तो वह अपनी महिमा के सिंहासन पर विराजमान होगा। और सब जातियां उसके सामने इकट्ठी की जाएंगी, और जैसा चरवाहा भेड़ों को बकरियों से अलग कर देता है, वैसे ही वह उन्हें एक दूसरे से अलग करेगा। (मत्ती 25:31-32)। शताब्दियों से ये शब्द जो मरियम ने कहे थे आज भी गूंज रहे हैं और हमें इन शब्दों को सुनने की आवश्यकता है कि **''जो कुछ वह तुमसे कहे, वही करना''**।

क्या याशु के पास प्रेम तथा सहानुभूति की सब वे योग्यताएं हैं, जो एक मध्यस्थ होने के लिये आवश्यक हैं? इब्रानियों 4:14-16 के अनुसार उक मध्यस्थ की क्या योग्यताएं होनी चाहिये?

यीशु मसीह का पालन पोषण जिस प्रकार से मरियम तथा यूसूफ़ ने किया था (लूका 2:52), क्या आज प्रत्येक मसीही माता-पिता को ऐसा नही करना चाहिये?

मरियम और मारथा
(Mary and Martha)

यीशु ने एक बार यूं कहा था, कि ''लोमड़ियों के भट और आकाश के पक्षियों के बसेरे होते हैं पर मनुष्य के पुत्र को सिर धरने की भी जगह नहीं'' परन्तु एक ऐसा स्थान था जहां यीशु आराम कर सकता था और वो स्थान था मरियम, मारथा का घर। उनके साथ उनका भाई लाज़र भी रहता था। यरूशलेम में जिस स्थान पर वे रहते थे उसका नाम था बैतनिय्याह। बाइबल में तीन स्थानों पर इन दोनों बहिनों का वर्णन है: भोजन के समय (लूका 10:38-42), लाज़र की मृत्यु के समय (यूहन्ना 11:1-46), और फिर से भोजन के समय (यूहन्ना 12:1-9)।

एक बार यीशु उनके घर जाता है और ऐसा लिखा है कि ''वह एक गांव में गया और मार्था नाम की एक स्त्री ने उसे अपने घर में उतारा। और मरियम नाम उसकी एक बहिन थी, वह प्रभु के पांवों के पास बैठकर उसका वचन सुनती थी। पर मार्था सेवा करते करते घबरा गई और उसके पास आकर कहने लगी, हे प्रभु, क्या तुझे कुछ भी सोच नहीं कि मेरी बहिन ने मुझे सेवा करने के लिये अकेली ही छोड़ दिया है? सो उससे कह, कि वह मेरी सहायता करे। प्रभु ने उसे उत्तर दिया, हे मार्था, तू बहुत बातों के लिये चिन्ता करती है और घबराती है। परन्तु एक बात अवश्य है, और उस उत्तम भाग को मरियम ने चुन लिया है: जो उससे छीना न जाएगा (लूका 10:38-42)। जितना भी हम इन दोनों बहिनों के बारे में सोचते हैं उतना ही हमें लगता है कि वे हमारी ही तरह हैं क्योंकि उनके जीवन से ऐसे-ऐसे पाठ हमें सीखने को मिलते हैं जो कि प्रत्येक स्त्री के मन को छू लेते हैं।

I मारथा को यीशु ने क्यों डांटा था?

(1) इसलिये नहीं कि वह घर के काम काज में अधिक ध्यान देती थी। क्योंकि नीतिवचन के 31 अध्याय में तो ऐसी स्त्री की प्रशंसा की गई है जो अपने घर के काम का ध्यान रखती है। परमेश्वर ने भी स्त्री को यह जिम्मेदारी दी है कि ''वह अपने घरबार को अच्छी तरह से चलाये'' (तीतुस 2:5)। यीशु ने मारथा को

इसलिये नहीं डांटा था क्योंकि वह खाना पका रही थी, बल्कि इसलिये डांटा क्योंकि वह इस बात को अधिक महत्व दे रही थी। वह जानता था कि यह भी एक आवश्यक कार्य है।

(2) **यीशु ने उसे इसलिये भी डांटा था क्योंकि वह शारीरिक वस्तुओं को अधिक महत्व दे रही थी।** इस जीवन में हम दो बातों को महत्त्व देते हैं, और वे हैं, शारीरिक तथा आत्मिक। कई लोग शारीरिक बातों को अधिक महत्व देते हैं तथा कुछ लोग ऐसे हैं जो आत्मिक बातों को अधिक महत्व देते हैं। दोनों बातों के प्रति हमारी कुछ जिम्मेदारियां हैं। यीशु मारथा को यह बताना चाहता था कि शारीरिक वस्तुओं को आत्मिक बातों से अधिक महत्व नहीं देना चाहिये। मारथा सेवा करते-करते घबरा गई थी। यीशु ने व्यर्थ को चिन्ता करना जैसी बातों के विषय में बहुत कुछ कहा है। मनुष्य की यह कमज़ोरी आरम्भ से ही रही है कि वह व्यर्थ में घबराता तथा चिन्ता करता है। इसलिये मरियम तथा मारथा के जीवन से हम यह सीख सकते हैं कि उत्तम भाग को हमें कैसे चुनना चाहिये।

II क्या मारथा के पास सचमुच में कोई समस्या थी?

(1) **कुछ लोगों के पास सचमुच में समस्या होती है।** हमने नाओमी तथा अय्यूब के कष्टों और समस्याओं के विषय में पढ़ा था। उनके कष्ट वास्तव में बहुत अधिक थे। उन्हें इन कष्टों पर विजय प्राप्त करनी थी और यदि वे ऐसा नहीं करते तो यह कष्ट उन्हें हमेशा घेरे रहते। मारथा शायद ऐसा सोचती थी कि उसके पास उस समय एक विशेष समस्या है परन्तु वास्तव में यह समस्या कोई खास नहीं थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपनी घबराहट के लिये वह कुछ उचित कारण दे सकती थी। वह एक उचित कारण यह भी दे सकती थी कि यहां उनका एक विशेष मेहमान अचानक ही आ गया है और उसके लिये खाने का प्रबन्ध करना है, क्योंकि उन दिनों में आज की तरह ऐसे खाने भी उपलब्ध नहीं थे जैसे मैगी नुडल, जैम-ब्रेड या फिर केक इत्यादि।

भोजन बनाना भी कोई आसान कार्य नहीं था, और मारथा को यह सब कुछ अकेले ही करना था। यह सब देखकर वह बहुत घबरा गई थी। और वह थोड़ी चिड़चिड़ी सी भी हो गई थी यह देखकर कि मरियम तो यीशु के साथ बातें कर रही है और मुझे सारा काम अकेले ही करना पड़ रहा है। अपनी बहिन के लिए इस समय वह गुस्से में बोल रही थी।

2. हमारे जीवन में भी कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब किसी बात पर हम चिड़चिड़े हो जाते हैं। मारथा का भी चिड़चिड़ापन इस समय स्वाभाविक था।

बाद में शायद वह अपने इस तरह के व्यवहार से काफ़ी लज्जित हुई होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मार्था एक अच्छी स्त्री थी। अनेकों बार लोग किसी भी बड़ी कठिनाई का सामना तो बड़ी बहादुरी से कर लेते हैं परन्तु छोटी सी मुसीबत या चिन्ता से वे बहुत जल्दी घबरा जाते हैं।

III क्या मसीहियों को चिन्ता करनी चाहिए?

1. **प्रेरित पौलूस ने कहा था, ''किसी भी बात की चिन्ता मत करो-** क्योंकि मैंने यह सीखा है कि जिस दशा में हूं, उसी में सन्तोष करूं'' (फिलिप्पियों 4:6-11)। तौभी इसी प्रेरित ने एक बार यह भी कहा था कि ''और बातों को छोड़कर जिन का वर्णन मैं नहीं करता सब कलीसियाओं की चिन्ता प्रतिदिन मुझे दबाती है (2 कुरिन्थियों 11:24-28) यीशु ने चिन्ता के विषय में एक बहुत सुन्दर पाठ सिखाया था ''अपने प्राण के लिये यह चिन्ता न करना कि हम क्या खाएंगे? और क्या पीएंगे? और न अपने शरीर के लिये कि क्या पहिनेंगे?'' (मत्ती 6:25-34)। क्या वह ऐसा कह रहा है कि यह जीवन व्यर्थ है? क्या वह हमें जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने से रोक रहा है? वास्तव में ऐसा नहीं है, हमारे प्रभु को भी इस पापी संसार की चिन्ता थी और इसीलिये वह खोई हुई आत्माओं के लिये रोया था (लूका 19:41)। अपने मित्र लाज़र के लिये भी वह रोया था (यूहन्ना 11:35)। गतसमनी के बाग में भी वह रोया था (लूका 22:39-44, इब्रानियों 5:7)।

(2) **इन उदाहरणों से हम यह सीखते हैं कि मसीही लोग जिन बातों की चिन्ता करते हैं वे ऐसी बातें हैं जो उचित हैं।** जो मनुष्य यह कहता है कि ''मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं हैं, मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता'' वह अपने आप को धोखा देता है तथा उसने जीवन का असली अर्थ नहीं समझा है। क्या यीशु को किसी बात की चिन्ता थी? किसकी ? खोई हुई आत्माओं की। उसे चिन्ता थी, इस बात की कि लोग अपने पापों में नाश हो रहे हैं। वह रोगियों और दुख से पीड़ितों की भी चिन्ता करता था। परन्तु उसका सम्पूर्ण उद्देश्य यह था कि लोगों को अनन्त जीवन का मार्ग बता सके।

IV उत्तम भाग क्या है?

(1) प्रभु यीशु तथा प्रेरित पौलूस आत्मिक तथा अनन्त बातों को अधिक महत्व देते थे। उन्हें अनन्त बातों की चिन्ता थी। आत्माओं की चिन्ता थी। संसार की नाशवान वस्तुओं को वे कोई महत्व नहीं देते थे। जो मसीही इस बात को सीख लेते

हैं वे अपने मसीही जीवन में काफ़ी आगे बढ़ने लगते हैं। यीशु ने कहा था कि ''मरियम ने उत्तम भाग को चुन लिया है और यह उससे छीना नहीं जायेगा''। उसने यह भी कहा था कि ''पहिले तुम उसके राज्य और धर्म की खोज करो तो वे सब वस्तुएं भी तुम्हें मिल जाएंगी। (मत्ती 6:33) अफ्रीका में एक बहुत प्रचलित कहावत यह है कि ''अपनी बिल्ली की दवाई खरीदने के लिये अपने हाथी को मत बेचना।'' हमें प्रथम बातों को हमेशा प्रथम स्थान देना चाहिए।

(2) **इस संसार की चिन्ताएं हमारे उत्तम भाग को छिपाये रखती हैं।** एक अन्य स्थान पर यीशु ने यह सिखाया था कि ''संसार की चिन्ता और धन का धोखा और वस्तुओं का लाभ उन में समाकर वचन को दबा देता है''। (मरकुस 4:19)। फिर से उसने यह भी कहा था कि ''सावधान रहो, ऐसा न हो कि तुम्हारे मन खुमार और मतवालेपन और जीवन की चिन्ताओं से सुस्त हो जाएं- (लूका 21:34)। अक्सर यह भी देखा जाता है कि एक पुरूष या स्त्री पैसा कमाने में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें आत्मिक बातों से कोई लगाव नहीं रहता। यानि इस संसार की चिन्ताओं ने उनसे उत्तम भाग को छीन लिया है।

V चिन्ताओं के कारण को किस प्रकार से समाप्त किया जा सकता है?

हम मसीही भी कई बार व्यर्थ की चिन्ताओं में फंस जाते है। तथा जिस प्रकार से यीशु ने मार्था को डांटा था वैसी ही डांट हमें भी मिलनी चाहिए।

(1) **क्या हमारा जीवन एक ही बिन्दु पर केन्द्रित नहीं हैं?** जो जीवन अच्छी तरह से चलता है वह आत्मिक बातों पर केन्द्रित होता है। जिस प्रकार से पहिया अपनी धूरी पर घूमता है उसी तरह से मसीहियों का जीवन भी आत्मिक बातों पर केन्द्रित होना चाहिए।

''अन्त की बात यह है कि परमेश्वर का भय मान और उसकी आज्ञाओं का पालन कर, क्योंकि मनुष्य का सम्पूर्ण कर्त्तव्य यही है'' (सभोपदेशक 12:13)। मान लीजिये यदि पहिया अपनी धुरी पर नहीं है तो कितनी देर तक सही तरह से चलेगा? और यदि हम चारों ओर से चिन्ताओं से घिरे रहें तो ज़रा सोचिये कि हमारी क्या स्थिति होगी। हमारा जीवन किस प्रकार से चल रहा है? क्या यह जीवन अपने केन्द्र से हट तो नहीं गया है? मार्था की तरह घबराने तथा व्यर्थ की चिन्ता करने से हम अपना स्वयं का नुकसान करते हैं।

(2) **क्या हम अधिक महत्व भौतिक वस्तुओं को देते हैं?** यदि ऐसा है, तो घबराहट तथा चिन्ताऐं अवश्य आयेंगी। अनेक लोग इस प्रकार से सोचते हैं कि

वास्तविक प्रसन्नता केवल भौतिक वस्तुओं से ही मिल सकती है। आज समाज में अपने आप को दूसरों से ऊपर उठाने की होड़ सी लगी हुई है। जब कोई हमारे समाज में अपने आप को माली हालत से बड़ा बना लेता है तब वह यह देखता है कि उससे बड़ा अभी कोई और भी है और फिर वह उसकी तरह और बड़ा बनना चाहता है। ऐसा करते-करते वह अपने आप को कष्टों तथा चिन्ताओं से घिरा पाता है। यदि हम यीशु के इस पाठ को सीख लें: तो कितना अच्छा होगा, उसने कहा था: कि ''किसी का जीवन उस की संपत्ति की बहुतायत से नहीं होता (लूका 12:15)। सांसारिक वस्तुओं से सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती।

यीशु ने जो प्रार्थना अपने चेलों को सिखाई थी उसमें पांच ऐसी चीज़ों के लिये प्रार्थना की गई है जो आत्मिक है तथा यीशु की इस प्रार्थना में केवल एक ही शारीरिक चीज़ के लिये बिनती की गई है। शारीरिक आवश्यकताओं को हमें आत्मिक बातों से अलग रखना चाहिये।

बहुत से लोग आज उस छोटे लड़के की तरह करते हैं जिसने समुद्र के किनारे रेत का एक छोटा सा घर बनाया था। यह लड़का बहुत खुश था। परन्तु वह यह भूल गया था कि रात को समुद्र की लहरें उसके इस छोटे से घर को बिल्कुल नाश कर देंगी। आज लोग अपना पूरा जीवन केवल पैसा कमाने में ही लगा देते हैं और वे यह नहीं जानते कि एक दिन जब वे कब्र में जायेंगे तो अपने साथ कुछ भी नहीं ले जायेंगे।

(3) **शारीरिक चिन्ताओं के और क्या-क्या कारण हो सकते है?** बिमारी और कष्टों को देखकर हमें यह संसार बहुत ही अन्धकारमय लगता हैं। एलिय्याह के विषय में सोचिये। अपने प्राण को बचाकर ईज़ेबेल के सामने से वह भाग रहा था। बहुत थककर वह जंगल में चला जाता है और वहां एक झाऊ के पेड़ के तले बैठ जाता है। उसको अपने आप पर इतना क्रोध आ रहा था कि वह अब मरना चाहता है (1 राजा 19:1-8)। उसने वहां थोड़ा विश्राम किया और परमेश्वर ने उसे कुछ खाने को दिया। वहां से फिर उसने अपनी यात्रा आरम्भ की, परन्तु फिर से उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ने लगा। और वह तब सही हुआ जब परमेश्वर ने उसे कुछ कार्य करने के लिये दिया (1 राजा 19:15,16) और यदि हम अपने आप को किसी कार्य में व्यस्त रखें तो व्यर्थ की चिन्ता करने का प्रश्न ही नहीं उठता। एलिय्याह के समय से लेकर आज तक अनेकों लोगों ने इसी फार्मूले का इस्तेमाल किया है। अर्थात उन्होंने अपने आप को किसी न किसी कार्य में लगाकर व्यर्थ की चिन्ता को दूर किया है।

(4) अपने विवेक की जांच कीजिए- व्यर्थ की चिन्ता करने का एक और भी कारण है और वो है अनुचित कार्य करना। यदि कोई मनुष्य यह जानता है कि सही कार्य क्या है और यदि वह उस सही कार्य को नहीं करता तो वह अपने जीवन में अप्रसन्न है, जिस प्रकार से भजन संहिता को लिखने वाला यूं कहता है कि-तेरे क्रोध के कारण मेरे शरीर में कुछ भी आरोग्यता नहीं, और मेरे पाप के कारण मेरी हड्यिों में कुछ भी चैन नहीं (भजन 38:3)। वे लोग भी जो सच्चे मन से परमेश्वर की सेवा करना चाहते हैं कई बार ऐसा करने से चूक जाते हैं। कई बार गलती करने के पश्चात हम बहुत बैचेन से रहने लगते हैं और तब हमारा ध्यान पश्चाताप की ओर जाता है। इस विषय में भजन का लिखने वाला कहता है कि: 'जब मैंने अपना पाप तुझ पर प्रकट किया और अपना अधर्म न छिपाया और कहा, मैं यहोवा के सामने अपने अपराधों को मान लूंगा, तब तूने मेरे अधर्म और पाप को क्षमा कर दिया।'' (भजन 32:5) इसलिये तुम आपस में एक दूसरे के सामने अपने पापों को मान लो, और एक दूसरे के लिये प्रार्थना करो जिस से चंगे हो जाओ (याकूब 5:16)।

(5) **घबराने और चिन्ता करने का एक और कारण है और वह है भय।** प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में भयभीत होता है। कई बार भयभीत होना हानिकारक भी हो सकता है तथा कई बार यह हमारे लिये लाभदायक भी होता है। उदाहरणार्थ हम एक तेज़ गति से जा रही ट्रेन से भयभीत हो जाते हैं तथा हम उसके सामने नहीं जाते। परन्तु कई बार ऐसे भी डर हमारे जीवन मे आते हैं जो हमारी शान्ति को हमसे छीन लेते हैं। केवल ईश्वरीय गुण ही हमें यह सिखा सकते हैं कि डर का मुकाबला हम किस प्रकार से कर सकते हैं। यदि हम परमेश्वर का भय मानते हैं और उसका आदर करते हैं तो तमाम प्रकार के डर हम से दूर हो जायेंगे। पौलूस ने इस तरह से कहा था: ''इसलिये हम बेधड़क होकर कहते हैं, कि प्रभु मेरा सहायक है, मैं न डरूंगा, मनुष्य मेरा क्या कर सकता है'' (इब्रानियों 13:6)।

(6) **क्या हम अपने विचारों को लगाम देने में असफ़ल रहे है।?** अनेकों लोग ऐसे होते हैं जो अपनी जीभ को तो लगाम लगाने में सफ़ल हो जाते हैं परन्तु अपने विचारों पर लगाम लगाने का प्रयत्न नहीं करते। ''क्योंकि जैसा वह अपने मन में विचार करता है, वैसा वह आप है।'' (नीतिवचन 23:7)। जैसा हम अपने विषय में सोचते हैं वैसे ही हम हैं। चिन्ताओं और भय को हमें विश्वास और साहस से दूर करना चाहिये। पौलूस इसके लिये एक बहुत अच्छा फार्मूला हमें देता है वह कहता है कि: '' किसी भी बात की चिन्ता मत करो- तथा जो जो बातें आदरणीय हैं, उचित है, पवित्र हैं, सुहावनी और मनभावनी हैं तथा जो जो सद्धगुण और प्रशंसा

की बातें है उन्हीं पर ध्यान लगाया करो'' (फिलिप्पियों 4:6-11)।

यदि हम सही रूप से इस बात को मानें तो अवश्य ही हमारे मनों को शान्ति मिलेगी। अच्छी मसीही पुस्तकें पढ़िये, मसीही गीतों को गुनगुनाईये और परमेश्वर की प्रशंसा में गीत गाईये। एक मसीही स्त्री ने एक बार कहा था कि ''जब मै उदास होती हूं तब मैं गीत गाने लगती हूं और ज़ोर से गाती हूं।''

(7) **क्या हम अपना सारा भार अकेले ही उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं?** प्रत्येक परिवार में समस्याएं होती हैं। हम जो परमेश्वर के परिवार में हैं कई बार यह भूल जाते हैं कि हमारा एक स्वर्गीय पिता है जो हमारी भलाई चाहता है। क्या इससे बड़ी किसी और आशीष के विषय में हम सोच सकते हैं? या इससे बड़ी किसी और प्रतिज्ञा के विषय में हम सोच सकते हैं? प्रेरित पतरस के अनुसार अपनी सारी चिन्ता उसी पर डाल दो ''क्योंकि उसको तुम्हारा ध्यान है।'' (1 पतरस 5:7)। रोमियों 8:28 के अनुसार ''जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं, उनके लिये सब बातें मिलकर भलाई ही को उत्पन्न करती हैं।'' ''मनुष्य की गति यहोवा की ओर से दृण होती है, और उसके चलन से वह प्रसन्न होता है।'' (भजन 37:23) विश्वास तथा प्रार्थना के द्वारा हम महान परमेश्वर से सहायता मांग सकते हैं।

(8) **क्या कभी आपने अपनी समस्याओं को क्रमानुसार देखा है?** तीन श्रेणियों में हम अपनी समस्याओं को बांट सकते हैं: (1) कुछ समस्याएं ऐसी होती है जिन्हें रोका जा सकता है। (2) कुछ ऐसी हैं जिन्हें ठीक किया जा सकता है (3) और शेष समस्याओं या कठिनाइयों को सहन भी किया जा सकता है। जबकि हमने व्यर्थ की चिन्ताओं के कारणों को ढूंढा है इसलिये यह अच्छा होगा कि हम इन समस्याओं को श्रेणी के अनुसार जानें। यदि समस्याओं को रोका जा सके तो बहुत ही अच्छी बात है क्योंकि ऐसा करने से हमें लाभ ही होगा। यदि समस्याओं को सुलझाया जा सके तो इसके लिये हमें कुछ करना होगा और यदि हम इस योग्य नहीं है कि समस्याओं को रोक सकें या सही कर सकें, तब परमेश्वर के अनुग्रह के द्वारा हम इन्हें सहन कर सकते हैं।

जब हम अपने आप को कई परेशानियों से घिरा हुआ पाते है, तब हमें समय निकालकर अपने विषय में सोचना चाहिये और यदि मार्था भी ऐसा कर सकती तो शायद वह इस सत्य को भली-भांति समझ सकती। ज़रा इन प्रश्नों को आप अपने आप से पूछिये:

1. क्या अपनी इस परेशानी का मैं कुछ इलाज कर सकती हूं? यदि हां तो क्या इसके लिये मैं कुछ कार्य कर रही हूं। यदि नहीं, तो क्या मैं व्यर्थ में ऐसी स्थिति को बदलने का प्रयत्न कर रही हूं, जिसे बदला नहीं जा सकता?

2. क्या मैं पिछली या बीती हुई किसी ऐसी बात के विषय में सोच रही हूं जिसे बदला नहीं जा सकता?
3. क्या मैं शारीरिक बातों को अधिक महत्त्व देती हूं? क्या मैं हमेशा इस प्रकार से सोचती रहती हूं कि उनके पास जो है वो मेरे पास नहीं है?
4. क्या मैं यह समझती हूं कि चिन्ताओं के ऊपर नियंत्रण किया जा सकता है?
5. क्या मैं अपने विषय में दुखी हो रही हूं? यदि हां, तब मुझे ऐसे व्यक्ति की सहायता करनी चाहिये जो मेरे से बहुत कम आशीषित है।
6. क्या मैं बिना प्रभु की सहायता लिये अपनी चिन्ताओं को दूर करने का प्रयत्न कर रही हूं?
7. क्या मैं यह समझती हूं कि चिन्ता करना व्यर्थ हैं?
8. क्या मैंने किसी को चोट पहुंचाई है? या किसी से अनुचित तरीके से बात की है और ऐसा करने से क्या मेरा मन बहुत अशान्त हैं?
9. क्या किसी ने मुझे नीचा दिखाने की कोशिश की है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं इस बात को बहुत अधिक महत्त्व दे रही हूं?
10. क्या मैं ठीक तरह से सोती हूं या मुझे नींद सही आती है? कहीं बिमारी या थकावट के कारण तो मैं चिन्तित नहीं हूं?
11. क्या मेरे पास बहुत से ऐसे कार्य तो नहीं है, जिन्हें मैंने समाप्त नहीं किया है? कहीं ऐसा तो नहीं कि मैंने बहुत सारी जिम्मेदारियां अपने हाथ में ले ली हैं?
12. क्या वास्तव में मेरे सामने कोई समस्या है? या मैंने स्वयं ही इस बात को अपनी समस्या बना लिया है जैसे मार्था ने किया था?
13. मुझे किसी बात का भय तो नहीं है? यदि हां, तो क्या मैं इसे विश्वास के द्वारा समाप्त करने का प्रयत्न करूंगी?
14. एक और बड़ा आवश्यक प्रश्न जो हमें अपने आप से पूछना चाहिये कि क्या मेरी इस समस्या से मेरी स्वयं की और दूसरों की आत्माओं पर किसी प्रकार का प्रभाव पड़ेगा?

एक दरिद्र विधवा
(The Poor Widow)

आज जिस प्रकार के पाठों को हमें सीखने की आवश्यकता है वे सब हम उन स्त्रियों से सीख सकते हैं जिनका वर्णन पवित्र बाइबल में हुआ है।

मरकुस के 12 अध्याय की 41 से 44 आयातों में यीशु एक ऐसी स्त्री के विषय में बताता है जिसे हमें हमेशा याद रखना चाहिये क्योंकि उसके जीवन से हमें यह सीखने को मिलता है कि परमेश्वर के प्रति हमारा क्या कर्तव्य होना चाहिए तथा एक मसीही का अपने पैसे के साथ किस प्रकार का संबन्ध होना चाहिए।

I परमेश्वर और मनुष्य तथा भौतिक वस्तुऐं–

(1) हमेशा से ही मनुष्य और उसका पैसा तथा परमेश्वर का आपस में एक सम्बन्ध रहा है और यह एक ऐसा सम्बन्ध है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। प्रत्येक युग में प्रभु ने अपने लोगों को यह आज्ञा दी थी कि वे उसके लिए भेंट लायें। इस विषय पर अक्सर बहुत शिक्षा दी जाती है। मसीही और उसका पैसा एक ऐसा पाठ है जिसे सीखना हम सबके लिए बहुत आवश्यक है। जब एक छोटा बच्चा आइसक्रीम लेने के लिए आपसे पैसा मांगने लगता है तब से ही वह पैसे के लेन-देन को जीवन भर करता है। जब भी हम प्रतिदिन की वस्तुओं को खरीदने के लिए बाजार जाते है हमें पैसा खर्च करने के लिए एक फैंसला करना पड़ता है। प्रभु के दिन यानि ऐतवार को उपासना में भी हमें चन्दा देने का फैंसला करना पड़ता है। प्रत्येक मसीही स्त्री को चन्दा देने के विषय में गम्भीरता पूर्वक सोचना चाहिए।

(2) **यीशु भी देने के विषय में बहुत सिखाता था।** एक बार वह मन्दिर के भण्डार के सामने बैठ गया, यह देखने के लिए कि लोग मन्दिर के भण्डार में किस प्रकार से पैसे डालते हैं और वहां बहुत से धनवानों ने बहुत कुछ डाला। थोड़ी देर के बाद उसकी नज़र एक निर्धन विधवा के ऊपर गई, और उसने देखा कि एक कंगाल विधवा ने आकर दो दमड़िया, जो एक अधेले के बराबर होती हैं, डालीं। यीशु प्रत्येक क्षण इस अवसर की खोज में रहता था कि आसपास की किसी भी घटना को देखकर लोगों को शिक्षा दे सके और उसने तुरन्त अपने चेलों को बुलाकर

उनसे कहा "मैं तुम से सच कहता हूं कि मन्दिर के भण्डार में डालने वालों में से इस कंगाल विधवा ने सब से बढ़कर डाला है"।

(3) **परमेश्वर दो प्रकार के धन के विषय में बोलता है**

यह विधवा इस संसार में दरिद्र इसलिए थी क्योंकि उसके पास शारीरिक वस्तुएं नहीं थी। परन्तु धार्मिकता में वह बहुत धनी थी। वह आत्मिकता में भी बहुत दृण थी। भौतिक या शारीरिक वस्तुओं का होना कोई बुराई नहीं है, यदि हमारा परमेश्वर के साथ सही संबन्ध है। इब्राहिम, युसुफ और अय्युब ये सभी धनी लोग थे लेकिन साथ ही धार्मिक भी थे। यीशु ने एक ऐसे व्यक्ति के विषय में बताया था जो इस संसार में बहुत धनी था परन्तु वह बहुत बड़ा मूर्ख भी था ऐसा ही वह मनुष्य भी हैं। (लूका 12:15-21) जो अपने लिए धन बटोरता है, परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में धनी नहीं है"। धार्मिक लोग धन के बिना चैन से रह सकते हैं परन्तु धनी लोग परमेश्वर के बिना चैन से नहीं रह सकते। धन और प्रतिष्ठा मेरे पास है, वरन ठहरने वाला धन और धर्म भी है (नीतिवचन 8:18)। गरीब विधवा के पास केवल दो दमड़ियां थीं परन्तु वास्तव में धार्मिकता में वह बहुत धनी थी। यीशु ने कहा था कि "अपने लिए पृथ्वी पर धन इकट्ठा न करो- परन्तु अपने लिए स्वर्ग में धन इकट्ठा करो" (मत्ती 6:19-20)। बाइबल ऐसी शिक्षा नहीं देती कि हम अपने लिए पैसे की बचत न करें परन्तु यहां आवश्यक बात यह है कि हमें सबसे पहला स्थान अपने जीवन में परमेश्वर को देना चाहिये।

II परमेश्वर ने मनुष्य को देने की आज्ञा क्यों दी है?

जो भी आज्ञाएं मनुष्य जाति को परमेश्वर ने दीं हैं वे इसलियें नहीं दीं कि वह अन्यायी होकर हम पर अधिकार चलाना चाहता है। उसकी आज्ञाएं ऐसी नहीं है जिनसे हमें कोई कष्ट हो। यदि सब मसीही यह समझ जायें कि परमेश्वर क्यों चाहता है कि वे अपने पैसे को उसके कार्य के लिए दें तो लोगों को देने में कोई परेशानी नहीं होगी।

1. **हमारी भलाई के लिए परमेश्वर चाहता है कि हम दें–** "जहां तेरा धन है वहां तेरा मन भी लगा रहेगा" (मत्ती 6:21)। प्रभु चाहता है कि हमारे ध्यान हमेशा आत्मिक बातों पर लगे रहें ताकि हम अपने आप को स्वर्ग में जाने के लिए तैयार कर सकें। किसी भी अच्छे कार्य के लिए मन से देना एक बहुत बड़ी बात है तथा इससे हम अपने मन में एक बहुत बड़ी खुशी का अनुभव करते हैं। जब हम प्रभु के कार्य के लिए देते हैं, तब इससे हमारे मन में उसका कार्य करने के लिए नया जोश पैदा होता है। जब हम नहीं देते, तब इसका अर्थ यह होता है कि हम आत्मिक रूप से बिमार हैं। अपनी आत्मा को निरोग रखने के लिए यह

आवश्यक है कि हम प्रभु के कार्य के लिए दें। एक निरोगी आत्मा प्रभु के कार्य के लिए उदारता से देती है।

2. **परमेश्वर तथा यीशु की तरह बनने के लिए हम बलिदान के पाठ को सीखें।** मसीही जीवन देने वाला जीवन है। परमेश्वर ने भी अपने प्रिय पुत्र का बलिदान दिया था। प्रभु यीशु ने भी अपना जीवन सारे संसार के पापों के लिए बलिदान कर दिया था। पहिली शताब्दी के मसीही उदारता से देते थे और उनमें से अनेकों यीशु के लिए शहीद भी हुये थे। तौ भी जो आज अपने को मसीही कहते हैं वे देने में असफल रहे हैं क्योंकि वे वैसे नहीं देते जैसे प्रभु चाहता है। एक बार एक व्यक्ति ने हस्पताल में एक सेना के जवान से पूछा कि तुम्हारा सीधा हाथ कहां गया? उस जवान ने उत्तर दिया कि "मेरा हाथ मैंने खोया नहीं बल्कि मैंने उस हाथ को अपने देश के लिए बलिदान कर दिया है।" यदि हम यीशु की तरह बनना चाहते हैं तो हमारा स्वभाव ऐसा ही होना चाहिए।

3. **जब हम देते हैं तो हम परमेश्वर के निकट और अधिक आते हैं तथा इसके द्वारा परमेश्वर के प्रति हमारा प्रेम और अधिक बढ़ता है।** जिससे हम प्रेम करते हैं उसके लिए हम सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। येही बात है कि माता-पिता अपने बच्चों से अधिक प्रेम करते है जबकि बच्चे शायद उनसे इतना प्रेम न करते हों। बहुत ही कष्टों से होकर कई बार माता-पिता को गुजरना पड़ता है और यह सब कुछ केवल इसलिए वे करते है क्योंकि वे अपने बच्चों की अच्छी से अच्छी देखभाल करना चाहते हैं। प्रेम में बलिदान शामिल होता है तथा यदि हम परमेश्वर के लिए बलिदान करेंगे तो अवश्य ही हमारा प्रेम उसके प्रति बहुतायत से बढ़ेगा।

हमारे घर के सामने एक जन रहता था जो एक दिन लड़ाई के समय बहुत बुरी तरह से घायल हो गया था। और यहां तक कि उसके बचने की कोई आशा नहीं थी लेकिन उसी समय उसका एक प्यारा मित्र अपनी जान की परवाह न करते हुये उसे लड़ाई के मैदान से बचा लाया तथा उसे हस्पताल ले जाया गया और उस आदमी की जान बच गई। यह दोनों इन्सान जब भी आपस में मिलते थे तो उनके मिलने का दृश्य बहुत ही मन को छू लेने वाला होता था। क्योंकि वो दोनों जब भी मिलते थे तब आपस में एक दूसरे को लिपटकर बहुत रोते थे। उनमें आपस में एक बहुत गहरा संबन्ध था। इस सम्बंध में प्रेम तथा बलिदान दोनों शामिल थे।

यही एक कारण था कि यीशु मन्दिर के भण्डार के सामने बैठा था। क्योंकि वह चाहता था कि उसके पीछे चलने वाले लोग इस महत्वपूर्ण पाठ को सीखें। प्रभु के प्रति हमारे प्रेम की परीक्षा तभी होती है जब हम उसके लिये देते हैं। हम गीत गाते हैं: "मैं यीशु से बहुत प्रेम करता हूं" परन्तु जब चन्दा देने के लिए टोकरी सामने आती है तब हम उसकी ओर से अपना ध्यान हटा लेते हैं। यह सत्य है कि मसीही जीवन में पैसे से भी अधिक और बातों की आवश्यकता है जैसे हमारा मन, समय, हमारी योग्यताएं आदि। लेकिन इस पाठ में यीशु ने विशेषकर चन्दा देने की बात पर ज़ोर दिया है।

परमेश्वर चाहता है कि हम अपने पैसे को इसलिए दें ताकि सुसमाचार का प्रचार किया जा सके। पैसे के बिना ऐसा करना असम्भव होगा। यदि हम आत्माओं को नर्क से बचाने में विश्वास करते हैं तब हमें चन्दा देने में भी विश्वास करना चाहिए।

हमें इसलिए भी देना चाहिए ताकि हम बेसहारा लोगों की सहायता कर सकें। यदि हमारा व्यवहार बेसहारा लोगों के प्रति अनुचित है तब हम मसीह जैसे नहीं है और पैसे के बिना इस कार्य को करना भी असम्भव है।

III मसीहीयों को कितना देना चाहिए?

(1) **मूसा के नियम अनुसार अर्थात् पुराने नियम में दसवां हिस्सा देने की आज्ञा दी गई थी।** इसके अतिरिक्त अपनी इच्छा से भी वे बहुत कुछ देते थे। यहूदी लोग अपनी आमदनी से भी अधिक देते थे। जब यहूदी रोमी साम्राज्य में रहते थे तब भी उन्हें कर देने के अतिरिक्त अपनी आमदनी का दसवां भाग प्रभु के लिए देना पड़ता था। यहां तीन ऐसे सिद्धांत है जो मनुष्य और उसके पैसे पर लागू होते है: (1) परमेश्वर की सदा यह इच्छा रही है कि मनुष्य उसके लिये अपनी भेंट दे (2) यह देना इस प्रकार से होना चाहिए जिस प्रकार से परमेश्वर ने हमें आशीषित किया है और (3) जब हम प्रभु की सेवा करते हैं तब हमारे अन्दर उसके कार्य के लिए अधिक से अधिक देने की इच्छा बढ़ती है।

(2) **जब मूसा के नियम को यीशु ने क्रूस के ऊपर कीलों से जड़ दिया था तब यीशु मसीह का नया नियम लागू हो गया था** (कुलुस्सियों 2:14)। जबकि हम आज मसीही युग में रहते है तो हमें यह जानने की आवश्यकता है कि यह युग एक मसीही और उसके पैसों के विषय में क्या सिखाता है? नये नियम में प्रेरित पौलूस के अनुसार "हर एक जन जैसा मन में ठाने वैसा ही दान करें, न कुढ़-कुढ़ के, और न दबाव से, क्योंकि परमेश्वर हर्ष से देने वाले से प्रेम रखता है" (2 कुरिन्थियों 9:7)। देने के विषय में ही बात करते हुए वह कहता है: "परन्तु बात तो यह है, कि जो थोड़ा बोता है वह थोड़ा काटेगा भी, और जो बहुत बोता है वह बहुत काटेगा।" और एक अन्य स्थान पर यूं पढ़ते है कि "सप्ताह के पहिले दिन तुम में से हर एक अपनी आमदनी के अनुसार कुछ अपने पास रख छोड़ा करे।" (1 कुरिन्थियों 16:2)। यहां हम यह सीखते हैं कि एक मसीही को हर्ष के

साथ, सप्ताह के पहिले दिन, मन में ठान कर, जैसा परमेश्वर चाहता है अपने चन्दे को देना चाहिए।

कई लोग बलिदान के साथ नहीं देना चाहते यह कहकर कि अब हम मूसा के नियम के आधीन नहीं है तथा हमें दसवां हिस्सा देने को नहीं कहा गया है। ऐसे तर्क से पता चलता है कि हमने अभी भी मसीहीयत को अच्छी तरह से नहीं समझा है। क्यों एक मसीही जिसे परमेश्वर ने बहुतायात से आशीषित किया है एक यहूदी से कम देना चाहता है? वास्तव में यहूदी लोग तो ऐसे नियम के आधीन थे जो सिद्ध नहीं था। जब यहूदी लोग पिन्तेकुस्त के दिन मसीही बने होंगे तो क्या आप ऐसा सोच सकते है कि वे हर्ष के साथ ज़ोर से चिल्लाकर कह रहें होगें? "हैलीलुयाह, अब हमें दसवां हिस्सा नहीं देना पड़ेगा।" उन्होंने क्या किया? क्या उन्होंने चन्दा देना कम कर दिया था? वे बहुत ही खुश थे और खुश होकर उन्होंने और भी अधिक प्रभु के लिए दिया।

चाहे हमारे परिवार में पैसे को खर्च करने का कार्य कोई भी करता हो, परन्तु परिवार की स्त्री प्रभु के कार्य के लिये देने में बहुत कुछ कर सकती है। यदि पति एक मसीही है तब दोनों मिलकर इसके विषय में निर्णय ले सकते हैं। यदि पति मसीही नहीं है फिर भी मसीही स्त्री पहिला स्थान प्रभु को दे सकती है। यदि हम किसी चीज के बिना गुज़ारा कर सकते हैं या काम चला सकते हैं तो यह बहुत ही अच्छी बात है। क्या मेरे लिये यह उचित होगा कि कलर टी.वी. या वी.सी.डी. खरीदने के लिये मैं प्रभु के पैसे की चोरी करूं अथवा अपने चन्दे में से कटौती कर दूं? प्रभु के कार्य के लिये चन्दा देने में स्त्रियां बहुत कुछ कर सकती हैं।

IV देने के विषय में कुछ गलत धारणाएं–

बहुत सिखाने के पश्चात भी कई गलत धारणाएं लोगों के मनों में रह जाती हैं: कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि हमें प्रचारक की तनख्वाह, तथा चर्च बिल्डिंग का किराया देना है और इसके अतिरिक्त हमारी कोई और जिम्मेदारी नहीं है। कई बार कलीसिया के सदस्य प्रचारक को प्रसन्न करने के लिए चन्दा देते हैं जो कि गलत है। यदि वे प्रचारक से खुश नहीं है तो वे अपना चन्दा भी कम करके देंगे। कई बार सदस्य यह कहते हैं कि जिस प्रकार से चन्दे को खर्च किया जाता है वो बात हमें पसन्द नहीं हैं। ऐसा सोचने से हम चन्दा देने की आज्ञा को नहीं टाल सकते। हमारा कर्तव्य है कि हम ईमानदारी से अपने चन्दे को दें। जो लोग चन्दे को खर्च करते हैं उन्हें प्रभु जानता है तथा उनको एक दिन प्रभु को जवाब देना होगा। अनेक बार लोग चन्दा देने के बारे में सुनना ही नहीं चाहते। हमें प्रभु की सब आज्ञाओं को माना है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि यह आज्ञा मुझे पसन्द नहीं है और मैं इसे

नहीं मानना चाहती।

V कुछ ऐसे विचार जो हमें सही तरह से चन्दा देने के लिए उत्साहित कर सकते हैं :

यदि दुनिया के सारे मसीही बाइबल के अनुसार अपने चन्दे को दें, तो प्रभु का कार्य कई गुना बढ़ सकता है। अपने आप से ज़रा इन प्रश्नों को पूछिये:–

1. जिस प्रकार से मैं चन्दा देती हूं उससे यह पता चलता है कि मेरा मन कैसा है, वास्तव में मेरा मन कहां है और प्रभु के प्रति कैसा है?
2. जैसी इच्छा से मैं देती हूं उससे पता चलता है कि मैं कितनी दृढ़ विश्वासी मसीही हूं।
3. यह एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा मैं लोगों के स्वर्ग में जाने के लिए सहायता कर सकती हूं। ऐसी खोई हुई आत्माओं की सहायता कर सकती हूं जिन्हें मैंने कभी देखा तक नहीं है।
4. जब मैं चन्दा देती हूं तब यीशु मेरे साथ बैठकर देखता है कि मैं किस प्रकार से देती हूं।
5. आत्मिक बातों के लिए देना एक ऐसी बचत है जिसका प्रतिफल अनन्त जीवन है।
6. "कंजूसी करने से आत्मा की स्थिति बिगड़ जाती है" मैं नहीं चाहती कि जब मैं अपने सृजनहार से मिलुं तो मेरी आत्मा बुरी स्थिति में हो।
7. "अपनी आमदनी के अनुसार देना परमेश्वर की एक आज्ञा है।" इसमें किसी प्रकार की इच्छा की बात नहीं है। अपनी आत्मा को बचाने के लिए इस आज्ञा को मानना आवश्यक है।
8. यह एक ऐसी आज्ञा है जिसे प्रत्येक मसीही मान सकता है। परमेश्वर हमसे कोई ऐसा कार्य करनके लिए नहीं कह रहा है जो असम्भव है। वह कह रहा है जिस प्रकार से उसने मुझे दिया है उसी के अनुसार मैं अपने चन्दे को उसके कार्य के लिए दूं। चाहे मेरी या मेरे पति की आमदनी कितनी भी कम हो तो भी मैं इस आज्ञा का पालन कर सकती हूं।
9. यदि प्रभु ने मुझे बहुतायत से आशीषित किया है, और हो सकता है कि उसने मुझे मेरे पड़ोसी से भी अधिक आशीषें दी हैं, इसीलिए उसके प्रति धन्यवादी होने के लिए मुझे उसके कार्य के लिए और अधिक देना चाहिए।
10. मैं चाहती हूं कि प्रभु मुझे अपनी आशीषों से भरपूर करे। भरपूर आशीषें प्राप्त करने के लिए मुझे उसके लिए अधिक से अधिक देना भी चाहिए।

एक बुरी सामरी स्त्री

(The Bad Samaritan Woman)

बाइबल में हम याकूब के कुएं के बारे में पढ़ते हैं। यहूदिया से गलील को जाने के लिए यहूदी लोग सामरिया के अन्दर से गुज़र कर जाना पसन्द नहीं करते थे क्योंकि उनका सामरियों से कोई सम्बन्ध नहीं था। परन्तु यीशु सामरिया के बीच से गुज़र कर जाना चाहता था। जब वह वहां से गुजर रहा था, तब वह याकूब के कुएं के पास जाकर रूक गया। इस समय वह बहुत थका हुआ था। क्योंकि वह मनुष्य का पुत्र भी था इसलिए वह थकावट, भूख और प्यास को महसूस कर सकता था। वह हमारे विषय में भी जानता है कि हमें इस पृथ्वी पर किन-किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। (इब्रानियों 4:15,16)।

यीशु के चेले इस समय भोजन खरीदने के लिये गये हुए थे और वह अकेला कुएं के पास बैठा हुआ था तभी उसने देखा कि एक पापी सामरी स्त्री कुएं से पानी भरने के लिए आई हैं। यीशु ने उससे बात करनी आरम्भ कर दी। इस घटना के विषय में हम यहून्ना 4:5-42 में पढ़ते है और इस के द्वारा यीशु ने बहुत से सुन्दर पाठ हमे सिखाये हैं।

I पापियों तथा सब लोगों के प्रति यीशु का व्यवहार

(1) इसमें ज़रा सा भी सन्देह नहीं कि इस स्त्री का नाम काफ़ी कलंकित होगा। क्योंकि इस स्त्री के पांच पति पहिले से रह चुके थे तथा जिसके साथ वह अभी रह रही थी वो भी उसका पति नहीं था। यीशु इस बात को जान गया था कि वह किस प्रकार की स्त्री है, लेकिन यह सब जानते हुये भी उसने क्या किया? क्या उसने ऐसा कहा कि तू मुझसे दूर हो जा, मुझे छूना नहीं? वास्तव में उसने ऐसा नहीं किया। वह तो "पापियों का उद्धार करने के लिए जगत में आया था" (1 तीमुथियुस 1:15)। वह उस स्त्री को एक खोई हुई आत्मा की तरह से देख रहा था क्योंकि उसे उद्धार की आवश्यकता थी। यीशु ने कहा था कि "वैद्य भले चंगों के लिए नहीं; परन्तु बिमारों के लिए अवश्य है। मैं धर्मियों को नहीं परन्तु पापियों को मन फिराने के लिए बुलाने आया हूं। (लूका 5:31,32)।

(2) **एक बार यीशु ने पापियों के विषय में बोलते हुए बड़े हियाव के साथ फरीसियों से यह कहा था** क्योंकि वे अपने को बहुत धार्मिक समझते थे। वे यीशु के पास एक ऐसी स्त्री को लाये थे जो व्यभिचार में पकड़ी गई थी। (यहून्ना 8:3-11)। अपने आपको धार्मिक समझने वाले उन लोगों से यीशु ने यह कहा था कि "तुम में जो निष्पाप हो, वही पहिले उसको पत्थर मारे।" उसने उस स्त्री पर कोई दोष नहीं लगाया बल्कि उससे कहा: "मैं तुझ पर दंड की आज्ञा नहीं देता, जा और फिर पाप न करना।" जो लोग उस स्त्री को लाये थे वे सब भी पापी थे और इसीलिए यीशु को यह कहना पड़ा कि यदि तुम में से जो निष्पाप है, क्योंकि वे लोग अपने आप को बहुत ही धार्मिक समझते थे परन्तु यीशु के अनुसार वे सब धार्मिक नहीं बल्कि पापी थे। आज हमारे बीच में भी बहुत से आधुनिक प्रकार के फरीसी लोग रहते हैं। एक मसीही स्त्री से एक बार कहा गया कि वह अपने पड़ौस की स्त्रियों को बाइबल अध्ययन के लिए निमन्त्रण देकर आये। उसने उत्तर दिया कि "मेरे पड़ौस में एक स्त्री है वह बहुत बुरी है और उसे मैं बाइबल अध्ययन के लिए निमन्त्रण नहीं दूंगी। मैं उसके घर भी जाना पसन्द नहीं करती, और मैं नहीं चाहती कि मुझे उसके घर में जाते हुये भी कोई देखे"।

II व्यक्तिगत रूप से प्रचार करने का एक ईश्वरीय उदाहरण-

यीशु जहां भी जाता था या कुछ भी करता था, उसके जीवन का प्रथम उद्देश्य यह था कि लोगों को अनन्त जीवन के बारे में सिखाये। जिस प्रकार से उसने कुएं पर उस स्त्री से बातचीत की थी, यह हमें दिखाता है कि वह व्यक्तिगत रूप से बहुत ही अच्छी तरह से लोगों को सिखाता था।

1. **इस बात से हम यह सीखते हैं कि प्रत्येक जन जो मसीही नहीं है उसके पास एक मसीही बनने का अवसर है।** यीशु के स्थान पर यदि कोई और होता तो शायद वह यह कह कर इस बात को टाल देता कि यह तो बुरी स्त्री है और इससे बात करना भी व्यर्थ है। लोग अगर मुझे इस स्त्री से बात करते हुए देख लेंगे तो क्या कहेंगे। परन्तु यीशु यह जानता था कि प्रत्येक आत्मा को उद्धार की आवश्यकता है।

2. **उसने अवसर का इस्तेमाल किया-** यीशु अवसर का लाभ उठाने के लिए सदा तैयार रहता था। लोगों को सिखाने का उसका यह तरीका बहुत ही सुन्दर था।

3. **यीशु बहुत नम्र था और उसने अपने आप को दीन किया।** यीशु ने बड़ी ही नम्रता-पूर्वक उससे कहा, "मुझे पानी पिला और जैसे ही उसने उससे पानी मांगा उनमें आपस में बातचीत शुरू हो गई। अब यह सामरी स्त्री तत्काल यीशु की बात

सुनने के लिए तैयार हो गई थी। यीशु ने भी उसका शौक देखकर उससे बातचीत करनी आरम्भ कर दी थी। आपस में बातचीत शुरू करने का यह एक बहुत ही अच्छा तरीका था।

4. **यीशु ने अब उससे वो महत्वपूर्ण बात कही जिसका संबन्ध आत्मा से है।** उसने कहा "क्या तू ऐसा जल पीना चाहेगी जो अद्‌भुत है तथा जिसे पीकर तू कभी प्यासी नहीं होगी।" अब उस स्त्री में और अधिक जानने की इच्छा उत्पन्न हो गई थीं। कई बार लोगों से बातचीत करते हुये हम उन्हें मसीही जीवन के विषय में उस तरह से नहीं बताते जैसे हमें बताना चाहिए। हम उन्हें मसीही जीवन के गुणों को इस प्रकार बतायें ताकि वे इसकी ओर आसानी से आकर्षित हो सकें। जो लोग मसीही नहीं है उनसे हम इस तरह से कह सकते हैं कि "मसीही जीवन एक बहुत ही अच्छा और सुन्दर जीवन है और जब आप एक मसीही बन जायेगें तब आप के सारे पाप मिटा दिये जायेगें। क्या आप एक नये इन्सान बनना चाहेगें?" "क्या आप एक ऐसे स्थान पर रहना चाहेंगे जिसे स्वर्ग कहते है? जहां न कष्ट है, न पीड़ा है और न मृत्यु है।" आने बच्चों को भी हमें अच्छे धार्मिक जीवन तथा स्वर्ग के विषय में बताना चाहिये। एक लड़के ने अपनी माता से एक बार यह कहा "क्या स्वर्ग में खेलने के लिए खिलौने होंगे? यदि खिलौने नहीं होंगे तो मुझे स्वर्ग से कोई मतलब नहीं है।" उसकी माता जो एक बुद्धिमान स्त्री थी, उसने बच्चे की समझ को देखते हुये उत्तर दिया: "बेटा स्वर्ग में तुम्हे खुश रखने के लिए परमेश्वर सब कुछ देगा।"

एक लड़की ने अपनी माता से कहा: "यदि स्वर्ग में सब आराम से रहेंगे तो खाना कौन पकायेगा? "शायद इस माता ने अपने बच्चे के मन में यह बात डाल रखी थी कि खाना पकाना एक बहुत ही सिरदर्दी का काम है। यीशु ने उस सामरी स्त्री से कहा कि मैं तुझे जीवन का जल दूंगा क्योंकि प्रत्येक मनुष्य में एक प्रतिफल पाने की आशा होती है। हम लोगों को यह बता सकते हैं कि आज्ञा मानने पर उन्हें परमेश्वर से क्या प्रतिफल मिलेगा।

5. **यीशु उससे पाप तथा उद्धार के विषय में बात कर रहा था तथा बात करते हुए उसने अपना विषय बदल दिया था।** उसने यह विश्वास दिला दिया था कि वास्तव में वह पापी है। और उसे उद्धार की आवश्यकता है। चार ऐसे महत्वपूर्ण विचार हैं जो प्रत्येक उस व्यक्ति को जानने चाहिए जो अपने पापों से मन फिराकर एक मसीही बनना चाहता है। ये विचार इस प्रकार से हैं:

(क) "मुझे यह मानना चाहिऐ कि मैं एक पापी हूं"

(ख) "जिस स्थिति में मैं अभी हूं यदि इस स्थिति में मेरी आज मृत्यु हो जाये तो मैं स्वर्ग में नहीं जाऊंगी"

(ग) "अपने पापों की क्षमा के लिए मैं क्या करूं?"

(घ) "अब मेरे पास यह समय है कि मैं कोई फैसला करूं"

6. यीशु ने जो शिक्षा उस स्त्री को दी थी उसमें उसे सफलता मिली– क्योंकि उस स्त्री ने स्वयं भी यीशु पर विश्वास किया तथा उसके विश्वास को देखकर अनेक लोग यीशु पर विश्वास लाये। तब इस समय इस बात पर जरा ध्यान दीजिये कि सिखाने वाला कितना ही प्रसन्न हुआ हेगा क्योंकि जिस प्रकार से स्वर्ग में दूत खुशियां मनाते हैं उसी प्रकार से यीशु ने भी इन आत्माओं के लिए खुशी मनाई होगी। बहुत देर के बाद जब उसके चेले भोजन लेकर वापस लौटे, तब यीशु से उन्होंने कहा– "प्रभु खाना खा ले।" उसने उनसे कहा कि "मेरे पास खाने के लिए ऐसा भोजन है जिसे तुम नहीं जानते— मेरा भोजन यह है कि अपने भेजनेवाले की इच्छा के अनुसार चलूं और उसका काम पूरा करूं।" केवल वही लोग जिनमें दूसरों को परमेश्वर का वचन सिखाने का शौक है इस प्रकार की बात को अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

7. **इस पाठ को समाप्त करते हुए यीशु ने अन्त में अपने चेलों से कहा: "क्या तुम नहीं कहते,** कि कटनी होने में अब भी चार महीने पड़े हैं? देखो, मैं तुम से कहता हूं अपनी आंखें उठाकार खेतों पर दृष्टि डालो, कि वे कटनी के लिए पक चुके हैं। और काटनेवाला मजदूरी पाता है, और अनन्त जीवन के लिए फल बटोरता है, ताकि बोनेवाला और काटनेवाला दोनो मिलकर आनन्द करें। (यहून्ना 4:35-36)। दूसरे शब्दों में हम इसे इस प्रकार कह सकते हैं: "अपनी आखें खोलकर देखो, बहुत से अवसर तुम्हारे सामने है।" आज बहुत से ऐसे लोग है जिन्हें जीवन के जल की आवश्यकता है।

III इस सामरी स्त्री का मन यीशु की बातें सुनने के लिए अब बिल्कुल तैयार था और उसने शीघ्र ही उसकी बातों को मान लिया।

यद्यपि उसे एक बुरी स्त्री कहा जाता था तौभी उसने अच्छी बातों के प्रति अपने मन को खोला और वह उन लोगों से अच्छी थी जिन्हें "अच्छा" तो कहा जाता है परन्तु वे यीशु की अच्छी शिक्षाओं को मानने से इन्कार करते हैं। जो वह अपने विषय में स्वयं नहीं जानती थी, वो उसके विषय में प्रभु जानता था। यीशु यह जानता था कि इस स्त्री के लिए अपने पुराने जीवन को छोड़ना सम्भव है।

एक स्त्री से एक बार पूछा गया कि क्या वह यह विश्वास करती है कि यीशु ने पानी को दाखरस में बदल दिया था। उसने उत्तर दिया, ''हां, मुझे इस बात पर

पूरा विश्वास है, क्योंकि मैने तो इससे बड़ा कार्य देखा है। मैंने यह देखा है कि यीशु ने एक शराबी पति को बहुत अच्छा नेक इन्सान बना दिया है वह अब एक बहुत अच्छा पति है उसने शराब की बोतलों को अच्छे खाने, कपड़े तथा बच्चों के अच्छे रहने के स्थान में बदल दिया है।

आज संसार में बहुत से ऐसे लोग हैं जिन्हें इस बात की आवश्यकता है कि कोई उन्हें पाप की कीचड़ से निकालकर एक अच्छा मार्ग दिखा सके। नया जीवन केवल प्रभु यीशु की शक्ति तथा उसके सुसमाचार द्वारा ही मिल सकता है।

इस सामरी स्त्री का जीवन अब बदल गया था तथा वह इस अद्भुत जीवन के जल के बारे में दूसरों को बताना चाहती थी। वह इतनी खुश थी कि दौड़कर शहर में गई तथा सारे लोगों को खुशी का सुसमाचार दिया। इस खुशी में वह अपने पानी भरने के बर्तनों को भी भूल गई थी। जिन लोगों ने वास्तव में नये जीवन को जाना है तथा यीशु को अपनाया है वे कभी भी इस खुशी को अपने तक ही सीमित नहीं रखना चाहेंगे बल्कि दूसरों को इसके विषय में बतायेंगे। बहुत से लोगों ने यीशु पर विश्वास किया था और तब उस स्त्री से उन लोगों ने कहा कि "अब हम तेरे कहने से ही विश्वास नहीं करते, क्योंकि हमने आप ही सुन लिया है, और जानते हैं कि यही सचमुच में जगत का उद्धारकर्ता है (यूहन्ना 4:39-42)।" चाहे कोई व्यक्ति कितना ही पापी क्यों न हो यदि उसका जीवन प्रभु के पास आकर बदल जाये तो वह बहुत से लोगों को प्रभु के पास ला सकता है।

IV उस स्त्री ने यह दिखाया कि सारे संसार में लोग परमेश्वर के लिए प्यासे हैं–

प्रत्येक मनुष्य में किसी न किसी रूप में एक धार्मिक भावना होती है।, और संसार में प्रत्येक स्थान पर लोग किसी बड़ी शक्ति में विश्वास करते हैं। जिस प्रकार से जन्म से ही इन्सान में भोजन, जल तथा दूसरी शारीरिक आवश्यकताओं की इच्छा होती है वैसे ही उसमें एक बड़ी शक्ति पर विश्वास करने की भी इच्छा होती है। यह एक ऐसा दृढ़ तर्क है जो हम परमेश्वर के अस्तित्व के विषय में इस्तेमाल कर सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक ऐसा भाग है जिसे सोने-चांदी या धन के द्वारा सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। यीशु के अनुसार "मनुष्य केवल रोटी से ही नहीं, परन्तु हर एक वचन से जो परमेश्वर के मुख से निकलता है जीवित रहेगा" (मत्ती 4:4)। दाऊद ने कहा था– "जीवते ईश्वर परमेश्वर का मैं प्यासा हूं" (भजन 42:2)। आज लोग परमेश्वर के लिए प्यासे हैं शायद वे स्वयं भी इस बात को नहीं जानते जिस प्रकार से एक छोटा सा बच्चा रोता तो है परन्तु यह नहीं जानता

कि क्यों रो रहा है।

"परन्तु जो कोई उस जल में से पीएगा जो मैं उसे दूंगा, वह फिर अनन्तकाल तक प्यासा न होगा: बरन जो जल मैं उसे दूंगा, वह उससे एक सोता बन जाएगा जो अनन्त जीवन के लिए उमड़ता रहेगा" (यूहन्ना 4:14) किस प्रकार से कोई व्यक्ति इस जीवन के जल को ले सकता है? यीशु ने कहा था: "धन्य हैं वे, जो धर्म के भूखे और प्यासे हैं, क्योंकि वे तृप्त किये जाएंगे" (मत्ती 5:6)। धार्मिकता का अर्थ क्या है? "तेरी सब आज्ञाएं धर्ममय है" (भजन 119:172)। जो इस जीवन के जल में से पीना चाहते हैं उन्हें परमेश्वर की सारी आज्ञाओं को मानना पड़ेगा। चाहे हमारी आर्थिक स्थिति कैसी भी हो तौभी हम इस जीवन के जल को प्राप्त कर सकते है, जिस प्रकार से यशायाह कहता है: "सब प्यासे लोगों, पानी के पास आओ, और जिनके पास रूपया न हो, तुम भी आकर मोल लो और खाओ" (यशायाह 55:1)।

V उस स्त्री को यीशु ने सच्ची उपासना के विषय में बताया था

कुछ बड़े ही गम्भीर शब्द जो यीशु ने सबसे पहले कहे थे वो किसी बड़ी भीड़ से नहीं बल्कि एक अकेली सामरी स्त्री से कहे थे। एक अकेला व्यक्ति भी परमेश्वर के वचन को ध्यान से सुनता है तो वह एक भीड़ के समान है। इस पापी सामरी स्त्री को यीशु ने सच्ची उपासना के विषय में बताया था: "परमेश्वर आत्मा है और अवश्य है कि उसके भजन करने वाले आत्मा और सच्चाई से भजन करें" (यूहन्ना 4:24)। सच्ची उपासना किसी प्रकार की रीति-रिवाजों या संस्कारों पर आधारित नहीं होती। सच्ची उपासना का आधार केवल परमेश्वर का सत्य वचन है।

1. **"आत्मा से"** परमेश्वर आत्मा है, तथा मनुष्य ऐसी आत्मा है जिसे एक महान आत्मा ने सृजा हैं। केवल कलीसिया में उपस्थित होना उपासना नहीं है कलीसिया में उपस्थित होने का अर्थ यह है कि हमें उपासना करने का एक अवसर मिला है और इस अवसर का हमें पूरा लाभ उठाना चाहिये। यह केवल तभी सम्भव होगा, जब हम परमेश्वर की उपासना आत्मा से करेंगे।

2. **"सच्चाई के साथ"**- उपासना केवल आत्मा से ही नहीं बल्कि सच्चाई के साथ भी होनी चाहिए। सच्चाई क्या है? "तेरा वचन सत्य है" (यूहन्ना 17:17)। उपासना परमेश्वर के वचन अनुसार होनी चाहिए। कैन ने अनुचित रूप से उपासना करनी चाही और उसकी उपासना स्वीकार नहीं हुई। हम अपनी इच्छा अनुसार उसकी उपासना नहीं कर सकते। केवल प्रभु की इच्छा अनुसार ही हमें उसकी उपासना करनी चाहिये।

दोरकास (Dorcas)

दोरकास ने अपने जीवन में एक बहुत ही अद्‌भुत बात का अनुभव किया था। उसकी मृत्यु के पश्चात जब उसे कब्रिस्तान ले जाने की तैयारियां चल रहीं थीं, तभी वहां पतरस भी आ गया और उसने प्रार्थना द्वारा उसे फिर से जीवित कर दिया। वह एक ऐसी स्त्री थी "जो बहुतेरे भले-भले काम और दान किया करती थी" इसके विषय में हम प्रेरितों 9:36-43 में पढ़ते हैं। पतरस ने दोरकाम को क्यों जीवित किया था? इसलिए नहीं की वह एक अच्छी स्त्री थी, यदि ऐसा होता तो पतरस और भी अनेकों लोगों को परमेश्वर की सामर्थ द्वारा जीवित कर सकता था। यदि मरे हुए लोगों को फिर से इस संसार में वापस लाया जाये तो उनके लिए यह कोई आशीष की बात नहीं होगी। क्योंकि यह संसार पाप और कष्टों से भरा हुआ है। सो हम देखते है कि पतरस ने दोरकास को इसलिये जीवित किया था ताकि वे उन अविश्वासी लोगों में विश्वास उत्पन्न कर सके जिन्होंने उसे मरा हुआ देखा था तथा इसलिए भी ताकि वे इस बात को समझ सकें कि जीवन केवल कब्र तक ही समाप्त नहीं हो जाता बल्कि यीशु के द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करना सम्भव है।

इस पाठ को हम यह नाम दे सकते हैं कि: "जब आप की मृत्यु होगी तब आप किस प्रकार का अंतिम संस्कार चाहेंगे?" आज कल इस विषय पर लोग बहुत ध्यान देते हैं अर्थात वे पहले ही से यह तय कर लेते हैं कि उनका अंतिम संस्कार कैसा होना चाहिये। जब किसी की मृत्यु होती है तो उसकी याद में प्रार्थना सभाएं की जाती है, लोग शोक मनाते तथा रोते हैं, उनकी आत्मा की शान्ति के लिये गरीबों को खाना खिलाया जाता है। परन्तु यह सब कुछ करने से हम मरे हुए व्यक्ति की आत्मा के निवास स्थान को नहीं बदल सकते अर्थात यदि उसकी आत्मा नरक में जाती है तो प्रार्थना के द्वारा या और किसी प्रकार के संस्कार द्वारा हम उसकी आत्मा को स्वर्ग में नहीं ले जा सकते। यहां विशेष बात देखने योग्य यह है कि मृत्यु के पश्चात जब हमारी आत्मा इस संसार को छोड़कर हमेशा के लिए परमेश्वर के पास चली जायेगी, तब इसका जवाब हमें परमेश्वर को देना होगा कि थोड़े से वर्ष हमें इस पृथ्वी पर दिये गये थे उनका इस्तेमाल हमने कैसे किया?

प्रत्येक व्यक्ति यह चाहता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात लोग उसे याद करें। हमारे लिए यह कितने ही दुख की बात होगी कि इस संसार से चले जाने के बाद

हमारे बारे में कोई सुनना तक भी न चाहे, या फिर हमारी मृत्यु के बाद लोग खुशियां मनायें। एक अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि एक अच्छे जीवन में क्या-क्या विशेषतायें शामिल हैं। सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि अनुचित मापदंड के आधार पर इस जीवन को नहीं तोला जा सकता।

I जीवन के विषय में लोगों के कुछ अनुचित विचार इस प्रकार से हैं–

1. **कुछ लोगों के अनुसार बहुत वर्षो तक इस पृथ्वी पर जीवित रहना ही वास्तविक जीवन है।** वे कहते हैं कि एक सफ़ल जीवन यही है। पुराने नियम में अनेकों लोग कई सौ वर्षों तक पृथ्वी पर जीवित रहे परन्तु जीवन में उन्हें कोई आत्मिक रूप से सफ़लता नहीं मिली।

2. **धन तथा शारीरिक खुशियों की बहुतायत से भी हम जीवन के असली अर्थ को नहीं समझ सकते** क्योंकि किसी भी व्यक्ति का जीवन उसकी संपत्ति की बहुतायत से नहीं होता (लूका 12:15)। संसार के बहुत से धनी लोगों ने इस बात की वास्तविकता का अनुभव किया था। सुलेमान के पास सब प्रकार का ध न था परन्तु अन्त में उसने यही कहा था कि "सब व्यर्थ ही व्यर्थ; सब कुछ व्यर्थ है।"

(3) **अपनी तुलना दूसरों के साथ करके भी हम जीवन के असली अर्थ को नहीं समझ सकते।** ऐसा करना बुद्धिमानी नहीं होगी। (2 कुरिन्थियों 10:12)। एक स्त्री ने एक बार कहा था, "कि जैसे सब मरते हैं वैसे ही मैं भी मरने को तैयार हूं।" इस स्त्री के विषय में यह कितने दुख की बात थी कि उसने अपने जीवन में कोई तैयारी नहीं की थी। परमेश्वर हमसे कहता है कि बहुत से लोग आज उस चौड़े मार्ग पर चल रहें हैं जो विनाश को पहुंचाता है (मत्ती 7:13)। अपने आप को न्याय के दिन बचाने के लिए शायद बहुत से लोग यूं कहें: "मैं तो बहुत से लोगों से अच्छा था"। इस जीवन के असली अर्थ को किस प्रकार से समझा जा सकता है? हम सब का न्याय कौनसे मापदण्ड के आधार पर होगा? आइये देखें:-

II हमने अपने जीवन में किन वस्तुओं से अधिक प्रेम किया था?

मृत्यु के पश्चात जब हमारी चीजों को देखा जायेगा तो इससे पता चलेगा कि हमारा प्रेम किन चीजों के प्रति अधिक था। "दोरकास की सहेलियां लोगों को वे कपड़े दिखा रहीं थीं जो उसने उनके साथ रहते हुए बनाये थे और इस समय वे कपड़े चुपचाप दोरकास के विषय में कुछ बता रहे थे।" इस बात से हमें यह पता

चलता है कि दोरकास एक ऐसी स्त्री थी जो लोगों पर दया करती थी अर्थात यह भले-भले काम और दान किया करती थी।

1. **क्या हम आत्मिक बातों पर महत्व देते हैं?** यीशु ने कहा था "तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख। बड़ी और मुख्य आज्ञा तो यही है और उसी के समान यह दूसरी भी है, कि तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख (मत्ती 22:37-39)। हमारा व्यवहार यह बताता है कि दूसरे लोगों के प्रति हमारा प्रेम कैसा है।

2. **क्या हम सांसारिक बातों को अधिक महत्व देते हैं?** यदि कोई इस संसार से प्रेम करता है तो उसने आत्मिक बातों को स्वाद नहीं चखा है और तब ऐसा व्यक्ति स्वर्ग में क्यों जाना चाहेगा? ऐसे लोगों को यदि परमेश्वर स्वर्ग में जाने की आज्ञा दे भी दे, तौभी वहां यह लोग खुश नहीं रह सकेंगे। अभी इस समय पृथ्वी पर हमारे पास यह सुअवसर है कि हम आत्मिक बातों को अधिक महत्व दें। मनुष्य यह चाहता है कि परमेश्वर के साथ भी चलता रहे तथा इस संसार के साथ भी लेकिन परमेश्वर कहता है कि ऐसा करना असम्भव है अर्थात आप दोनों के साथ एक साथ नहीं चल सकते। (1 यूहन्ना 2:15-17)।

3. **हमारा प्रेम इस बात में भी दिखाई देता है कि हम किन-किन बातों से घृणा करते हैं।** पवित्र शास्त्र के एक लेखक ने प्रेरणा से इस बात पर लिखा था कि "मैं प्रत्येक प्रकार की झूठी बातों से घृणा करता हूं।" हम गलत बातों से घृणा किये बिना सही मार्ग पर नहीं चल सकते। आज लोग कहते हैं कि अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ ठीक है इसलिए "कुछ भी करो"। परमेश्वर बुराई से घृणा करता है और इसलिये वह मनुष्य जाति को पाप से बचाना चाहता है। यही एक कारण था कि उसने अपने पुत्र को मरने के लिये इस संसार में भेजा था ताकि लोग उसके वचन की शिक्षाओं को मानकर और बपतिस्मा लेकर उद्धार पा सकें। क्या हमने सत्य से प्रेम किया है तथा बुराई से मन फिराया है? या फिर हमने बुराई से प्रेम किया है तथा सत्य को मानने से इन्कार किया है? जो लोग सत्य से प्रेम नहीं करते उनके साथ क्या होगा इसके विषय में हम 2 थिस्सलुनीकियों 2:10-12 में पढ़ सकते हैं।

III किस प्रकार की नींव पर हमने अपना घर बनाया है?

(1) यीशु ने मत्ती 7:24-27) में यह सिखाया था कि प्रत्येक व्यक्ति ने अपना घर या तो चट्टान पर बनाया है अथवा बालू पर बनाया है। जब तूफ़ान आयेगा (यह तूफ़ान एक दिन अवश्य आयेगा) और तब उस दिन यह पता चल जायेगा कि कौन सी नींव दृण हैं तथा कौन सी कमज़ोर हैं। चट्टान पर घर कौन बना रहा हैं?

''इसलिये जो कोई मेरी ये बातें सुनकर उन्हें मानता है, वह उस बुद्धिमान मनुष्य की नाई ठहरेगा। जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया है।'' यीशु ने कहा था कि ''जो मेरी आज्ञा मानते हैं वे अपना घर चटटान पर बनाते हैं।''

2. कोई भी व्यक्ति यदि वह यीशु के पीछे नहीं चलता तथा उसकी आज्ञाओं को नहीं मानता तो वह आने वाले तूफ़ान का सामना करने के लिये तैयार नहीं है यीशु ने ही इस बात को कहा था'' कि जो विश्वास करे और बपतिस्मा ले उसी का उद्धार होगा'' (मरकुस 16:16)। उसने यह भी कहा था कि ''यदि तुम मन न फिराओगे तो तुम सब भी इसी रीति से नाश होंगे'' (लूका 13:3)। यदि हम अपने उद्धारकर्ता की आज्ञा को नहीं मान रहे हैं। तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम बालू पर अपना घर बना रहे हैं। यदि हम बुद्धिमान हैं तो अभी हमारे पास यह समय तथा अवसर है कि हम अपनी नींव की जांच करें। परमेश्वर की आज्ञा को मानना बुद्धिमानी है तथा उसकी आज्ञा को न मानना एक मूर्खता है। हम उस मूर्ख की तरह तूफ़ान में नाश नहीं होना चाहते, जिसने अपना घर बालू पर बनाया था।

IV क्या हमने अपना जीवन परमेश्वर की सेवा के लिये इस्तेमाल किया है?

1. **प्रत्येक व्यक्ति के पास कुछ योग्यतायें होती हैं और यह योग्यताएं भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती हैं।** बाइबल में हम उस व्यक्ति के विषय में पढ़ते हैं जिसे पांच तोड़े मिले थे तथा एक ऐसे व्यक्ति के विषय में भी हम पढ़ते हैं जिसे केवल एक ही तोड़ा (या योग्यता) मिली थी। परन्तु हम कहीं पर भी यह नहीं पढ़ते कि किसी जन को कोई भी योग्यता न मिली हो। किस प्रकार से हमने अपनी योग्यताओं को इस्तेमाल किया है, इसका उत्तर एक दिन हमें प्रभु को देना पड़ेगा (मत्ती 25:14-30)। और जिसे एक तोड़ा मिला था उसने उसे ज़मीन में दबा दिया तथा प्रभु ने उसके लिये इन शब्दों को इस्तेमाल करते हुए यह कहा कि ''इस निकम्मे दास को बाहर अन्धेरे में डाल दो, जहां रोना और दांतो का पीसना होगा।'' हम अपनी योग्यता के अनुसार किस प्रकार की सेवा प्रभु को दे रहे हैं? क्या हमारी योग्यताएं केवल हमारे स्वार्थ के लिये हैं? अधिकतर लोगों के पास योग्यताएं तो होती है परन्तु वे उन्हें अपने स्वार्थ के लिये ही इस्तेमाल करते हैं तथा परमेश्वर की सेवा के विषय में वे ज़रा सा भी नहीं सोचते।

2. **दोरकास जितना भी कर सकती थी वो उसने किया**-याफा शहर समुद्री इलाका था तथा वहां काफ़ी व्यापार होता था। वहां अनेक विद्यवाएं रहती थीं। उसने वहां पर एक आवश्यकता को महसूस किया तथा यह देखा कि उसके पास अपनी योग्यता को इस्तेमाल करने का सुअवसर हैं और उसने विधवाओं के लिये कपड़े

बनाने आरम्भ कर दिये तथा उन सब के मनों पर वह छा गई। सब लोग उससे बहुत प्रेम करते थे। यीशु ने भी एक बार कहा था कि यदि तुम में से कोई अपने आप को बड़ा समझता हैं तो उसे तुम्हारा सेवक बनना चाहिये (मत्ती 23:11)।

मसीहीयत देने के विषय में सिखाती है तथा देने का अर्थ केवल पैसा ही नहीं होता। जब हम किसी अकेले या दुखी व्यक्ति से बात करते हैं तथा उसके साथ सहानुभूति दिखाते हैं तो यह भी एक प्रकार का देना है। दूसरों की सेवा करने से हमें दो प्रकार के शत्रु रोकते हैं और वे हैं स्वार्थपन तथा सुस्ती। कुछ लोग केवल अपने ही विषय में सोचते रहते हैं और दूसरों से उन्हें कोई मतलब नहीं होता। कुछ लोग इतने सुस्त होते हैं कि वे किसी की सहायता करने के लिये प्रयत्न ही नहीं करते। मसीहीयत हमें यह सिखाती है कि हम दूसरों की सहायता करें।

3. **अपने आप को दे देना एक ऐसा कार्य है जो प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है–** एक बार एक व्यक्ति जब अपने घर वापस आया तो उसकी नज़र एक लड़के पर पड़ी जो बाहर आंगन में गड्डा खोद रहा था। उसने लड़के से पूछा बेटा यह क्या कर रहे हो? लड़के ने उत्तर दिया ''साहब, आपकी पत्नी आपके जन्मदिन पर आपको एक फूल का अच्छा सा पौधा दे रही है और मैं उस पौधे को लगाने के लिये गड्ढा खोद रहा हूं।'' दूसरों के लिये अपनी सेवा प्रदान करने का पाठ बच्चों को आरम्भ से ही सिखाया जा सकता है और यह भी कि छोटे-छोटे हाथों को किस प्रकार से परमेश्वर की सेवा के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है।

4. **दूसरों की सहायता करने से सहायता करनेवाला तथा सहायता लेने वाला दोनों ही आशीषित होते हैं–** यद्यपि फ़्लोरैन्स नाईटिंगगेल अपने जीवन के पचास वर्षो को दूसरों की सेवा करने में नहीं लगा सकी तौभी उन यादगारियों से वह बहुत प्रसन्न थी जब उसने अवसरों का इस्तेमाल करके मित्रों तथा शत्रुओं की सेवा की थी।

5. **परमेश्वर को आपकी आवश्यकता है–** वह लोगों के द्वारा अपने कार्यो को करता है। यदि परमेश्वर के लोग उसके कार्य को न करें तो उसका कार्य नहीं होगा। तौभी अक्सर देखा जाता है कि अनेक लोग मसीही जीवन की आशीषों को तो पाना चाहते है। परन्तु अपनी जिम्मेदारियों को निभाना नहीं चाहते। प्रत्येक मसीही के पास कुछ जिम्मेदारियां हैं जो उसे निभानी है। इन जिम्मेदारियों को निभाने से ही प्रभु का कार्य आगे बढ़ सकता है। शायह हम अभी इस वास्तविकता पर कोई ध्यान न दें परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि न्याय के दिन हमें प्रभु को यह बताना होगा कि हमने उसके लिये कितना कार्य किया है। आज प्रभु को आपकी बहुत आवश्यकता है। इस पाप भरे संसार को आज ज्योति की आवश्यकता है, नमक की आवश्यकता है। क्योंकि प्रभु ने कहा था कि तुम जगत की ज्योति और जगत के नमक हो। आज

प्रभु को ऐसे दासों की आवश्यकता है जो उसकी सेवा कर सकें। यशायाह ने कहा था, ''प्रभु मैं यहां हूं मुझे भेज''। समय बहुत कम है लेकिन कार्य बहुत हैं। इस छोटे से जीवन में हमें बहुत कुछ करना है। अनेकों आत्माएं प्रभु यीशु के सुसमाचार को सुने बगैर इस संसार से चली जाती हैं।

V हमारा व्यवहार तथा स्वभाव कैसा हैं?

(1) **''सबसे अधिक अपने मन की रक्षा कर क्योंकि जीवन का मूल स्त्रोत वही है''।** (नीतिवचन 4:23) किसी के स्वभाव के विषय में जब हम बात करते हैं तो हम इसे इस प्रकार से भी कहते है। कि ''उस पुरूष या स्त्री का मन कैसा है?'' जब हम किसी को याद करते हैं तो हम अक्सर उसके स्वभाव के विषय में बोलते हैं। हमारा व्यवहार तथा स्वभाव निरन्तर यह संकेत देता रहता है कि हमारा मन कैसा है। यीशु जैसा स्वभाव पाने के लिये हमें अपने पूरे जीवन भर प्रयत्न करना पड़ता है। दाऊद हमेशा अपने मन को अच्छा रखने के लिये प्रयत्न करता रहता था। उसने परमेश्वर से इस प्रकार से प्रार्थना की थी कि ''हे परमेश्वर , मेरे अन्दर शुद्ध मन उत्पन्न कर (भजन 51:10)।

(2) **क्या आपने कभी अपने मन की जांच की है?** यदि हां तो क्या कभी आपने यह देखने की कोशिश की है कि इसमें क्या क्या कमियां हैं? कई प्रकार के लेख आपने पढ़े होंगे और आपने उनमें ऐसे स्त्री-पुरूषों के विषय में भी पढ़ा होगा जिन्होंने अपना सारा जीवन परमेश्वर को प्रसन्न करने तथा लोगों की सहायता करने में लगा दिया था।

VI अपनी ही बातों के कारण–

(1) हमारे शब्द हमारे व्यवहार को प्रकट करते हैं, ''क्योंकि जो मन में भरा है, वही मुंह पर आता है (मत्ती 12:34)। यही कारण है कि ''तु अपनी बातों के कारण निर्दोष और अपनी बातों ही के कारण दोषी ठहराया जायेगा'' (मत्ती 12:37)। ज़रा उनके विषय में सोचिये जो इस संसार में चले गये हैं। आप अपने मन में उनके विषय में क्या सोचते हैं? कदाचित आप उनके उन शब्दों को याद करते होंगे जो वे आप के बीच में रहकर बोलते थे क्योंकि आप उनकी बातों के द्वारा यह जानते हैं कि वे कैसे स्वभाव के थे।

(2) **जीभ हमारे शरीर का एक बहुत ही खतरनाक अंग हैं–** परमेश्वर ने इसके विषय में अपने वचन के द्वारा बहुत कुछ कहा है तथा जीभ को केवल आत्मिकता में रहकर ही वश में किया जा सकता है।' ''जो कोई वचन में नहीं चूकता, वही तो सिद्ध मनुष्य है।'' (याकूब 3:2)। यह एक ऐसा पाठ है जिसे हमें

प्रयत्न के साथ सीखना चाहिये। नीतिवचन 6:16-17 में सात ऐसी बातें लिखी हैं जिनसे प्रभु घृणा करता है, तथा इनमें से तीन बातों का सम्बन्ध जीभ से हैं। वो कौन से ऐसे शब्द है जिनके द्वारा हम संसार में याद किये जायेंगे? क्या वे कड़वाहट वाले शब्द हैं अथवा क्रोध वाले शब्द? पौलूस ने कहा था कि "इस कारण सब प्रकार की कड़वाहट और प्रकोप और क्रोध और कलह, निन्दा सब वैरभाव समेत तुम से दूर किये जायें (इफिसियों 4:25)। तेज़, पैनी धार वाले शब्द कौन से हैं? "तेरी जीभ केवल दुष्टता गढ़ती है, सानधरे हुये अस्तुरे की नाई वह छल का काम करती है' (भजन 52:2)। "ऐसे लोग भी हैं जिसका बिना सोचे विचार का बोलना तलवार की नाई चुभता है" (नीतिवचन 12:18)। झूठ बोलना क्या है? "तू भलाई से बढ़कर बुराई में और अधर्म की बात से बढ़कर झूठ से प्रीति रखता है। " (भजन 52:3)। अधर्म के शब्द क्या हैं? "अधर्मी मनुष्य बुराई की युक्ति निकालता है। और उसके वचनों से आग लग जाती है।" (नीतिवचन 16:27)। मूर्खता के शब्द क्या है? "बात बढ़ाने से मूर्ख मुकदमा खड़ा करता है।" (नीतिवचन 18:6)। "मूर्ख अपने सारे मन की बात खोल देता है" (नीति 29:11)। अपवाद (निन्दा) करने वाले शब्द क्या हैं? "जो अपवाद फैलाता है, वह मूर्ख हैं।" (नीति 10:18)।

3. **लेकिन दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि शान्ति देनेवाले तथा सहायता करने वाले शब्द कितने अच्छे हो सकते हैं।** "मनभावने वचन मधुभरे छत्ते की नाई प्राणों को मीठे लगते हैं, और हड्डियों को हरी-भरी करते हैं। (नीति 16:24)।

उस स्त्री के विषय में जिसका मूल्य मूंगों से भी बहुत अधिक है सुलैमान कहता है: "वह बुद्धि की बात बोलती है, और उसके वचन कृपा की शिक्षा के अनुसार होते हैं" (नीति 31:26)। वह स्त्री जो बुद्धिमानी से बोलती है परमेश्वर तथा मनुष्य की दृष्टि में बहुत श्रेष्ठ है। प्रभु कहता है, "सज्जन उत्तर देने से आनन्दित होता है, और अवसर पर कहा हुआ वचन क्या ही भला होता है' (नीति 15:23)। "शान्ति देने वाली बात जीवन-वृक्ष है" (नीति 15:4)। "जैसे चांदी की टोकरियों में सोनहले सेब हों, वैसा ही ठीक समय पर कहा हुआ वचन होता है" (नीतिवचन 25:11)

4. **जीभ की शक्ति इतनी अधिक होती है कि हम इसका अन्दाज़ा तक भी नहीं लगा सकते।** चाहे भलाई हो या बुराई दोनों के लिये ही जीभ की शक्ति बहुत अधिक होती है। "जीभ के वश में मृत्यु और जीवन दोनों होते हैं " (नीति 18:21)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रभु ने उचित चेतावनी देकर इस बात को कहा था कि "तू अपनी बातों के कारण निर्दोष और अपनी बातों ही के कारण दोषी ठहराया जायेगा।"

प्रिसकिल्ला (Priscilla)

यदि आज प्रिसिकिल्ला जीवित होती तो सारी कलीसिया के लोग उसके उस कार्यो को देखकर बहुत प्रसन्न होते जो वह प्रभु के लिये करती थी। पहली शताब्दी की कलीसिया के जोशीले मसीहियों में वह एक प्रमुख स्त्री थी। उसके इस अच्छे जीवन को देखकर सब मसीही लोग तथा सारी कलीसियाएं उसका धन्यवाद करती थीं। (रोमियों 16:4) क्लौदियूस ने रोम में सब यहूदियों को सताना आरम्भ कर दिया था और इसलिये उसके इस सताव के कारण प्रिसकिल्ला और उसके पति को वहां से भाग कर कुरिन्थुस मे जाना पड़ा और हमारी सबसे पहली मुलाकात उससे कुरिन्थुस में होती है। (प्रेरितों 18:2)। सताव के कारण या फिर व्यापार के कारण उन्हें अक्सर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता था, और यही कारण था कि वे कुरिन्थुस, इफिसुस तथा रोम में गये थे।

I किस प्रकार से प्रिसकिल्ला ने प्रभु के लिये कार्य किया?

(1) **वह अपने पति अक्विला के साथ मिलकर कार्य करती थी।** यह कोई अस्वाभाविक सी बात नहीं थी, क्योंकि आरम्भ से ही परमेश्वर के वचन में हम यह सीखते हैं कि स्त्री पुरूष के लिये एक सहायक की तरह है। यदि ईमानदारी से देखा जाये तो अनेक स्त्रियां इस बात में काफ़ी पीछे हैं। वे इसके विषय में बहुत कम सोचती हैं। बहुत से ऐसे मसीही पुरूष हैं जो प्रभु के लिये बहुत कुछ करना चाहते हैं परन्तु उन्हें अपनी पत्नियों से प्रोत्साहन तथा सहयोग नहीं मिलता। अक्विला तथा प्रिसकिल्ला की आत्माएं सब बातों में एक साथ जुड़ी हुई थी क्योंकि जहां कभी भी उनका वर्णन हुआ है वो एक साथ हुआ है। (प्रेरितों 18:2;18:26; रोमियों 16:3, 2 तीमुथियुस 4:19:1 कुरिन्थियों 16:19)। वे एक साथ मिलकर तम्बु बनाने का काम करते थे तथा साथ ही सुसमाचार का प्रचार भी किया करते थे। हार-जीत को वे मिलकर बांटा करते थे। सुख-दुख में एक साथ भागी होते थे तथा सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वे दोनों एक दूसरे पर निर्भर रहा करते थे।

(2) **प्रेरित पौलुस के साथ प्रिसकल्ला ने सुसमाचार फैलाने का कार्य किया था।**

जब पौलूस इनसे कुरिन्थुस में मिलता है तब उन्हें यह पता चलता है कि पौलूस और उनका एक ही सा कार्य है और दोनों ही सुसमाचार फैलाने का कार्य करते हैं, इस बात से उनकी पौलुस से बहुत ही मित्रता हो गई थी। यह मित्रता इतनी अधिक हो गई थी कि अक्विला ने पौलूस की सहायता करते समय अपने प्राणों की भी चिन्ता नहीं की। वे पौलुस से बहुत अधिक प्रेम करने लगे थे। (रोमियों 16:4) ज़रा सोचिये कि जब इन तीनों ने एक साथ मिलकर कुरिन्थुस में प्रभु का कार्य किया होगा तो उन्हें इस बात से कितनी खुशी हुई होगी ''आराधनालय के सरदार क्रिसपुस ने अपने सारे घराने समेते प्रभु पर विश्वास कर लिया था।'' (प्रेरितों 18:8)।

प्रिसकिल्ला ने पौलुस के साथ रहकर केवल प्रचार ही नहीं किया बल्कि परमेश्वर के वचन के ज्ञान को भी अच्छी तरह से प्राप्त किया था। जो लोग परमेश्वर के वचन को जानते तथा सिखाते हैं उनके साथ संगति रखना एक बड़ी ही आशीष की बात है। अपने बाईबल के ज्ञान को प्रिसकिल्ला ने बाद में अपुल्लौस को सिखाने के लिये इस्तेमाल किया।

(3) **कलीसिया प्रिसकिल्ला के घर में मिलती थी** (रोमियों 16:5)। क्योंकि कलीसिया का मिलने का स्थान उनका घर था इसलिये हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उनके घर का कार्य भी कितना बढ़ जाता होगा। परन्तु यम यह भी अनुभव कर सकते हैं कि वे दोनां यह सब कुछ प्रभु के लिये बड़ी प्रसन्नता से किया करते थे।

(4) **प्रिसकिल्ला व्यक्तिगत रूप से दूसरों को सिखाने में बहुत निपुण थी।** दूसरों को परमेश्वर का वचन सिखाना एक ऐसा कार्य है जिसे बहुत बड़ा माना जाता है। इस कार्य से बढ़कर कोई और कार्य इतना आवश्यक नहीं है। एक माता जब अपने बच्चों को बाईबल अध्ययन कराती है तो वह एक बहुत बड़ा कार्य करती है तथा एक प्रचारक जब लोगों के पास जाकर उन्हें प्रचार करता है तो वह भी परमेश्वर के लिये एक बहुत बड़ा कार्य को करता है। आईये अब इस घटना के विषय में देखें जब प्रिसकिल्ला ने प्रभु के वचन को सिखाया था।

II जब अपुल्लोस ने सत्य को जान लिया तब उसने सत्य को स्वीकार भी किया।

परमेश्वर ने केवल एक ही प्रचारक के विषय में कहा है कि वह बोलने में बहुत निपुण था और उसका नाम था अपुल्लोस। वह बाइबल का अच्छा ज्ञान रखता था तथा प्रभु का कार्य करने में बहुत ही परिश्रमी था। जब वह इफिसुस में आया,

तब प्रिसकिल्ला ने उसके प्रचार को सुना।

बाईबल की प्रत्येक शिक्षा में वह निपुण था परन्तु एक ऐसी बात थी जिसके विषय में उसे और सीखने की आवश्यकता थी। प्रिसकिल्ला और उसका पति उसे अपने साथ ले गये तथा ''परमेश्वर का मार्ग उसको और भी ठीक से बताया'' (प्रेरितों 18:24-26)। इस बात पर ध्यान दें कि उसने अपुल्लोस को लोगों के बीच में खड़े होकर नहीं सिखाया, और न ही उपासना के बीच में खड़े होकर कभी प्रचारक को टोका था, क्योंकि प्रभु ने कहा है कि स्त्रियां उपासना सभा में चुप रहें (1 कुरिन्थियों 14:34-35)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्त्रियां सिखा सकती हैं तथा उनके पास अनेक ऐसे अवसर होते हैं जब वे दूसरों को बाइबल की शिक्षा दे सकती हैं, परन्तु इस बात पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाये कि कलीसिया की सभा में उन्हें चुप रहने के लिये कहा गया है। प्रिसकिल्ला ने प्रभु की इस आज्ञा का कभी भी उल्लंघन नहीं किया था।

(2) **यहां पर यूहन्ना के बपतिस्में की चर्चा हो रही थी**- यूहन्ना का बपतिस्मा परमेश्वर की ओर से था, परन्तु यह केवल इसलिये था ताकि लोग प्रभु को स्वीकार करने के लिये अपने आप को तैयार करें। अपुल्लोस को अभी यह नहीं मालूम था कि यीशु के बपतिस्मे के पश्चात इस बपतिस्में का कोई महत्व नहीं है। पौलुस ने इस बात की पुष्टि प्रेरितों 19:1-5 में की थी जब उसने उन लोगों को बपतिस्मा दिया था जिन्होंने यूहन्ना का बपतिस्मा लिया था यूहन्ना का बपतिस्मा यीशु के अधिकार से नहीं था। यीशु ने जिस बपतिस्में की आज्ञा दी थी वो पिता, पुत्र तथा पवित्रात्मा के नाम से लिया जाता है अर्थात प्रभु यीशु के अधिकार से लिया जाता है।

(3) **अपुल्लोस ने जब यह जान लिया कि वह गलत है तब उसने सच्चाई को माना तथा इस शिक्षा का प्रचार उसने ठीक से किया।** परमेश्वर यह कभी भी नहीं चाहता कि हम सच्चाई को छोड़ दें परन्तु वह यह चाहता है कि हम तमाम गलत शिक्षाओं को त्याग करके उसके वचन की शिक्षाओं को उचित रूप से मानें। अपुल्लास को यह सीखने की आवश्यकता थी कि परमेश्वर ने भिन्न -भिन्न युग के लोगों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया था। आज धार्मिक संसार में इतनी गलत शिक्षाएं तथा धारणाएं इसलिये पनप रहीं हैं क्योंकि लोग इस बात को ठीक तरह से नहीं समझते। यद्यपि परमेश्वर कभी बदलता नहीं तौभी उसने भिन्न-भिन्न युग के लोगों के लिये अलग-अलग नियम मानने को दिये थे। यदि यह बात सही नहीं है तो फिर हमें आज भी वेदियां बनानी चाहिये, पशुओं का बलिदान करना चाहिये। जिस प्रकार से मूसा के नियम में किया जाता था। आज क्योंकि हम नये

नियम के अनुसार रहते हैं इसलिये हमें यह सब कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। आज परमेश्वर यह चाहता है कि उसके लोग अर्थात् मसीही अपने शरीरों को जीवित, और पवित्र और परमेश्वर को भावता हुआ बलिदान करके चढ़ायें (रोमियों 12:1)। हम जानते हैं कि बाईबल में दो प्रकार के नियम हैं अर्थात पुराना नियम तथा नया नियम। बाईबल को सही रूप से समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि हमें किस नियम के अनुसार आज चलना है।

III मसीही युग का आरम्भ

(1) यीशु ने अपनी कलीसिया (मण्डली) को बनाने की प्रतिज्ञा की थी (मत्ती 16:18)। उसने यह भी प्रतिज्ञा की थी कि उसके स्वर्ग में वापस चले जाने के पश्चात पवित्रात्मा उसके प्रेरितों की अगुवाई करेगा तथा जब तक उन पर पवित्रात्मा न उतरे वे यरूशलेम में ही ठहरे रहें। यह कहने के पश्चात यीशु वापस स्वर्ग में चला गया। (लूका 24:47-49)।

(2) **प्रेरित यरूशलेम में ही ठहरे रहे।** प्रभु की प्रतिज्ञा अब पूरी होने वाली थी क्योंकि प्रेरितों के ऊपर अब पवित्रात्मा उतर रहा था और वे सब पवित्रात्मा से भर गये थे ((प्रेरितों 2:1-4)। अब वे प्रचार करने लगे थे तथा सारे लोगों को परमेश्वर की उद्धार की योजना के विषय में बताया जा रहा था। अदन की वाटिका में जो प्रतिज्ञा की गई थी उसकी सुन्दरता अब इस प्रचार के द्वारा-उभर रही थी क्योंकि अब मनुष्यों को सबसे पहिली बार यह बताया जा रहा था कि यीशु मसीह का लहू उनके सारे पापों को धो सकता है। जब लोगों ने सुसमाचार को सुना तब "उनके मन छिद गये, और वे पतरस और शेष प्रेरितों से पूछने लगे, कि हे भाइयों, हम क्या करें? तब पतरस ने उनसे कहा, मन फिराओं और तुम में से हर एक अपने-अपने पापों को क्षमा के लिये यीशु मसीह के नाम से बपतिस्मा लें; तो तुम पवित्रात्मा का दान पााओगे" (प्रेरितों 2:37,38)। वे अब एक ऐसे राज्य में प्रवेश कर सकते थे जो कभी नाश नहीं होगा (इब्रानियों 12:28)। यह मसीही युग की एक शुरूआत थी और इस समय कलीसिया का जन्म हुआ था तथा लोगों को उद्धार की योजना के विषय में बताया गया था।

IV कोई भी व्यक्ति क्या विश्वास करता है इस बात से बहुत फ़रक पड़ता है-

यदि अनुचित तथा उचित में कोई अन्तर नहीं होता तो प्रिसकिल्ला अपुल्लोस को उसकी गलती के विषय में नहीं बताती। आज बहुत से लोग ऐसा कहते हैं कि

सच्चाई में समय के अनुसार परिवर्तन आ जाता है। यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार के फ़लसफ़े को मानता है तो वह इस प्रकार से सोचता है कि कोई भी बात स्थिर नहीं है। किसी भी बात पर निर्भर नहीं किया जा सकता। यीशु ने एक स्थान पर यह कहा था कि "तुम सत्य को जानोगे और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र करेगा।"

(यूहन्ना 8:32)। यदि कोई व्यक्ति सत्य को नहीं जानता तब वह इस बात को भी नहीं जान पाएगा कि वह पाप से मुक्त है या नहीं। परन्तु प्रत्येक मनुष्य इस बात को जान सकता है। आईये सत्य की कुछ विशेषताओं को देखें:

1. **सत्य कभी बदलता नहीं**- कुछ साधारण सी बातें हैं जो इस वास्तविक्ता को हमें बता सकती हैं। उस वर्ष और उस दिन के विषय में सोचिये जब आपका जन्म हुआ था। यह एक ऐसी बात है जिसे झूठा नहीं ठहराया जा सकता। इसे बदला भी नहीं जा सकता। मान लीजिये एक व्यक्ति से किसी की हत्या के विषय में कचहरी में पूछताछ की जाती है। उस व्यक्ति ने हत्या की है या नहीं, यह बात वह व्यक्ति स्वयं ही जानता है। सत्य केवल उसे ही पता है। कचहरी में जज तथा वकील शायद उसे अपराधी ठहराने में कई महीने लगा दें, परन्तु बात यह है कि सत्य तो वहां स्थिर है तथा उसे बदला नहीं जा सकता। जज को सत्य को खोजना था, इसलिये नहीं कि सत्य बदल रहा था बल्कि इसलिये कि वह सत्य से अज्ञान था।

इसी प्रकार का सिद्धान्त आत्मिक बातों पर भी लागू होता है। जैसे बाइबल तथा इतिहास हमें बताते हैं कि प्रभु यीशु मृतकों में से जी उठा था, और यह हमारे लिये एक सत्य है। यह एक ऐसा सत्य है जिसे बदला नहीं जा सकता। परमेश्वर ने अपने नियमों को अलग-अलग युगों में बदला था, तथा प्रत्येक युग में उसने भिन्न-भिन्न आज्ञाएं मानने के लिये दीं थी परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि सत्य समय-समय पर बदलता रहता है। सच्चाई यह है कि परमेश्वर ने मूसा को एक नियम दिया था और दूसरी सच्चाई यह है कि प्रभु यीशु ने मूसा के नियम अर्थात पूराने नियम को पूरा किया था तथा एक नये नियम की स्थापना की थी। यह दोनों ऐसे सत्य है जिन्हें बदला नहीं जा सकता।

2. **सत्य कुछ सकरा भी होता है**- जब आप गणित का अध्ययन कर रहे थे तब शायद आपने कभी कहा होगा कि दो जमा दो पांच होते हैं और तब आपकी अध्यापिका ने आपसे कहा होगा कि यह ग़लत है। केवल एक ही उत्तर सही है और वो है दो जमा दो चार। क्यों? इसलिये क्योंकि सत्य सकरा होता है। लोगों के द्वारा बहुत से उत्तर दिये जाते हैं परन्तु केवल एक ही उत्तर सही होता है। बड़े ही दुख की बात है कि आज धार्मिक संसार में आत्मिक बातों को महत्व नहीं दिया जाता

और अनेक लोग यह कहकर बात को टाल देते हैं कि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि किसी का विश्वास क्या है।

3. **हम किस प्रकार से यह जान सकते हैं कि आत्मिक बातों में सत्य क्या है?** यीशु ने कहा था: ''तेरा वचन सत्य है।'' (यूहन्ना 17:17)। आत्मिक सत्य को जानने का केवल एक ही स्रोत है और वो है परमेश्वर का वचन।

सत्य की खोज हमें निरन्तर करनी है, इसलिये नहीं कि सत्य खो चुका है बल्कि इसलिये कि सत्य स्थिर है। जिस प्रकार से कचहरी में एक अपराधी के विषय में सच्चाई को जानने का प्रयत्न किया जाता है उसी प्रकार से हमें प्रत्येक विषय पर सत्य को जानने के लिये परमेश्वर की इच्छा जाननी चाहिये क्योंकि परमेश्वर का वचन सत्य है। हमारी जिम्मेदारी यह है कि हम सत्य को सही तरह से समझें।

V प्रत्येक मसीही का यह कर्त्तव्य है कि वह परमेश्वर के वचन को दूसरों को सिखाये-

प्रिंसकिल्ला के जीवन से एक बहुत ही महत्वपूर्ण पाठ हम यह सीखते हैं। कि वह व्यक्तिगत रूप से एक अच्छी सिखानेवाली थी और हमें भी उसकी तरह बनना चाहिये। यीशु ने प्रत्येक मसीही को वो बड़ी आज्ञा दी है जिसके विषय में हम मत्ती 28:18-20 में पढ़ते हैं तथा हम सब की यह जिम्मेदारी है कि हम अधिक से अधिक लोगों को यीशु तथा उसके उद्धार के विषय में बतायें। यद्यपि अनेक मसीही इस आज्ञा के विषय में पढ़ते तो हैं परन्तु बहुत कम है जो इसका पालन करते हैं।

1. परमेश्वर का वचन बहुत शक्तिशाली है। यह वचन इतना शक्तिशाली था कि केवल बोले जाने पर ही एक बड़े तूफ़ान को शान्त कर देता था तथा पानी को दाखरस में बदल देता था। इस वचन में इतनी शक्ति है कि यह आत्माओं को नरक में जाने से बचा सकता है। जिन लोगों ने परमेश्वर के पुत्र की हत्या की थी उनके कठोर मन भी इस वचन के द्वारा छिद गये थे अर्थात् वे अपने आप को बदलना चाहते थे। (प्रेरितों 2)।

2. परमेश्वर के वचन को सिखाना एक बहुत आवश्यक कार्य है-परमेश्वर का केवल एक ही पुत्र था तथा वह चाहता था कि उसका पुत्र ईश्वरीय बातों को दूसरों को सिखाये। यीशु के मित्र तथा शत्रु उसे एक बहुत बड़ा शिक्षक मानते थे। आज संसार में लोगों को यीशु की शिक्षाओं की आवश्यकता है। आज हमारे द्वारा लोगों तक परमेश्वर के वचन को पहुंचाया जा सकता है। यशायाह भविष्यदूक्ता के साथ हमें यह कहना चाहिए कि ''प्रभु यहोवा का आत्मा मुझ पर हैं; क्योंकि यहोवा ने सुसमाचार सुनाने के लिये मेरा अभिषेक किया है। और मुझे इसलिये भेजा है कि

खेतिद मन के लोगों को शांति दूं, बंधुओं के लिये स्वतन्त्रता का और कैदियों के लिये छुटकारे का प्रचार करूं; यहोवा के प्रसन्न रहने के वर्ष का और हमारे परमेश्वर के पलटा लेने के दिन का प्रचार करूं ताकि सब विलाप करने वालो को शान्ति दूं'' (यशायाह 61:1-2)। हां, यह सब सम्भव है, यदि लोग प्रभु के वचन को मानते हैं। (अय्यूब 6:25)।

3. **प्रत्येक मसीही का यह कर्त्तव्य है कि वह व्यक्तिगत रूप से लोगों को परमेश्वर का वचन सिखाये।** हमारे देश में बाइबलें तो बहुत हैं परन्तु दुख की बात यह है कि उनको सुसमाचार प्रचार करने के लिये इस्तेमाल नहीं किया जाता और इसलिये बहुत से लोग बिना सुसमाचार सुने ही इस संसार से चले जाते हैं।

4. **हमें आत्माओं के महत्व को समझते हुये, वचन के सिखाने वाले होना चाहिये।** बड़े ही दु:ख की बात यह है कि अनेक लोग चौड़े मार्ग पर चल रहे हैं तथा उन्होंने अपने आप को स्वर्ग में जाने के लिये तैयार नहीं किया है। (मत्ती 7: 13-14) मनुष्य की आत्मा बहुत बहूमूल्य है तथा दो चीज़ें संसार में सदा अमर रहेंगी वो हैं परमेश्वर का वचन तथा मनुष्य की आत्मा। इसलिये आज हम सबके सामने एक बहुत ही आवश्यक कार्य यह है कि हम मनुष्य की आत्मा का सम्बन्ध परमेश्वर के वचन के साथ करायें।

5. **दूसरों को परमेश्वर का वचन सिखाने में बड़ा आनन्द मिलता है।** दक्षिणी महाद्वीप में एक ऐसा कीड़ा होता है जो ज़ख्मी होने पर एक प्रकार की रोशनी देता है। वहां के लोग इस कीड़े को जख्मी करके अपने सिर पर रखते हैं ताकि जंगलों आदि से गुज़रते समय उन्हें रोशनी मिल सके। वहां के लोगों के लिये यह कीड़ा कितना उपयोगी है। परन्तु ज़रा सोचिये कि इसके लिये इस कीड़े को कितना बड़ा दाम चुकाना पड़ता है। प्रचार करना तथा आत्माओं को जीतना भी एक ऐसा कार्य है, जिसको करने में हमें अनेकों प्रकार के बलिदान देने पड़ते है। परन्तु इसके द्वारा हमें एक अद्‌भुत प्रकार की खुशी भी प्राप्त होती है।

6. **क्योंकि समय कम है तथा न्याय का होना नियुक्त है** इसलिये आज हम मसीहीयों को यीशु मसीह के लिये आत्माओं को जीतना है। ''सो हममें से हर एक परमेश्वर को अपना-अपना लेखा देगा।'' (रोमियों 14:12)। प्रत्येक मिनट में लगभग 200 से अधिक लोग इस संसार से चले जाते हैं। आज बहुत से लोगों के लिये यह दुखपूर्ण शब्द कहे जा सकते हैं कि: ''कटनी का समय बीत गया, फल तोड़ने की ऋतु भी समाप्त हो गई, और हमारा उद्धार नहीं हुआ (यिर्मयाह 8:22)। आज हमें भी प्रिसिकिल्ला की तरह ऐसे खोये हुये लोगो की चिन्ता करनी है जो प्रभु से दूर हैं। हमें उन्हें ''प्रभु का मार्ग अच्छी तरह से बताना हैं''।

यूओदिया और सुन्तुखे
(Eduias and Syntyche)

जब पौलूस ने यूरोप में सबसे पहले सुसमाचार का प्रचार किया था तब लुदिया तथा उसका घराना पहले ऐसे लोग थे जो वहां मसीही बने थे। इन्हीं के द्वारा फ़िल्प्पी में कलीसिया ने बहुत उन्नति की थी। इस कलीसिया का प्रेरित पौलूस के साथ एक गहिरा सम्बन्ध था। पौलूस को आवश्यकता पड़ने पर इस कलीसिया से आर्थिक सहायता भी मिलती थी। तथा यह कलीसिया प्रत्येक बात में उसका ख्याल रखती थी और ये ही कारण था कि पौलूस का इस कलीसिया से एक घनिष्ठ प्रेम था।

फिलिप्पी में कलीसिया की स्थापना के लगभग ग्यारह वर्षो के पश्चात पौलूस को रोम में बन्दी बना लिया गया था। इसी बन्दीग्रह से उसने फिलिप्पी के मसीही लोगो ंको एक सुन्दर पत्री लिखी थी। यद्यपि एक बहुत ही कष्टपूर्ण स्थिति में यह पत्री लिखी गई थी तौभी इस पत्री में दूसरी पत्रियों से अधिक मसीही आनन्द के विषय में बोला गया है। मसीही प्रेम के विषय में भी प्रेरित पौलूस ने इस पत्री में लिखा है। दो मसीही महिलाओं को लिखते हुये उसने कहा था कि ''मैं यूओदिया को भी समझाता हूं, और सुन्तुखे को भी, कि वे प्रभु में एक मन रहें' (फिलिप्पियों 4:2)। यह बात विशेषकर फिल्प्पी में कलीसिया की दो महिलाओं में आपसी मतभेद का था परन्तु उनके आपसी मतभेद को देखकर उसने यह अनुभव किया कि जो भी हो रहा है वो ग़लत है और उसने उसे सही करना चाहा।

परमेश्वर के लोगों को शांति तथा एकता का सिद्धान्त बार-बार सिखाया जाता है, परन्तु दुख की बात यह है कि इस सिद्धान्त को बार-बार तोड़ा जाता है और इसका पालन नहीं किया जाता। हमारा यह पाठ भी शांति तथा एकता पर आधारित है।

I अपने लोगों ंको परमेश्वर ने एकता का पाठ सिखाया है।

1. **आज धार्मिक संसार में जितनी भी फूट है उससे परमेश्वर बहुत प्रसन्न है।** परमेश्वर चाहता है कि उसके लोगों के बीच मे ंएकता हो तथा यीशु ने अपने

चेलों की एकता के लिये प्रार्थना भी की थी: ''जैसा तू हे पिता मुझ में है, और मैं तुझ में हूं, वैसे ही वे भी हम में हों, इसलिये कि जगत प्रतीति करे कि तू ही ने मुझे भेजा है (यूहन्ना 17:21)। तौभी हम देखते हैं कि आज इस संसार में जो लोग अपने आप को प्रभु यीशु का अनुयायी कहते हैं वे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में बंटे हुये हैं। आज संसार में अपने को मसीही कहलाने वाले लोग लगभग पांच सौ से भी अधिक साम्प्रदायों में बटें हुये हैं। आज संसार में लगभग पांच सौ से भी अधिक साम्प्रदायिक कलीसियाएं विद्यमान है। हम यह जानते हैं कि परमेश्वर हमसे ऐसा नहीं चाहता, ''क्योंकि परमेश्वर गड़बड़ी का परमेश्वर नहीं है।'' यीशु ने अपनी कलीसिया को बनाने की प्रतिज्ञा की थी (मत्ती 16:18)। यह प्रतिज्ञा पिन्तेकुस्त के दिन उसके स्वर्ग में वापस चले जाने के पश्चात पूरी हुई थी। (प्रेरितों 1 और 2 अध्याय)। पवित्र बाइबल के अनेक पद एकता के विषय में हमें बताते हैं जैसे इफ़िसियों 4:3 में लिखा है कि ''मेल के बन्ध में आत्मा की एकता रखने का यत्न करो'' तथा 1 कुरिन्थियों 1:10 में प्रेरित पौलुस कहता है कि ''हे भाईयों, मैं तुम से यीशु मसीह जो हमारा प्रभु है उसके नाम के द्वारा बिनती करता हूं, कि तुम सब एक ही बात कहो; और तुम में फूट न हो, परन्तु एक ही मन और एक ही मत होकर मिले रहो।''

2. **एकता किस प्रकार से लाई जा सकती है?**

भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षाओं को एक साथ मिलाकर हम धार्मिक एकता स्थापित नहीं कर सकते या फिर बहुत सारी साम्प्रदायिक कलीसियाओं के विश्वासियों को एक साथ मिलाकर भी हम एकता नहीं ला सकते। वास्तव में यह एकता नहीं होगी। एकता का परमेश्वर ने एक सिद्धान्त दिया है और वो यह है कि ''जहां तक हम पहुंचे हैं, उसी के अनुसार चलें (फिलिप्पयों 3:16)। एकता तभी आ सकती है जब हम सब केवल एक ही अधिकार को मानेंगे और यह अधिकार है परमेश्वर का वचन। मनुष्यों की सारी शिक्षाओं को त्याग दें तथा केवल बाइबल का ही अनुसरण करें।

II प्रभु ने सिखाया था कि उसकी कलीसिया में शांति तथा मेल-मिलाप हो-

युओदिया और सुन्तुखे प्रभु की कलीसिया की सदस्य थीं और एक ही परमेश्वर की उपासना करती थीं तथा उनका एक ही विश्वास था। तौभी मन से वे एक दूसरे से दूर थीं। आपस में उनका व्यवहार सही नहीं था। आज भी यह बात हमें कलीसिया में देखने को मिलती है। जब तक लोग इस संसार में एक साथ मिलकर कार्य करेंगे तब तक आपस में मतभेद तथा झगड़े हमेशा विद्यमान रहेंगे इसलिये हमें

हमेशा यह ध्यान रखना चाहिये कि हम शांति के साथ रहे सकें। हमें एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करना सीखना चाहिये। ''देखो, यह क्या हही भली और मनोहर बात है कि भाई लोग आपस में मिले रहें'' (भजन 133:1)। बड़े ही दु:ख की बात है कि परमेश्वर के परिवार में कई बार छोटी-छोटी बातों पर मतभेद उत्पन्न होने लगते हैं।

अनेकों बार कलीसिया में बाइबल की किसी एक शिक्षा को लेकर मतभेद होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक मसीही को परमेश्वर के वचन के द्वारा समस्या को सुलझाना चाहिये। कई बार यह मतभेद बहुत ही छोटी-छोटी बातों के ऊपर होते हैं। अक्सर यह भी देखा जाता है कि लोग बड़ी-बड़ी समस्याओं को तो सुलझा लेते हैं परन्तु छोटी-छोटी समस्याओं में उलझे रहते हैं।

III शांति का होना हमेशा सम्भव नहीं है-

1.''जहां तक हो सके, तुम अपने भरसक सब मनुष्यों के साथ मेल मिलाप रखों '' (रोमियों 12:18)। एक अच्छा मन सदा शांति की इच्छा रखता है।''चैन (शांति) के साथ सूखा टुकड़ा, उस घर की अपेक्षा उत्तम है जो मेलबलि-पशुओं से भरा हो, परन्तु इसमें झगड़े-रगड़े होते हैं'' (नीतिवचन 17:1)। एक बार एक छोटे लड़के ने एक पड़ोस की स्त्री से यह कहा कि ''आन्टी मुझे आपके घर में रहना बहुत अच्छा लगता है क्योंकि यहां बहुत शांति है और सब मेल-मिलाप से रहते हैं।'' उस स्त्री ने लड़के से पूछा: ''बेटा, क्या तुम्हारे घर में शांति नहीं है?'' लड़के ने उत्तर दिया ''कि हमारे घर में कभी-कभी तो शांति होती है परन्तु अधिकतर अशांति ही रहती है''। जो बच्चे अशांति के वातावरण में पलते हैं उनके लिये शांति के वातावरण में रहना कठिन होता है। वे चिड़चिड़े हो जाते हैं। ऐसे लोगों के साथ शांति से रहना सम्भव नहीं होता। केवल एक ही तरीका था जिसके द्वारा एलिय्याह नबी तथा ईज़ेबेल के बीच में शांति स्थापित हो सकती थी और वो यह कि एलिय्याह अपने दृढ़ निश्चय को छोड़कर उसके सामने झुक जाता और ऐसा करना उसके लिये अनुचित होता क्योंकि यदि वह ऐसा करता तो प्रभु उससे अप्रसन्न होता और वह अपनी आत्मा को खो देता। हम देखते है कि एलिय्याह नबी ईज़ेबेल के सामने नहीं झुका।

2. **यीशु कभी भी यह नहीं चाहता था कि शांति स्थापित करने के लिये वह गलतियों का साथ दे-** सच्चाई पर खड़े रहने के लिये यीशु ने शांति की भी कोई परवाह नहीं की। और यह तब हुआ था जब उसने मन्दिर में देखा कि लोग लेन-देन कर रहे हैं, और उसने उन लोगों को वहां से बाहर निकाल दिया, और सर्राफों की चौकियां उलट दीं (मरकुस 11:15)। उसने यह भी कहा था कि ''यह न समझो, कि मैं पृथ्वी पर मिलाप कराने को आया हूं, मैं मिलाप कराने को नहीं, पर तलवार चलवाने आया हूं। मैं तो आया हूं, कि मनुष्य को उसके पिता से, और बेटी को उस की मां, से और बहू को उसकी सांस से अलग कर दूं।'' (मत्ती 10:34-37)। इस बात से हम यह समझते हैं कि यीशु की शिक्षाओं में बने रहने के लिये चाहे हमें कोई भी दाम चुकाना पड़े, हम उन शिक्षाओं को दृढ़ता से पकड़े रहें। शायद एक बेटी की अपनी माता से इसलिये न बने क्योंकि वह यीशु के पीछे चलना चाहती है। जो लोग सत्य पर अटल रहते हैं तथा धार्मिकता में बने रहना चाहते हैं उन्हें कई बार विरोध का सामना भी करना पड़ता है। पवित्र बाइबल कहती हैं: ''पर जितने मसीह यीशु में भक्ति के साथ जीवन बिताना चाहते हैं वे सब सताए जाएंगे'' (2 तीमुथियुस 3:12)'' क्योंकि यदि परमेश्वर की यह इच्छा है, कि तुम भलाई करने के कारण दु:ख उठाओ, तो यह बुराई करने के कारण दु:ख उठाने से उत्तम है''। (1 पतरस 3:17)।

3. **कई बार अच्छे लोग भी मिलकर एक साथ कार्य नहीं कर सकते, क्योंकि उनका स्वभाव आपस में मेल नहीं खाता तथा अक्सर उनके विचार आपस में नहीं मिलते।** यदि सम्भव हो तो ऐसे लोगों को अपना कार्य अलग रहकर करना चाहिये। पौलूस तथा बरनाबास जब आपस में सहमत नहीं थे तो उन्होंने भी ऐसा ही किया था अर्थात वे एक-दूसरे से अलग हो गये थे (प्रेरितों 15:36-40)।

4. **कई बार जब दो जनों में कोई समस्या उत्पन्न हो जाती है तो शायद कोई यह कहे:** ''कि मेरे विचार में दोनों जन बराबर के दोषी हैं'' यह बात हमेशा सही नहीं होती। जब यीशु को क्रूस पर चढ़ाया गया था तो क्या दोष बराबर का था? जब स्तिफनुस को पत्थरवाह किया गया था तो क्या दोष बराबर का था? इसी प्रकार से हम पौलुस के विषय में देखते हैं कि अपने दृढ़ विश्वास के लिये जेलखाने में उसे डाला गया तथा यीशु मसीह का प्रचार करते समय वह सताया भी गया। यहां हम देखते हैं कि जो लोग सताये गये थे वे निर्दोष थे। यदि कलीसिया में, परिवार में या किसी भी स्थान पर कोई समस्या उत्पन्न होती है तो यह बुद्धिमानी नहीं है कि किसी भी व्यक्ति पर तुरन्त दोष लगा दिया जाये। किसी भी निर्दोष व्यक्ति पर दोष लगाना उचित नहीं है। ''जो दोषी को निर्दोष और जो निर्दोष को दोषी ठहराता है, उन दोनों से यहोवा घृणा करता है'' (नीतिवचन 17:15)।

IV शांति तथा मेल मिलाप रखने का ईश्वरीय फार्मूला

परमेश्वर के वचन के द्वारा हम यह जान सकते हैं कि झगड़े और आपस में मतभेद क्यों पैदा होते हैं तथा इनसे हमें दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिये। शांति बनाये रखने के सिद्धांतों को हम बाइबल से सीख सकते हैं।

1. **''इसलिये हम उन बातों का प्रयत्न करें जिनसे मेल मिलाप और एक दूसरे का सुधार हो''** (रोमियों 14:19)। सबसे पहले हमें यह समझना चाहिये कि परमेश्वर चाहता है कि हम सब बातों में शांति और मेल मिलाप बनाये रखने का प्रयत्न करें। यीशु ने कहा था: ''धन्य हैं वे, जो मेल करवाने वाले हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के पुत्र कहलाऐंगे। (मत्ती 5:9)। यदि हम शांति और मेल मिलाप से रहना चाहते हैं तो यह अक्समात अपने आप ही नहीं हो जायेगा। इसके लिये हमें निरन्तर प्रयत्नशील होना पड़ेगा। चीन के लोगों की एक कहावत है कि: ''मित्रता करने में एक वर्ष लग जाता है, लेकिन मित्रता टूटने में कुछ मिनट ही लगते हैं।'' यद्यपि सब लोगों के साथ हमेशा मेल मिलाप के साथ रहना सम्भव नहीं है, तौभी हमें पूरा प्रयत्न करना चाहिये कि हम किसी भी प्रकार का झगड़ा व फसाद आरम्भ ही न होने दें क्योंकि झगड़ा करना पाप है। हमें मेल मिलाप को ढूंढना चाहिये। (1 पतरस 3:11) हो सकता है शायद मेल-मिलाप व शांति बनाये रखने के लिये हमें अपनी हानि भी उठानी पड़े (1 कुरि, 6:5-7)।

2. **''जब मैं सियाना हो गया, तो बालकों की सी बातें छोड़ दी''** (1 कुरि. 13:11)। यह बात प्रेरित पौलूस ने कही थी। कलीसिया में समस्याएं उत्पन्न होने का विशेष कारण यह है कि बहुत से लोग अपने विश्वास में निर्बल ही बने रहते हैं, वे कलीसिया में बचकाने जैसी बातें करते हैं जिसके कारण छोटी-छोटी बातों से शांति भंग होने लगती है। इसलिये कलीसिया के प्रत्येक सदस्य को बालकों जैसी बातें नहीं करनी चाहिये तथा प्रेरित पौलूस की यह बात याद रखनी चाहिये कि जब मैं सियाना हो गया, तो मैंने बालकों की सी बातें छोड़ दी।

(1) **एक छोटा बच्चा स्वार्थी होता है और ऐसा होना उसके लिये स्वाभाविक है।** वह केवल अपनी ही आवश्यकताओं के बारे में सोचता है। उसकी माता रातभर जागकर उसके लिये अपनी नींद खराब करती है परन्तु उसे इस बात से कोई मतलब नहीं होता। जब वह बड़ा होने लगता है तो हमें उसे यह सिखाना चाहिये कि वह स्वार्थी न हो तथा दूसरों के हित की भी चिन्ता करे। जिस बच्चे को यह शिक्षा नहीं दी जाती वह बड़ा होकर केवल अपने ही बारे में सोचता है। अर्थात वह स्वार्थी बन जाता है। और उसे इस बात से कोई मतलब नहीं होता कि दूसरों को इस बात से कितनी चोट पहुंचेगी। इस प्रकार का स्वार्थी व्यक्ति अपने परिवार तथा कलीसिया में अशान्ति फैलाता है।

(2) **जब बच्चों की कई बार इच्छापूरी नहीं की जाती तो वे चिड़चिड़े होकर अपना रोष प्रकट करते हैं।** यद्यपि अहाब एक बड़ी आयु का व्यक्ति था लेकिन उसका व्यवहार बच्चों का सा था। 1 राजा 21:4 में लिखा है कि 'अहाब उदास और अप्रसन्न होकर अपने घर गया, और बिछोने पर लेट गया और मुंह फेर लिया, और कुछ भोजन न किया''। ऐसा उसने इसलिये किया था क्योंकि उसकी इच्छा पूरी नहीं की गई थी। कई लोग कलीसिया में भी ऐसा ही व्यवहार दिखाने लगते हैं वे अपने में ऐसी धारणा बना लेते हैं कि उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया जा रहा है। और यहां तक होता है कि वे इस बात का बहाना बनाकर कलीसिया में आना बन्द कर देते हैं। चाहे कोई हमारे साथ कैसा भी व्यवहार करे, हमें इसका क्रोध प्रभु पर नहीं उतारना चाहिये। यह एक मूर्खता है तथा ऐसा करने में हम स्वयं अपनी आत्माओं को नाश करते हैं।

(3) **कई बार बच्चे अपने ग़लत व्यवहार के लिये दूसरे को दोषी ठहराने का प्रयत्न करते हैं।** खेलते हुये बच्चों के मुंह से अक्सर यह सुना जाता है कि ''यह सब तेरे ही कारण हुआ है या मैं तेरी वज़ह से इस खेल में हार गई हूं''। बड़े भी अपने अनुचित कार्यों के लिये कई बार दूसरों को दोषी ठहराते हैं परन्तु जो समझदार व्यक्ति होगा वह दाऊद की तरह इस प्रकार से कहेगा ''कि प्रभु में पापी हूं, मैंने पाप किया है मुझे क्षमा कर दे।''।

(4) **बच्चों में एक और विशेषता यह होती है कि वे अपनी जिम्मेदारी को सही तरह से नहीं निभाते।** कुछ बच्चों में से यह आदत कभी नहीं जाती। किसी भी कार्य की जिम्मेदारी को लेकर उसको पूरा करना एक समझदारी की बात है परन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी जिम्मेदारियों को निभाये बिना ही आदर व सम्मान चाहते हैं। ऐसा होना असम्भव है। जो भी जिम्मेदारियां हमें सौंपी जाती है, उन्हें पूरा करना हमारा कर्त्तव्य है। यदि हम बिना कार्य किये हुऐ प्रतिफल को पाना चाहते हैं तो इससे झगड़े व फसाद उत्पन्न होते हैं।

(1) **''और जैसा हमने तुम्हें आज्ञा दी है, वैसे ही चुपचाप रहने और अपना अपना काम काज करने, और अपने अपने हाथों से कमाने का प्रयत्न करो।''** (1 थिस्सलुनीकियों 4:11)। हमें किसी दूसरे व्यक्ति के कार्य के साथ छेड़खानी नहीं करनी चाहिये बल्कि अपने कार्य में अपना मन लगाना चाहिये।

(2) **''झगड़े रगड़े केवल अहंकार से ही होते हैं''** (नीतिवचन 13:10)। यदि हम घमण्ड करते है तो हम दियुत्रिफेस की तरह ठहरेंगे जिसने अपने आप को घमण्ड से बड़ा बनाना चाहा था। (3 यूहन्ना 9)। कई लोग इस प्रकार से सोचते हैं कि उन्हें वैसा आदर सम्मान नहीं मिल रहा है जैसा मिलना चाहिये और ऐसा सोचकर वे बड़े ही अप्रसन्न हो जाते हैं तथा कई बार झगड़ा तक करने लगते हैं।।

V पतरस ने शांति तथा मेल मिलाप रखने का फार्मूला जो हमें 1 पतरस 3:8-11 में दिया है, आईये उसे देखें:-

''निदान सबके सब एक मन होकर रहो'' और इसके पश्चात वह कुछ

ऐसी बातें बताता है जो शान्ति बनाये रखने में बड़ी ही सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

(1) **''हम दूसरों पर कृपामय हों''** इसका अर्थ है दूसरों को अपने से अच्छा समझना। जैसा हम चाहते हैं कि लोग हमारे विषय में सोचें हम उनके विषय में भी वैसा ही सोचें। इस तरह से हम यीशु के उस सुनहरे नियम को मान सकते हैं जो उसने मत्ती के सात अध्याय में दिया था ''इस कारण जो कुछ तुम चाहते हो, कि मनुष्य तुम्हारे साथ करें, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो''

(2) **''भाईचारे की प्रीति रखनेवाले बनें''** ऐसा करने से झगड़े का एक बहुत ही बड़ा और विशेष कारण दूर हो सकता है और वो कारण है डाह या जलन रखना। क्योंकि ''प्रेम डाह नहीं करता'' डाह तथा झगड़े का बहुत गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि याकूब 3:16 के अनुसार ''जहां डाह और विरोध होता है, वहां बखेड़ा और हर प्रकार का दुष्कर्म भी होता है''। कई बार किसी को अच्छी पदवी पर देखकर लोग उससे जलने लगते हैं। जब किसी व्यक्ति को एक अगुवा बना दिया जाता है तो वह डाह के कारण अकसर नुक्ताचीनी का शिकार हो जाता है। यीशु के साथ भी ऐसा ही हुआ था। जलन और डाह के कारण लोग उसकी नुक्ताचीनी किया करते थे। डाह के ही कारण यीशु को क्रुस की मृत्यु दी गई थी। जिन लोगों ने उस पर दोष लगाया था वे इतने गिरे हुये थे कि आज उनका नाम तक नहीं लिया जाता, परन्तु यीशु का प्रभाव आज सारे संसार में विद्यमान है। उसका जीवन आज भी लोगों पर प्रभाव छोड़ रहा है। पौलूस के साथ भी ऐसा ही हुआ था। जो लोग आज परमेश्वर के लोगों की अगुवाई कर रहे है यदि उनकी नुक्ताचीनी की जाती है तो उन्हें अपना साहस नहीं छोड़ना चाहिये। उन्हें यीशु तथा पौलुस के जीवनों से प्रेरणा लेनी चाहिये। यदि भाईयों में प्रेम बना रहे तो इससे केवल डाह और ईर्ष्या ही दूर नहीं होंगे, बल्कि आपस में सहनशीलता की भावना जागृत होगी और जिनसे हम प्रेम करते है, उनकी कमज़ोरियों को समझते हुये हमें सहनशील होना चाहिये। आपसी प्रेम से आपस के बहुत से मतभेद दूर हो सकते हैं।

(3) **''करूणामय, और नम्र बनें''** यदि हम दूसरों के प्रति अच्छा व्यवहार रखें तथा नम्र बनें तो इससे शान्ति बनाये रखने में सहायता मिलेगी।

(4) **बुराई के बदले बुराई मत करो, और न गाली के बदले गाली दो''** ज़रा सी भी बदला लेने की भावना एक बहुत बड़ी आग लगा सकती है। एक किसान के खेत में से प्रतिदिन खरबूजों की चोरी होती थी। उसे बहुत गुस्सा आया और उसने एक खरबूज़े में ज़हर लगा कर वहां यह लिखकर लगा दिया कि ''यहां खरबूज़ों में से एक खरबूज़ा ज़हरीला है।'' जब दूसरे दिन सुबह वह खेत मे आया तो उसने देखा कि किसी ने उस पर्चे को हटाकर वहां एक दूसरा पर्चा लिखकर

लगा दिया कि ''यहां पर दो खरबूज़े जहरीले हैं।'' बदला लेने की भावना अनुचित कार्यों को जन्म देती हैं।

(5) **''जो अच्छे दिन देखना चाहता है, वह अपनी जीभ को बुराई से और अपने होंठों को छल की बातें करने से रोके रहें''** एक लम्बी जीभ तथा क्रोध के कारण अक्सर झगड़ा ही होता है। इसलिये जीभ को कंट्रोल किये बगैर हम शान्ति स्थापित नहीं कर सकते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जीभ के विषय में परमेश्वर का वचन बहुत शिक्षा देता है। जीभ एक ऐसी चीज़ है जिसे प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन इस्तेमाल करता है। क्या आप इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि यदि प्रत्येक जन अपनी जीभ को वैसे इस्तेमाल करे जैसे परमेश्वर चाहता है तो झगड़े-फसाद उत्पन्न होना कितना कठिन होगा? भाईयों के बीच में झगड़ा उत्पन्न कराने वाले मनुष्य से प्रभु घृणा करता है (नीतिवचन 6:19)। गप्पें मारने तथा बुराईयां करने से कोई भी व्यक्ति कलीसिया की शान्ति को भंग कर सकता है और इससे प्रभु के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है। बुराई करने वाला व्यक्ति शायद यह कहे: ''कि जहां धुआं उठ रहा है, वहां आग लगना भी आवश्यक है''। वह कभी भी यह कहना नहीं चाहेगा: ''मै जानबूझकर यह धुआं लोगों को दिखाना चाहता हूं ताकि वे यह जान सकें कि आग लगी हुई है। और ऐसा करने से मैं उस व्यक्ति को बदनाम करना चाहता हूं क्योंकि मैं उसे बिल्कुल भी पसन्द नहीं करता।''। यदि आप किसी के बारे में ऐसा सुनती हैं तो यह सोचकर कि यह केवल एक धुआं है उसके ऊपर कोई ध्यान न दें। हो सकता है शायद यह धुआं किसी ने ईर्ष्या के कारण उड़ाया हो। ''जैसे लकड़ी के न होने से आग बुझती है, उसी प्रकार जहां कानाफूसी करने वाला नहीं वहां झगड़ा मिट जाता है' (नीतिवचन 26:20,21)।

''क्या आप यह विश्वास नहीं करती कि कलीसिया में गड़बड़ी फैलाना बड़ा कठिन होगा यदि प्रत्येक मसीही स्त्री शांतिप्रिय हो तथा शांती स्थिर रखने के लिये कार्य करे''?